"पराया" एक ऐसी आत्मकथा है, जिसके दाहक अनुभव, संघर्ष और उपेक्षा की यात्रा करते हुए समाज के एक ऐसे चेहरे को उजागर करती है, जो भारत के किसी भी प्रदेश की कहानी हो सकती है। लेखक स्वयं एक बंजारे की जिंदगी जीने को अभिशप्त है, ऐसे में हमारे समाज के तथाकथित सुसंस्कृत लोग जब लेखक को नहीं अपना पाते तब परायेपन के अलावा, अनुभव करने लायक भला क्या बच जाता है। इस परायेपन की एक लंबी दास्तान है - पराया ... जो स्वयं अपनी पहचान और समाज की इयत्ता की तलाश में, तपती रेत पर, नंगे पैर चलने का रास्ता चुनता है। लेकिन यह बना-बनाया रास्ता नहीं है। लेखक ने यह रास्ता स्वयं चुना है - तमाम परिधियों और दुष्चक्रों को काटते हुए ... और इस विद्रोह में उसने जो कुछ अनुभव किया वह "पराया" में संवदेनशीलता के साथ समेट लिया गया है।

"पराया" हमारे समाज के चेहरे से नकाब नोंच कर एक ऐसा आईना प्रस्तुत करता है जिसमें समाज अपना ही चेहरा देख कर सिहर उठता है।

**ISBN 81-7201-179-2**

**मूल्य : पिचहत्तर रुपये**

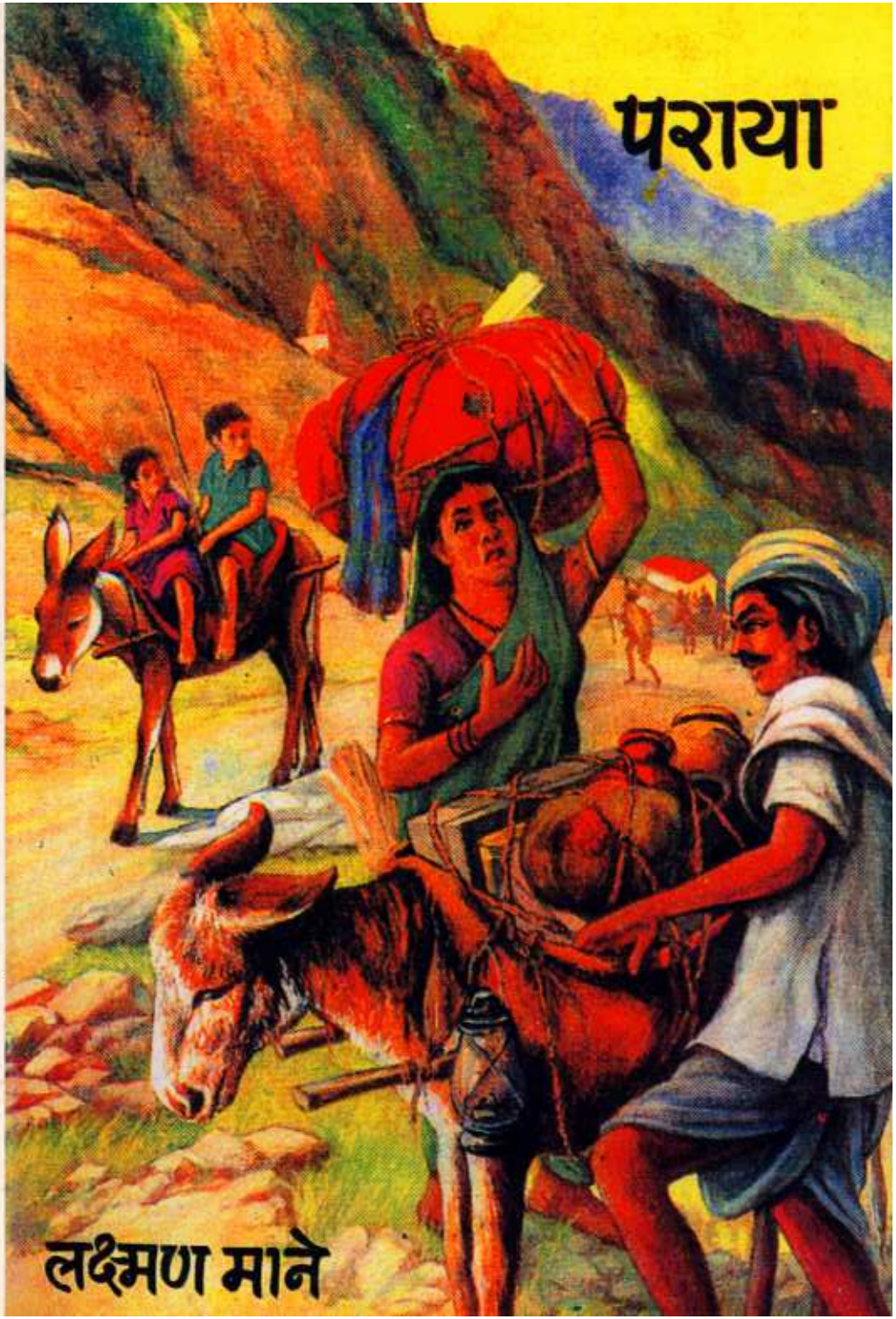

# पराया

लेखक
**लक्ष्मण माने**

अनुवादक
**दामोदर खड़से**

**साहित्य अकादेमी**

**Paraya :** Hindi Translation by Damodar Khadse of Laxman Mane's Akademi Award winning Marathi novel 'Upara'. Sahitya Akademi, New Delhi (2000) Rs. 75.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1993
पुनर्मुद्रण : 1997, 2000

**साहित्य अकादेमी**

**मुख्य कार्यालय**
रवीन्द्र भवन, फीरोज़शाह रोड़, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

**क्षेत्रीय कार्यालय**
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल, 23 ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर मार्ग, कलकत्ता 700053
गुना बिल्डिंग, दूसरी मंजिल, 304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट,
चेन्नई 600018
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400014
केन्द्रीय महाविद्यालय परिसर, डॉ० अम्बेडकर विधि, बैंगलोर 560001

**ISBN 81-7201-179-2**

मूल्य : पिचहत्तर रुपये

**मुद्रक :** आर० के० ऑफसैट प्रोसैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

# इस पड़ाव से

मेरा मजाक उड़ाने के लिए भी यदि किसी ने मुझे पुस्तक लिखने को कहा होता तो मैं ही उस पर हँसता, इस लेखन के क्षेत्र में मेरा इतना कम दखल है। सिर्फ "साधना" और 'प्रगतिशील', 'सत्यशोधक' में दो- चार लेख लिखे हैं। इससे ज्यादा कुछ नहीं। पर अब तो मैंने एक अच्छी-खासी पुस्तक लिख डाली है। सच तो यह है कि मुझे अपना यह सब सच नहीं लग रहा है।

सातारा में हम हर वर्ष बाबासाहब आंबेडकर व्याख्यान-माला आयोजित करते हैं। इसके लिये श्री दया पवार और रावसाहब कसबे वक्ता के रूप में आए थे। उन्हें जाति-बिरादरी के कुछ प्रसंग सुनाए। वह भी बातें करते-करते, सहजता से सुनाए थे। उन दोनों ने कहा कि मैं इसे लिखूं। परंतु मैं यह साहस नहीं कर पाया। यह मेरा क्षेत्र नहीं है, यहां से मुझसे यह सब नहीं जमेगा, यहाँ तक का पहाड़ा पढ़ चुका था। मैं कुछ नहीं लिख सका।

इसके बाद त्रिपुटी (जि. सातारा) में हमने अर्थात् समाजवादी युवक दल ने दलितों और खेतिहरों का एक सम्मेलन आयोजित किया। डॉ. अनिल अवचट आए थे। सम्मेलन के बाद देर रात तक बातें चलती रहीं। बातों का अर्थ होता मैं बोलनेवाला और अनिल सुननेवाला। जीवन में जो कुछ भोगा, सहा, वह सब उसे सुना रहा था। बातें समाप्त होने के बाद अनिल ने कहा कि मैं यह सब लिख डालूँ। परंतु न लिख पाने के वही पुराने बहाने। अनिल का बहुत जोरदार आग्रह होता। फिर मैंने कहा कि अब लिखूँगा। अनिल ने तीन-चार प्रकाशकों के नाम सुझाए। उसमें एक नाम 'ग्रंथाली' का था। ये लोग प्रगतिशील आंदोलनों से जुड़े हैं, इसलिये यह पुस्तक इन्हें देने का निर्णय मैंने लिया।

श्री प्रमोद कोपर्डे ने शुरू से ही पांडुलिपि पढ़कर निरंतर लिखते रहने की प्रेरणा दी। साथ ही, समाजवादी युवक दल के डॉ. नरेंद्र दाभोलकर, पार्थ पोलके, किशोर बेड़किहाल, दिनकर झिंब्रे आदि ने हर तरह का सहयोग दिया। इसलिये तो यह यात्रा यहाँ तक हो पायी।

पुस्तक के बारे में क्या लिखूँ? जो जिया, जो भोगा, अनुभव किया, देखा वही सब लिखता गया। वही जीवन बार-बार जीता गया। किसी पर दोषारोपण करने का कभी इरादा नहीं रहा। कई बार मोह होते हुए स्वयं को संतुलित करता। कुछ जगह, कुछ लोगों के नाम मजबूरन बदलने पड़े। इतना छोड़कर मेरी गांठ का इसमें कुछ नहीं है।

इस पुस्तक के कारण खानाबदोश जातियों-जन जातियों के सवालों पर सामाजिक विचार मंथन शुरू हुआ। बनजारों की समस्याएं सामाजिक चर्चा के विषय बने और उनके लिए

काम करने वाले लोगों को प्रोत्साहन मिला, गति मिली तो मैं समझूंगा कि पुस्तक लिखने का मेरा परिश्रम सार्थक हो गया। पीढ़ियों से गधों की पीठ पर अपना घर-संसार लादे जीवन जीनेवाले लोगों की वेदना यदि समाज समझ सका, तब भी काफी है।

इसे लिखकर जाति-बिरादरी की दृष्टि से मैं काफी बड़ा अपराध कर रहा हूँ। दण्ड देने की उनकी व्यवस्था मुझे मालूम है। इसका फल भोगने की मेरी तैयारी है। पिताजी ने एक ही मंडप में दोनों छोटी बहनों की शादियाँ पहले ही कर डाली हैं। क्या इसलिए यह सब लिखने का साहस मैं कर सका हूँ।

सातारा, 19-8-80

लक्ष्मण माने

गाँव के बाहर गधे खोल दिये थे। उन जानवरों के पीछे-पीछे उन्हें सोंटा लगाते हम खेलते होते। मैदान पर पड़े खप्परों के 'जूठे' टुकड़ों से लगोरी या तो गोटियां खेला करते। शरीर पर मांगकर लाई कमीज़ होती। उस पर पैबंद होते और वह मुड़ी-तुड़ी होती। उसी से सारा शरीर ढँक जाता। चड्डी का ठिकाना ही न था। सारा काम घुटने तक कमीज ही कर डालती। आस्तीनें हाथ के नाप की कभी न होतीं। उसका उपयोग बहती नाक पोंछने के लिए होता। सिर पर या तो बाप की टोपी होती या भीख में मिली टोपी। तेज हवाएँ परेशान करतीं, टोपी सिर पर ठहरती ही न थी। खग्या, इंद्या, मारुति और मैं कूड़े के ढेर के पास या टट्टी-मैदान में खेला करते।

उम्र ठीक से याद नहीं आ रही है - तब की। परंतु, एक दिन सुबह- सुबह भरपूर कपड़ों में एक आदमी बाप से बातें कर रहा था। मैं आधी नींद में ही था। परंतु, बाप के चेहरे पर हँसी देख रहा था। मुझे लगा, होगा ग्राहक-डालियों या टोकरियों का। बाप शायद इसलिए खुश है। पर ऐसा कुछ भी नहीं था...बाप सीधे मेरे पास पहुँचा। इधर हम तो फटी गुदड़ी में खर्राटे भर रहे थे। झल्लाकर बाप ने एक लात दे मारी, रांड का...अभी तक सोया है? अरे देख, दिन कितना चढ़ आया है। उठ, मैं चुपचाप उठा। लोटे में पानी लेकर मुंह धोया। तभी बाप गरजा, 'आज से स्कूल जाना है, जब तक यहां हैं, तब तक। कल स्लेट पेंसिल ला दूंगा।'

मैं ऐसे देख रहा था ज्यों बिच्छू ने मुझे डंक मार दिया हो। मेरी तो जान ही निकल गई थी। मन में आया, स्साला...बाप ने आज सुबह- सुबह ही चढ़ा ली है, शायद...या रात की अब तक उतरी नहीं है। या तो फिर अब तक नींद में ही है। अचानक यह स्कूल का क्या निकाल कर बैठा गया। स्कूल पढ़कर मैं क्या मास्टर हो जाऊँगा? मैं बाप की ओर देखने लगा इतने में वह फिर माँ पर झल्ला उठा, अरे उठाने में मदद करेगी या पाटिलन हो गई है।'

माँ ने बोझा उठाने में मदद की। बाप सिर पर बोझा रखकर तेजी से ओझल हो गया।

मैं धीरे से माँ के पास गया। उसने 'चा' बनायी थी। कोरी-कड़क बिना दूध की और बिना गुड़ की चाय। पतीली भर चाय पी और गधे खोलकर गाँव के बाहर ले गया। गधे मैदान में चरने लगे और मेरी आँखों के सामने बाप का स्कूल नाचने लगा। सच तो यह है कि खुशी हो गई थी। ...गधों के पीछे-पीछे जाना छूटेगा। कचरे के ढेर उकेरना बंद होगा। गधा किसी भी बाड़ में घुस गया तो गालियों से बच जाऊंगा और गधे कांजीहाउस चले गये तो बेंत की मार बच जाएगी। मैं अभिभूत हो गया। गधों को पानी पिलाना था। मैं तो अपने खयालों में मग्न था। मेरी तंद्री, कानों पर पड़ी आवाज से टूटी 'भड़ुए, गधों ने सारा का सारा घास ढेर डकार लिया है, यहाँ क्या मूत पी रहा है। मुए भिखारी। मुओं ने सारा

गाँव तंग कर छोड़ा है। औरत ने कान पकड़ा था। चल तेरे बाप के पास ...कह कर अपने मुँह की चक्की चालू रखती। अब बाप के पास जाने का मतलब था मरने तक मार खाना और जिसके कारण अपनी मुत्री शुरू हो गई। औरत घसीटते हुए मुझे हमारे तंबू ले आई। फिर मैंने अपना भोंपू खोल दिया। कान टूट रहा था। जान ही निकल आई थी, पर वह औरत न छोड़ती। तंबू में कोई न होता। माँ कब की टोकरी, कुल्हाड़ी और लकड़ी का गट्ठा लेकर बेचने चली गई थी। तंबू के पास अकेली समी खड़ी थी। उसने यह नाटक देखा और सोचा कि भैया को अब मार पड़ेगी, इसलिये उसने भी भोंपू शुरू कर दिया। औरत गालियाँ देती हुई कहने लगी, शाम को देख लूंगी। मुए तेरी मय्यत निकालूंगी। वह धौंस देकर चली गई। मैं कान सहलाता, नाक पोंछता भागा। गधे नदी की ओर हांके नहीं तो और मार पड़ती। पैर में बबूल की बाड़ का कांटा चुभा था। झटके से निकाल फेंका और जख्म पर मिट्टी लगायी। एक गहरी टीस उठी। उसे दबाया और नदी की ओर निकल पड़ा।

गधे चर रहे थे। नदी के किनारे-किनारे। जान में जान आई। गधों के साथ मैंने भी गटागट पानी पिया। कान में दर्द था। दोपहर ढल रही थी। पेट में आग लगी थी। मैंने गधे कचरे के ढेर के पास खोल दिए। तंबू में आया। इंदया को गधों पर ध्यान रखने को कह दिया था। बाप उसी समय लकड़ी का बोझा लेकर आया। छोटी टहनियों के खरहरे से धूल साफ की। पानी छिड़का और माँ को पुकारता हुआ गाँव की ओर चल पड़ा। माँ अपने साथ रोटी, सालन और न जाने क्या-क्या लेकर आ रही थी। बाप ने उसके सिर की गठरी उतारी। दोनों जोर-जोर से बातें करते आ रहे थे। लाली, पुष्पी, किसन्या माँ का आंचल पकड़े हुए थे। घबराये हुये थे...मैं अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ा था, बाकी छोटे थे। माँ के साथ ही गांव गये थे। सबके पेट में भूख की ज्वाला की लपटें उठ रही थीं। माँ ने ज्वार की काफी रोटियाँ लाई थीं। तीन रोटियाँ पाटिलन ने दी थी। उसी ने रात का बचा-खुचा दिया था। दूसरी औरतों ने भी कुछ दिया था। इसी सबसे माँ का आंचल भर गया था। हम सब खाना खाने बैठे। बाप ने हाथ में ही ज्वार की रोटी और बेसन लिया। माँ ने खाना ही नहीं खाया। मुझे रोटी और खट्टी-खट्टी-सी दाल दी और न जाने क्या-क्या दिया। चूरा बनाकर सारी बासी रोटियाँ पेट में ढकेल दीं और कमीज से हाथ पोंछने लगा। दिन सिर पर चढ़ आया था। बाप गंभीर मुद्रा में कुछ सोच रहा था। ज्यों झटका लगा है, ऐसी मुद्रा में लकड़ी का गट्ठा खोला... हंसिया ली। कच्ची लकड़ियां और बांस चीरने लगा। इतने में उसने ऊपर देखा, ज्यों कुछ याद आ गया हो। तब तक मैं इंदया के गधे बटोरने निकल पड़ा। हमारे साथ मेरे बाप के चचेरे भाई का भी परिवार था। इंदया उन्हीं का बेटा था। वह मेरी ही उम्र का था। बाप के पुकारने पर लौटा। तब की औरत तो नहीं आई है, यह सोचकर घबरा उठा था। पर वह औरत नहीं आई थी। कई परिवार आए थे। वहां कोई नहीं था। सब हमारे ही लोग थे। बाप के पास वापस आ गया।

स्कूल जाना है। बाप गरजा, 'चलो मास्टर ने सुबह ही पूछा है, जब तक यहां हैं, स्कूल में लेने को राजी हो गया है।'

लेकिन अब बाप का यह रूप देखकर मैंने रोना शुरू कर दिया। बाप सचमुच स्कूल



भेज रहा था। मैं माँ के पीछे जाकर खड़ा हो गया। बाप ने हरी छड़ी उठा ली। बाप की आँखें गुस्से से लाल हो गई थीं। उसने गुस्से के आवेग में माँ को चार-पाँच गालियाँ बकीं।

'क्या हमारी तरह फालतू बैठा रहेगा?' ऐसी ही बातें ऊंची आवाज में बोल रहा था। माँ पीछे हट गई। मेरा हाथ बाप के हाथ में था। मेरी चीख पुकार सुनकर बच्चे औरतें भरी दुपहरी में कैकड़ियों के घर तमाशा देखने अपने-अपने आंगन में खड़े हो गये। 'जाने दो, बापू, क्यों पीटते हो?' सयाने-समझदार सलाह देने लगे। माँ बेचारी रो रही थी और बाप हीरो हो गया था।

दोपहर की स्कूल छूटी थी। बाप को करंट लगा। हमारी 'बारात' मंदिर के स्कूल की आंगन में पहुंची। सारे लड़के चारों और इकट्ठा हो गये। सबकी नजरें मुझ पर टिकी थीं। बाप मास्टर के साथ बातें कर रहा था। अरे साल्ला! कैकाडी का बेटा स्कूल में ? सबके चेहरों पर आश्चर्य झलक रहा था। बाप ने मुझे मास्टर के हवाले कर दिया और लौटते कदमों से घर की ओर निकल पड़ा। मैं गांव के लिये नया था। लड़कों के लिए और मेरे लिए मास्टर के लिए सब सब नया था। आज गांव का नाम निश्चित रूप से याद नहीं आ रहा पर वाड़ी ही होगा। पेट भरने हम यहां आए थे, कितने दिन रुकेंगे मालूम नहीं। जिस प्रकार मुर्गियां अपने चूजों में दूसरे चूजे के आते ही उसे चोंच से घायल करती हैं, उसी तरह स्कूल के बच्चे मुझे छेड़ते। ऊपर से मेरी हालत कचरे के ढेर पर पड़े कुत्ते-सी थी।...कोई लड़का पास न बिठाता। बेचारा मास्टर अच्छा था। उसने मुझे दरवाजे के पास ही बिठाया। लड़के स्पर्श न करते। मेरे पास स्लेट तक नहीं थी। पुस्तक किसे कहते हैं,....पेंसिल क्या होती हैं....स्कूल यानी क्या....वहां क्या करना होता है....कुछ यानी कुछ भी मालूम नहीं था। हमारे बाप की किसी पीढ़ी ने स्कूल की शक्ल नहीं देखी थी। हमें एक ही पाटी (बास की फांके) मालूम थी। जिसे बाप बुनता था स्कूल ही पाटी (स्लेट) पहली बार सुन रहा था। मास्टर पुस्तक लेकर पढा रहा था। उधर लड़के मेरे पैर का मैल और बहती नाक देख रहे थे। मेरा ध्यान किसी बात पर नहीं था। आँखों के सामने तंबू, मां-बाप, समी, कच्ची लकड़ियां, बांस की फांके और गधे घूमते रहते। और होता नाला, नाले के किनारे की घास, घास में मैं, इंदया कीचड़ से केकड़े पकड़ रहे हैं और इसी तरह न जाने क्या-क्या मेरे सामने घूमता रहता। काफी समय बीत गया पर स्कूल न छूटती। मन बेचैन हो गया। हाथों के इशारे बढ़ते जा रहे थे। पेशाब भी जमकर लगी थी। मास्टर का ध्यान मेरी ओर नहीं है, इसका लाभ उठाकर सिर पर पैर रख जो भागा तो सीधे नाले पर जाकर रुका। घर जाने की हिम्मत नहीं थी।

नाले पर इंदया, खग्या मछलियाँ पकड़ रहे थे। फटे धोती के कपड़े में मछलियाँ पकड़ते। मैं भी पानी छानने लगा। इंदया बोला 'लक्ष्या, स्कूल में क्या होता है ? मास्टर कैसा है? तू स्कूल जायेगा ?'

सारी उत्सुकता उसकी सुनने की थी। मैं स्कूल गया...यानी क्या ? वहां क्या हुआ? मैं बता रहा था,

'मैं स्कूल नहीं जाऊंगा। वहां लड़के सिर्फ बैठे रहते हैं। उधर वह मास्टर क्या-क्या बकता है, कुछ पल्ले नहीं पड़ता।'

बहुत कम मछलियाँ जमा हुई थीं। मछलियों की चटनी बनी। मुझे भी मेरा हिस्सा मिला। गधे चर रहे थे। दिन डूबने लगा था। धूप के उतर जाने के कारण मछलियाँ न मिलतीं। हम घर की ओर निकले। घर के पास आया। पर स्कूल छूट जाने के बाद भी बेटा नहीं आया इसलिये माँ स्कूल की ओर गई थी। उसकी जुबान शुरू हो गई थी। वह बाप को बता रही थी,

'तू लक्ष्या को मार डाल, जला डाल, तभी तुम्हें संतोष मिलेगा। ये क्या पढ़-लिखकर बड़ा अफसर बनेगा ?'

अब बाप का पारा चढ़ गया था। उसने आवाज तक न की और दो चार छड़ियाँ आपस में गूंथ डालीं। माँ का मुंह दूसरी ओर था। बाप ने पैरों की आवाज तक नहीं होने दी। और सट्टासट छड़ी के कोड़े बरसाने लगा। एक हाथ में माँ की चोटी पकड़ रखी थी और दूसरे हाथ से मार रहा था। माँ ने चिल्लाना शुरू किया। समी, लाली, पुष्पी, किसना और मैं भी मां के ऊपर गिर पड़े। जयश्या, महाद्या, बाप के चचेरे भाई छुड़ाने आए। बाप का मुंह चालू था।

'गली का कुत्ता बनकर घूमने दे। मैं क्यों स्कूल में डालूं ? रांड, उसे क्या आवारागर्दी करने दूं ? उसे स्कूल में डालकर मास्टर बनाऊँगा। अफसर बनाऊँगा। तू बीच में आनेवाली कौन ? ऐसा ही वह बोल रहा था। मेरी मार टल गई थी, परंतु मां के बदन पर उभरे निशान से तिलमिला गया था। ऐसा लग रहा था कि स्कूल से भागकर झख मारी। मन में एक ही बात थी, अब स्कूल से नहीं भागूंगा। बाप कहता है न मास्टर बनाऊंगा। बस, अब पढ़ूंगा, स्कूल जाऊंगा।

रात काफी हो गई थी। तीन ईंटों का चूल्हा जल रहा था। बाप, मां के शरीर पर हल्दी लगा रहा था। समी, मैं, पुष्पी, लाली, किसन्या सोये थे। माँ ने खाना खाया था। सुबह उसने रोटी का सिर्फ एक टुकड़ा खाया था। मुझे नींद न आती। माँ-बाप आपस में बातें न करते। चुपचाप काम कर रहे थे। मार खाया था, फिर भी मां बांस चीरकर देती। बाप डालियां बुन रहा था। काफी रात बीत गई, तब भी यह सब चलता रहा। मुझे नींद लग गई होगी यह सोचकर बाप, माँ के पास गया।

'गुस्से में, अन्जाने में तुझे बहुत लग गया री। वह पढ़ेगा तो परमेश्वर उसका भला करेगा,' कहते हुये बाप उसके सिर से, शरीर पर जहां निशान उभर आए थे वहां से हाथ फेर रहा था। मैं नींद का बहाना कर सोया पड़ा था। मां कह रही थी, 'तेरा हाथ है या पत्थर ? बहुत लगा है।' तब की फांकें कब की खत्म हो गई थीं। माँ कह रही थी, 'कल चार मन की छड़ी लाई है। यहां और आठ दिन गुजारा होगा। आठ दिन के बाद यहाँ से डेरा हिलाना पड़ेगा।

दूसरा दिन उगा। बाप फिर बड़े सबेरे निकल पड़ा। मां ने चाय बनाई। मुझे उठाया, छोटे बच्चों को उठाया। मां कह रही थी, 'लक्ष्या, स्कूल का समय होने तक गधों को जरा ले जा। जब बच्चे स्कूल की ओर जाने लगेंगे, तब समी को गधों की ओर भेज दूंगी। फिर तुम स्कूल चले जाना। स्कूल से भागना मत हं। नहीं तो तेरा बाप जान निकलने तक पीटेगा।'



मैं गर्दन झुकाए सुन रहा था। गधों की लीद एक ओर की...राधी को...भागी को खोला...गधे के बच्चे अपनी माँ के पीछे-पीछे जाने लगे। हमने गाँव के बाहर चरने के लिए गधे छोड़ दिये और गोटियाँ- कंचे खेलने लगे।

स्कूल में नये उत्साह से जाना है। माँ को मार से बचाना चाहिये। वहां मन नहीं लगा, फिर भी बैठूंगा इस तरह इरादा पक्का करता बैठा। समय कब बीत गया पता ही नहीं चला।

समी - मेरी छोटी बहन - नाक पोंछती आई और बोली, 'भैय्या, माँ बुला रही है, तुझे। मैं गधे संभालूंगी।' मैं छूट दौड़ता गया। रास्ते में एक कूड़ाखाना था। उस पर मूंगफली के छिलके नजर आए। स्कूल जाने की बात ही दिमाग से निकल गई। एक नुकीला पत्थर लाया और जहां छिलके पड़े थे, वहां खोदना शुरू किया। काफी देर बाद वहाँ मूंगफली के दो दाने निकले। मैं और मूंगफली ढूंढ़ता बैठा। उधर माँ ने काफी प्रतीक्षा की। बाद में लक्ष्या-लक्ष्याऽऽ जोर-जोर से पुकारने की आवाज मेरे कानों पर पड़ी। मैं तुरंत तेजी से दौड़ा मूंगफली वहीं छूट गई थी।

माँ मट्ठा मांगकर लाई थी। बासी रोटियाँ, सेम की साग, चटनी बचा- खुचा चावल, सारा कुछ गाँव से मांगकर लाई थी। माँ खलिहान में झाड़- पखार देती, उसके बदले में जो कुछ भी बासा, बचा-खुचा दे देते ले आती। हम सब वही खाते। यह रोज सुबह का खाना होता। हम अल्युमिनियम की कटोरी में दाल लेते....हाथ में रोटी होती....नाक से टपकती धार ऊपर खींचते....खाना खाते होते। तभी धड़ाम से आवाज आई और मैंने चौंककर पीछे देखा। बाप ने हरी छड़ियों का गट्ठा नीचे पटका था। वह मेरे पास पसीना पोंछता बैठ गया। मां ने पानी दिया। गटागट पानी पीकर उसने लकड़ी के गट्ठे से शहद का छत्ता निकाला। मुझे बेहद खुशी हुई। कभी-कभी शहद मिलने पर बाप हमारे लिए लेता आता। मैंने शहद खाया और स्कूल की ओर भाग गया। मैं स्वयं स्कूल बिना किसी के कहे जा रहा हूं यह देखकर बाप को बहुत खुशी हुई। उस दिन वह तीन-चार बार स्कूल के चक्कर लगा आया। मैं पत्थर की तरह बैठा रहा। पास के लड़के बात न करते। मैं कोंकाड़ी भाषा जानता था। लड़के मराठी जानते थे। मैं बड़ी मुश्किल से मराठी बोल पाता। लड़के मुझ पर हँसते और मेरी खिल्ली उड़ाते कोई मेरी कमीज ऊपर उठाता। मेरी तो जान ही निकल जाती। चड्डी तो नीचे होती ही नहीं। कमीज से ही सब कुछ ढंक जाता था। बैठने पर सारा दिखता रहता। लड़के हँसते। मास्टर झुंझलाता। ऊपर से मेरे पास स्लेट, पेंसिल, पुस्तक, कुछ भी नहीं था। मैं सिर्फ झुंझलाता रहता बाप कहता है, मास्टर बनेगा। कैसे मास्टर बनूंगा?

बस यही बात दिमाग में रहती। ऐसा लगता ज्यों सारा शरीर जकड़ दिया गया हो। स्कूल में क्या चल रहा है, कुछ भी पल्ले न पड़ता। मास्टर मेरे साथ कभी न बोलते। मैं बैठा-बैठा ऊब जाता। दिमाग में, समी, इंदया, पुष्पी, किसन्या, भागी, राधी, गधे के बच्चे और तंबू घूमा करते। मन न लगता। सभी लड़के चड्डी, कमीज, टोपी पहने होते। उनके पास स्लेट और थैली होती। मैं नंगा। सब बेकार लगता। स्कूल में कुछ चलता होता, तो भी मैं ऊंघता रहता। लड़के चटाई की सींक से कान गुदगुदाते। मेरे जाग जाने पर सब हँसते। विचित्र कोलाहल होता और मुझे लगता कि वहां से भाग जाऊं।

धीरे-धीरे लड़कों से पहचान हो गई। अब लड़कों ने चिढ़ाना बंद कर दिया था। शायद मास्टर मारता था, इसलिए बंद किया होगा। मैं ऊंघता रहता। स्कूल छूटने पर दूसरे लड़के अपनी रोटियाँ खाते, मूंगफली खाते और न जाने क्या-क्या खाते। मैं उनकी ओर ताकता रहता और मुंह में आया पानी निगलता रहता। इस तरह हमें खाने के लिए कभी न मिलता? हम इनसे अलग हैं, ये सब खाते हैं। हमें सिर्फ देखना है, यही बात मन में आती रहती। परंतु, किसी ने मूंगफली या रोटी का टुकड़ा दिया तो बड़ा अच्छा लगता। उस दिन स्कूल जाने की इच्छा होती।

इस तरह आठ दिन चला। नियमित स्कूल जा रहा था। बिल्कुल इच्छा न होती पर बाप के हाथों में छड़ी देखकर कोई पर्याय न होता। रोते-गाते ही सही स्कूल जा रहा था।

उस रात मैंने माँ-बाप की बातें सुनीं। बाप कह रहा था, 'दो पहाड़ चढ़कर जब खाई में उतरे, तब यह हरी छड़ी दिखाई देती है। आस- पास के पौधे समाप्त हो गये हैं। ग्राहक भी मुफ्त में मांगने लगे हैं। दो-चार पसेरी जो भी अनाज मिलेगा, वह बटोर लेंगे और परसों यहाँ से कूच करना पड़ेगा।'

माँ हामी भर रही थी, औरतें अब खाना नहीं देतीं, गालियाँ देती हैं....बाप ने जयसिंह को आवाज दी, 'अरे जयसिंग्या, आ तमाकू खाने। बाप भाई को बुलाकर यही बता रहा था। जयसिंह बाप के कहने के बाहर न था। बाप ने दो पत्थर रखकर चूल्हा बनाया और तमाकू मुंह में डाली। जयसिंह को तमाकू दी। फिर दोनों बातें करने लगे। मां ने चूल्हे में लकड़ियां ठूंसीं। तीनों ओर से आग निकल रही थी। बाप बीच-बीच में थूंकता रहता। उसने एक सांप देखा था उसी के बारे में बताता रहता था। मैं और आगे खिसक आया। इंदया, खग्या, म्हाद्या, सब लोग ध्यान से सुनने लगे। बाप सुना रहा था, कोकण का एक किस्सा।

एक बार की बात है कि बाप जंगल में बेंत काटने गया था। हाथ में हँसिया था। जंगल सुनसान था। सिर्फ पैरों के चप्पल की आवाजें, बदबूदार पेड़ करौंदा और पहाड़ी वेलों में लिपटे झींगुरों की आवाजों के बीच एकाध चिड़िया की आवाज को छोड़ सब सुनसान था। सब कुछ कैसा शांत था। ज्यों किसी आदमी की मौत हो गई हो। एक चिड़िया तक नजर न आती। अभी सूरज उगा नहीं था। उजाला पूरी तरह नहीं हुआ था। बाप ने पगड़ी ठीक से बाँधी। धोती का छोर खोंसा और झाड़ियों में घुस गया। सपासप हाथ चला रहा था। कंटीली झाड़ियों के कारण उसके हाथ लहूलुहान हो गये थे। और जगह-जगह कट गये। पर कुछ तो छड़ियां मिलें, बांस के टुकड़े भी ताकि कम से कम दो डलिया और चार-पांच टोकरी का सामान मिल जाये। यह सोचकर बाप हाथ चला रहा था। टेढ़ी टहनियों का छोर वह छांट डालता। सीधी टहनियां पीछे डालता। मूठ-मूठ का गट्ठा बनाता। वह अपने काम में मग्न था। फिर अचानक हाथ से रक्त की धार बह निकली। बाप को लगा अब मर गया। लगता है, हाथ ही कट गया है। यह सोचकर बाप रुक गया, देखने लगा तो एक काला सांप बाप ने काट डाला था। बाप के रोंगटे खड़े हो गये और पसीना फूट पड़ा। बाप ने सांप की पूंछ फेंककर ऊपर देखा तो झाड़ियों के बीच फंसा सांप फन फैलाकर हमले की तैयारी में था। बाप पीछे खिसक गया और सोचा, यदि इसे छोड़ता हूँ तो यह बैर रखेगा। रात



को आकर डसेगा। इसे मारना ही होगा। सांप तो झुरमुट में बैठा है। नीचे आया तो दूसरे झुरमुट में निकल जाएगा। बाप अकेला था, क्या करे ? उसे कुछ न सूझता। सांप ने उसे काटा नहीं है, यह सुनिश्चित करने के लिए वह अपने ही हाथ में चिकोटी काटकर देखता। पीछे खिसक गया और सोचा, यदि इसे छोड़ता हूं तो सांप बैर रखेगा। मन में बसी कालूबाई, यल्लमा, लमान सब देवी-देवताओं को याद करता। देवता के नाम से भभूति से सूप में मिट्टी डालने लगा, सांप बाहर आएगा इस डर से। पर, सांप वहीं लपलपा रहा था। अंततः बाप को एक युक्ति सूझी। उसने पैरों से पत्तियां इकट्ठी की, परंतु नजर सांप पर ही थी। जेब से माचिस निकाली और सारे झुरमुट में आग लगा दी। झुरमुट ने तेजी से आग पकड़ ली। झुरमुट की सूखी पत्तियों और टहनियों ने आग पकड़ ली। धुआं ही धुआं चारों और फैल गया। सूखी लकड़ियों के साथ कच्ची भी जलने लगीं। बाप ने बेंत का गट्ठर बनाया। अब सांप जल जाएगा। बैर नहीं रख सकेगा। मां कालू ने आज मुझे बचा लिया, नहीं तो आज जान से हाथ ही धोना पड़ता। सिर पर गट्ठर था। और पैर फूर्ति से उठने लगे थे। मन में ईश्वर का नाम जपते-जपते बाप पहाड़ पारकर घर आ गया।

उस दिन जयसिंह, मां-बाप और पारी (जयसिंह की पत्नी) काफी देर तक बातें करते बैठे। उस दिन काम करीब-करीब नहीं ही था। माल के लिए ग्राहक नहीं थे। पहाड़ों पर डलिया के लायक टहनियां नहीं थीं। क्या करें, इसकी योजनाएँ बन रही थीं। हम सब बच्चे सो गए थे।

रात का समय होगा। मुझे तो आकाश तारों से भरा-भरा लग रहा था। माँ और बाप तो कब के उठ गए थे। बाप ने मुझे, समी को हिलाकर जगाया। समी तो अपना भोंगा शुरू कर रोने लगी। माँ ने उसे दो- चार तमाचे जड़ दिये। समी का रोना बंद हुआ। फिर माँ इतनी रात में चूल्हे पर रोटियां सेंकने लगी। सारा गाँव शांत सोया था। बाप जल्दी में था। डलियाँ में डिब्बे, जरमन के भगोने, हंसियाँ, फटी बोरियाँ और रस्सियाँ भर रहा था। सिर पर उठाने के लिए, सहारा देने के लिए माँ से कहा। मुर्गे ने बांग दी। गधे चुपचाप खड़े थे। गधे के बच्चे जमीन पर लेट रहे थे। एक बड़ी डलियाँ में उड़द, मूंग, सेम की फल्लियाँ, मूंगफली, तिल्ली, अलसी, हरी मिर्च, पास-पड़ोसियों से जमा किए गए पुराने कपड़े, ये सारी चीजें मां ने जल्दी भर ली थीं। सारी फटी गृहस्थी थी। बाप जल्दी सारा कुछ भर रहा था।

जयसिंह के तंबू में भी चहल-पहल थी। इंदया, खग्या, महाद्या उठ गए थे। मैं, समी उठ गए थे। सब शोरगुल कर रहे थे। कौन क्या कर रहा है, कुछ समझ न पड़ता। बाप और जयसिंग यूं ही चिल्ला रहे थे। हम बच्चे चुपचाप बैठकर देख रहे थे। उनकी टोकरी भर आई थी। पारी ने सब तैयार कर लिया था। माँ का भी काम हो चुका था। सुबह होने वाली थी। औरतें हाथ में लोटा लेकर आतीं और कुछ दूर हटकर लोटा रखकर बैठ जातीं। कैकाड़ियों के तंबुओं की हलचल देख रहे थे। खंखार रहे थे। कोई बाप के पास आकर बातें करता। तमाकू खाते और निकल जाते। बाप का हाथ चलता रहता। बाप ने राधी को और भागी को सामने रखा। गधों के बच्चों को चारा डाला। लगाम डाली और माँ पर झल्लाया। उससे दोनों गधे नहीं संभल रहे थे।

'अरे, जल्दी करो, महार रास्ता काट देगा ।' वह बोला । माँ ने गधा संभाला । बाप ने और जयसिंह ने टोकरियाँ गधों पर रख दीं । रस्सी से ठीक तरह बांध दीं । लगाम खूंटी से बांधी । गधे के बच्चे उधम कर रहे थे । हमें चाय तक नहीं मिली थी ।

जयसिंह की एक टोकरी के चार आने किसी से आने बाकी थे, वह लेने गया था, इसलिये सब कुछ रुका पड़ा था । बाप को निकलने की जल्दी थी । बाप पारी पर झल्लाया, अरी देखो भी...कहां चला गया...काफी समय हो गया है । ....जाओ....ढूंढो उसे ।'

पारी जल्दी में गई । जयसिंह आया । उसका बोरिया-बिस्तर गधे पर लादा । सारी तैयारी हो गई । बाप ने भगवान की डलिया धोती में लपेटकर गधे की पीठ पर रख दी । ठीक से बांधने के बाद 'माँ मातुश्री कालूबाई....' उच्चारने के बाद सबको गुलाल लगाया । मन ही मन कुछ बड़बड़ाता रहा । गाल पर खुद ही एक तमाचा मारा...एक पैर पर खड़ा रहा और बोला, 'चलो' मुझे राधी पर बैठाया । समी भागी पर बैठी...किसन्या को बाप ने कांधे पर उठा लिया । पुष्पी को मेरे सामने राधी पर बिठाया । लाली को माँ ने गोद में ले लिया और गधे चल पड़े । बाप के हाथ में छड़ी थी और वह गधों के पीछे श्या..या..या आवाज करता निकला। सबसे आगे जयसिंह के गधे थे । उसके पीछे जयसिंह, पारी, खग्या, महाद्या और दो मुर्गियां तथा एक कुत्ता था । उसके पीछे हमारे गधे, मुर्गियों के दो दड़बे मेरे पैरों के नीचे लटक रहे थे । उसके पीछे समी बैठी थी । गधों के पीछे माँ थी और सबसे पीछे बाप आ रहा था। इस तरह हमारी सवारी, सारी गृहस्थी के साथ निकल पड़ी थी । बाप कह रहा था, 'जहाँ कहीं बांस दिखाई देंगे, काट लेंगे।'

गधे जैसे ही गाँव में घुसे, कुत्तों ने भौंकना शुरू कर दिया । अब पूरी तरह सुबह हो चुकी थी । सब पूछते, 'बापू, क्यों जा रहे हो?' बाप पेट पर हाथ फेरकर संकेतों में कहता। हाथ जोड़ता, 'अगले वर्ष फिर आयेंगे । भगवान, कृपा दृष्टि रहने दो,' गाँववालों से भी हाथ जोड़कर कहता, 'किसी का देना बचा हो तो अगले साल दे दूंगा या दूसरे गाँव से ला दूंगा। या तो मुलाकात पर बाजार में दे दूंगा ।' इस तरह कहता हुआ आगे बढ़ रहा था । हम गाँव के बाहर आए और बाप पीछे मुड़ा...शांत सोये गांव और शंकर भगवान के मंदिर की ओर हाथ जोड़ लिए । 'आशीर्वाद दे भगवान...बाल बच्चे सुखी रख...कहते हुए तेजी से आगे बढ़ गया ।

कारवां आगे बढ़ता रहा । गधे, समझदारों की तरह पगडंडियों से आगे बढ़ रहे थे । पगडंडी की दोनों ओर फसल लहलहा रही थी । गधे के बच्चे ठीक से नहीं चल रहे थे । गधों के पैरों में पैर डालकर चलते । गधे विचलित होते और हमारे गधों को परेशानी होती ।

डलियों का बोझ ठीक से नहीं बैठ पाया था । वह एक ओर झुक गई थी । इस कारण मैं और पुष्पी एक ओर झुक गये थे । सब तेजी से चल रहे थे । राधी के बच्चे ने राधी के मुंह पर लात मारी । राधी बिदकी और मुर्गियों ने चिल्लाना शुरू किया । बाप ने दौड़ो-दौड़ो...पकड़ो- पकड़ो कहते हुए माँ को आवाज दी । माँ बेचारी भागी-भागी आई । गधों को पकड़ा । गधे पर रखे बोरे ठीक किए । दोनों बोरों पर समान वजन रखा । चल रे राधी...चल कहकर आगे बढ़े । 'आज मेरे बच्चों को मार दिया होता....' कहकर राधी के पैर पर एक



चाबुक लगाया और राधी ज्यों सयानी हो गई । कारवां आगे बढ़ने लगा । रास्ते भर यही बात चलती रही कि किसके कितने पैसे देने बाकी हैं । किसकी कितनी उधारी बकाया है...और अचानक गधे रुक गये । सामने से दगडू रामूशी आ रहा था । उसे देखते ही जयसिंह ने गधे रोक दिये । बाप आगे आया । दगडू बाप को गाली दे रहा था । हम बच्चे गधे पर बैठे-बैठे यह सब देख रहे थे । बाप दगडू के पैर पड़ रहा था । वह कह रहा था, '....बीच जंगल में सारा सामान खोलकर मत देखिए ।' पर दगडू नहीं माना । वह कह रहा था, 'सारा इल्जाम मुझ पर आयेगा ।' बाप ने जेब में हाथ डाला । पैसे निकाले...पर दगडू न मानता, 'सारे सामान की तलाशी लेनी पड़ेगी । तुम लोगों का क्या भरोसा । भिखारी...सालो । किसी का कुछ ले जा रहे होगे तो ?' बाप ने उसके यह कहने पर हाथ जोड़ लिए । एक मुर्गी गधों से खोली और दगडू के हाथों में रख दी । जयसिंह ने पैसे दिये, तब कहीं जाकर दगडू एक ओर हो लिया ।

गधे आगे बढ़ गए, बाप ने दगडू के पैर पकड़ लिए, 'गरीबों पर दया करो ।' दगडू प्रसन्न हुआ । उसने माँ की ओर देखा, हँसा और गाँव की ओर बढ़ गया । माँ-बाप, जयसिंह, पारी सब चुप थे । गधे आगे चल रहे थे ।

सूरज उगते ही बाप ने उसे नमस्कार किया । सूरज की किरणें तेजी से ऊपर उठ रही थीं । सूरज चढ़ता गया और आँच बढ़ती गई । हमें भूख लगने लगी थी । माँ ने मुझे और सैमी को हरी-मिर्च की चटनी और रोटी दी । हमने गधों पर ही खाना शुरू किया ।

काफी दूर निकल आने पर मैंने माँ से पूछा, 'कहाँ जाना है?' माँ ने कहा, 'अरे, हम गरीब लोग...जहाँ कुछ मिल जाए और तुम्हारा बाप कहे, बस वहीं जाना है । मुझे अच्छा नहीं लगा । मैं उसे बार-बार इसलिए पूछता क्योंकि राधी पर बैठे-बैठे उसकी हड्डी इतनी गड़ रही थी कि मेरी चूतड़ दुख रही थी । मेरी परेशानी बढ़ रही थी । बाप गधे को 'झा, अरी झा... कहता हांक रहा था । अंततः माँ ने ही बाप से पूछा, 'सामान कहां उतारना है?'

बाप सोच रहा था ।

काफी देर हो चुकी, दूरी भी काफी कट गई थी । रास्ते में गाँव आ रहे थे, जा रहे थे। हमारे गधे आगे बढ़ रहे थे । चल-चलकर माँ परेशान हो उठी थी । धीरे-धीरे सबकी परेशानी बढ़ती गई । आवाजें बढ़ रही थीं । हम बच्चे अधिक तकलीफ में थे । बाप से जयसिंह ने पूछा, तब बाप बोला, 'अरे, अब तो कहीं चार-पाँच कोस आए हैं । जाधववाड़ी जाने दो हम पालवण में डेरा जमायेंगे । अभी और कुछ दूर चलना है और वहीं पहाड़ों पर बेंत भी काफी मिलेगी । बरसात आने पर, मंदिर का आसरा भी मिल सकेगा ।

गधों के पैरों में तेजी आ गई । बाप, जयसिंह काफी तेजी से चलने लगे । गधों की पीठ पर कोड़े बरसने लगे । हमारे गाल पर भी झापड़ पड़ जाती । हमारी आवाज बंद हो गई। फिर सिर्फ गधों के खुरों की आवाज, पैरों की आवाज..सिर्फ यात्रा ही यात्रा थी, पालवण पहुंचने तक । और हम पालवण की पगडंडी तक पहुंच गए ।

गधे जैसे ही गाँव की पगडंडी में उतरे, गाँव के कुत्ते जोर-जोर से भौंकने लगे । गधों के काफिले को देखकर वे दौड़कर तेजी से आते और भौंकने लगते । खग्या ने पत्थर मारना

शुरू किया पर कुत्ते चुप न होते । जयसिंह की कुतिया गांड में पूंछ डालकर गधों के पैरों के बीचो- बीच चलने लगी । मुर्गियाँ चिल्लाने लगीं और अचानक शोर-गुल मच गया । गाँव के बच्चे चड्डियाँ संभालते इन नए लोगों का स्वागत करने तेजी से दौड़े चले आए ।

बाप ने गाँव के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे तंबू लगाने को कहा । माँ ने सिर से बोझ उतारा । बाप ने, पीठ पर रखी भगवान की टोकरी संभालकर उतार कर चबूतरे पर रख दी । दोनों हाथ जोड़ लिए और बोला, 'यश दे, भगवान...' और टोकरी का गुलाल जमीन पर छिड़क दिया । तब तक माँ ने मुझे और पुष्पी को गधे से नीचे उतारा । समी को, लाली को नीचे उतारा । हम पीपल के चबूतरे पर खेलने लगे । माँ ने लकड़ियों की डाल से बने झाड़ू से चबूतरा और आसपास साफ किया । पीपल के पत्ते, लकड़ी के टुकड़े, आदमी और जानवरों का मैला इकट्ठा किया । बाप ने राधी और भागी पर रखा सामान उतारा । गधे पर टंगे थैले उतारे । उन पर बोरे ढंक दिए । गुदड़ियों का गट्ठा बनाया । चीथड़ों का ढेर बनाया। माँ ने कचरा साफ कर डाला । एक बज गया था । पेट में चूहे दौड़ रहे थे । बहुत भूख लगी थी । परंतु जब तक सामान ठीक से न लगेगा माँ खाना देनेवाली नहीं थी । आसपास तमाशबीनों की भीड़ लग चुकी थी । पास-पड़ोस की औरतें, बूढ़े, बच्चे सब डेरे के आसपास इकट्ठे हो गए थे । कुछ लोग बाप, मां और जयसिंह को पहचानते थे, 'अरे बापू इस साल आने में काफी देर कर दी । हमने तो सोचा था कि इस साल अब नहीं आओगे ।' एक ने कहा । 'पाटिल, न आने से गुजारा कैसे होगा? देवी माँ, जो भी देगी झोली भर लेंगे । पेट की खातिर....ईश्वर पेट के लिये भटकाता है । आपके आशीर्वाद से कम से कम अगले साल जल्दी आऊँगा ।' आसपास की औरतें माँ को कोदो, उपले, हार आदि दे रही थीं । कुतूहल और उत्सुकता सबके चेहरे पर थी । बड़े लड़के खिल्ली उड़ाते ।

बाप ने कलईवाला अल्यूमिनियम का हंडा उठाया और तेजी से नाले की ओर बढ़ गया। जयसिंह का तंबू लग चुका था । माँ-बाप हमारा सामान लगा रहे थे । जयसिंह के गधे के खुर में एक पत्थर बुरी तरह फँस गया । गधे ने पैर ऊपर उठाया और जयसिंह बैचेन हो उठा। उसने इंदया को एक गाली दी । सुआ लाने के लिये कहा । और गधे का पैर उठाकर रखा तभी गधे ने पिछले पैर से इंदया के मुंह पर लात दे मारी । इंदया जोर से चिल्लाया।

जयसिंह यूं ही क्रोधित हो गया । गधे के खुर से पत्थर निकल गया । उसने पैर नीचे रखा । तब जयसिंह के जान में जान आई । उसने माँ से कहा, चाची देखो गधे ने पैर रख दिया । बिल्कुल लंगड़ा कर चल रहा था ।'

जयसिंह ने घड़ा उठाया और पानी लाने चल पड़ा ।

बाप पानी ले आया । स्नान के बाद वह पूजा करता है । ऐसे में उसे छूने पर झापड़ पड़ती। मैं दूर से ही देख रहा था । टोकरी में तरह- तरह के पत्थर थे । लंबे और गोल-गोल पत्थरों में भगवान होते । बाप ने पीतल के एक बर्तन में सारे भगवान डाले । टोकरी का लाल चीथड़ा पानी से धोया । माथे पर गुलाल लगाया । 'माँ कालूबाई' कहकर मन ही मन बड़बड़ाने लगा। बर्तन से अपने आसपास पानी छिड़का । बचा हुआ पानी पास के किसान के छप्पर पर फेंक दिया ।



माँ ने रोटियों की पोटली खोली । लाल मिर्च की चटनी निकाली...नमक खत्म हो चुका था । गाँव से लेकर आया था । नमक और मिर्च खल-बट्टे में डालकर कूट डाला । बाप पानी लेकर आया था । बड़े बर्तन से पानी निकाला । घड़े में मिट्टी चली गई थी । उसे धोया और हम खाना खाने बैठ गये । चटनी का लोंदा और सूखी रोटियाँ हम सबने खायीं । गटागट पानी पिया । माँ बोली लक्ष्या, शाम के लिए लकड़ियाँ ले आ । लाली, समी तुम जाओ ।

बाप ने हंसिया ली और पास के ही जंगल में बांस, बेंत, काटने चला गया । हम जलाऊ लकड़ी लाने चले गये । बाड़ से लकड़ियां और कूड़े के ढेर से लकड़ियों के टुकड़े चुनना शुरू कर दिया । समी चार-पाँच उपले बगल में दबा कर भाग गई । मैं लकड़ी के टुकड़ों का एक गट्ठा बना रहा था । इतने में कूड़े के ढेर में बोदले का पौधा दिखा । कूड़े में 'बोदला' पका था । मैंने और लाली ने बोदले खाये और लकड़ियाँ लेकर चलने ही वाले थे कि औरतों की आवाज से चौंक गये, 'क्यों रे, मुओ, क्या कर रहे हो यहाँ ?' हमने तुरंत लकड़ियों का गट्ठा वहीं पटका और भाग निकले । सीधे डेरे पर पहुंचे । माँ को सारा किस्सा सुनाया । मन ही मन उस औरत को गालियाँ दे रहे थे । फिर लकड़ियाँ चुनने जाना पड़ा । लकड़ियों के लिए किसी की मार, गालियां खानी पड़ती । मौका पाते ही किसी बाड़ से लकड़ियाँ निकाल भागते। दिन ढल चला था । गाँव के लड़के डेरे के पास आकर बैठ गये थे । माँ उन्हें भगा रही थी, 'अरे हम क्या जानवर हैं ? क्या देख रहे हो रे बेवकूफों !' इधर लड़कों के लिये कुतूहल का विषय था कि खुले में तीन ईंटों का चूल्हा होता कैसा है ? यह कैसे जलता है । लड़के हटते और फिर जमा हो जाते । जयसिंह और बाप, पाटिल के पास गये थे । गाँव में आने के बाद पाटिल के मकान पर हाजिरी बजानी पड़ती । गधे, कुत्ते, मुर्गियां, आदमी सबका हिसाब बताना पड़ता । माँ ने चूल्हा जलाकर रोटियाँ बनाईं । साग के लिए कुछ नहीं था। माँ गाँव में गई । गाँव की औरतें माँ को दाल-साग क्यों देती हैं ? मुझे तो घंटों खड़ा रहना पड़ता पर कोई कुछ न देता। माँ को ही सब देते । साग बनाने के लिए बचा-खुचा दे देते। माँ ने किसी से शोरबा लाया था ।

शाम को शोरबा रोटी के साथ मिलेगा, यह सोचकर मैं खुश था । वैसे यह गाँव काफी बड़ा था । गाँव में बनिये की दुकानें थी । चारों ओर पहाड़ियाँ और टीले पर गाँव बसा था। सीताबाई पहाड़ी भी पास में ही थी । वहां चीते हैं, ऐसा बाप कहा करता था । गाँव का दुकानदार घोड़े पर बैठ कर बारह गाँवों की वस्तुएं पहुंचाता । कुलुकज, बोध, कलकरा की वाड़ी, गायदर, मठ, आघली मालवडी, जाधववाड़ी और ऐसे ही छोटे-छोटे बारह गाँव, पाँच-छह मील के आस-पास के इलाके में फैले थे । बीच में पालवण था । गाँव में सिंचाई की व्यवस्था नहीं थी । वहाँ सबसे अधिक बाजरा पैदा होता । माँ को जो कुछ मिलता उसमें बाजरा ही सबसे अधिक होता ।

पैदल चलकर माँ-बाप थक गए थे । हम सब सो गए थे । काफी रात हो गई थी । समी मेरे पास ही सोयी थी । रात को अचानक ही वह चीखने लगी, सारे लोग जाग गये । जयसिंह के घर के भी सब जाग गये । खग्या, महाद्या, इंद्या नींद में ही पूछ रहे थे कि क्या हो गया है । माँ-बाप समी से पूछ रहे थे कि क्या हो गया । समी को झटका लगा था । दाँत बैठ

गये थे । हाथ-पैर की नसें फूल गई थीं । आँखें पथरा रही थीं । और शरीर अकड़ने लगा था । अजीब-सा मुंह बनाकर चिल्ला रही थी । माँ घबरा गई थी । बाप उठा और टोकरी से भगवान की भभूति लगायी । परंतु कोई उपयोग नहीं हुआ । बच्ची को बुखार बहुत था। बाप उसे टोकरी के पास ले गया और मां को वहीं बैठने के लिए कहा । कूड़ेखाने से एक उपला लाया...सुलगाया...उस धुएं से अंधेरा और फैल गया...जयसिंह उसे हवा दे रहा था। मां पारी उसे गोद में बिठाकर हिला रहे थे । उधर बाप उपले के पास भगवान का नाम जपते बैठा रहा । बाप के शरीर में देवी ने प्रवेश किया । बाप जोर जोर से चिल्लाने लगा, 'छोड़, छोड़...पकड़...पकड़ ! बोल तू कौन है ? क्यों आया है? भगवान है या भूत है? बोल....!' ऐसा कहकर, मुट्ठियां कसता, होंठ चबाता घूमता रहा । जयसिंह ने बाप की धोती ठीक से बांध दी । फिर भी वह उछलता रहा । जयसिंह बोला, भगवान, तू इसे तकलीफ न दे । बच्ची खाना खाकर सो गई है । कोई अपराध हो गया तो माफ कर दे । मैं आँचल पसारता हूँ भूल-चूक हो गई होगी तो बच्ची को संभाल ले ।'

उसमें संचारित देव घूमने लगा और बोला, 'अरे तुम्हें दिखायी नहीं देता । मैं तुम्हें नहीं दिखता ? ...हं...हं' उसका घूमना चल ही रहा था । जयसिंह, माँ, पारी अपराधी की तरह देव के सामने झोली फैलाते बैठे रहे । बच्ची माँ की गोद में जैसी थी, वैसी ही पड़ी रही ।

जयसिंह बोला, 'भगवान, क्या गलती हो गई ? क्या करना रह गया ? इस लड़की को क्यों पकड़ रखा है ?' देव चुपचाप घूम रहा था, चिल्ला रहा था, चीख रहा था । मुझे पेशाब लगी थी । मैं माँ को पीछे से कसकर पकड़कर बैठा था । देव बोला, 'यहाँ से चार मील पर मैं राह देख रहा हूँ, भूल गया ?' जयसिंह को कुछ याद आया । उसका चेहरा खिल उठा। वह बोला, 'भगवान पूर्णिमा को हम नैवद्य- नारियल चढाएंगे । भूलेंगे नहीं । देव ने नाचना शुरू कर दिया । सारा गाँव सोया था । चारों ओर घुप्प अंधेरा था । अचानक बीच में ही कुत्ते भौंकते । हमारे तंबू में, दिसा-मैदान में, देव संचारित हुआ उसने भभूति दी । जयसिंह ने भभूति ली, समी के माथे पर लगायी । सभी ने लगायी और बाप ने धड़ाम से अपनी देह जमीन पर डाल दी । जैसे बेंत का गट्ठा डाल देते हैं । मैं मन में सोच रहा था कि अब बाप को और क्या हो गया । जयसिंह ने उसे उठाया पानी पिलाया, भभूति लगायी, । बाप ने आँखें खोलीं और अंगड़ाई ली । बच्ची के पास बैठ गया, ज्यों कुछ हुआ ही न हो । माँ ने उसे बताया कि भगवान ने क्या-क्या कहा है ।

समी ने आँखें खोल ली थीं । परंतु आँखों में धुंध थी । उसने पानी मांगा । मैंने उसे पानी दिया । अब उसे कुछ ठीक लग रहा था । बाप के शरीर में सात आसरा का खंडूबा, बिरुबा, संचरते, बंजारा घूमता । समी को अब कुछ होनेवाला नहीं था । वह ठीक हो जानेवाली थी । देव ने ही उसे पकड़ लिया था ।

बाप 'भूत-प्रेत' भगाता, मांत्रिक था । 'रस्सी' का बल निकल जायेगा पर ककाड़ियों का भूत नहीं भागता,' वह हमेशा यह कहा करता ।

गाँव के लोग उसके देव और भूत से डरते । हम हमेशा लोगों के टट्टी- मैदान और स्मशान घाट के पास रहते । हमारा बाप और उसका देव होने पर हमें भूतों का डर न होता । कैकाड़ियों



के देव और भूत बहुत खतरनाक होते हैं । वह कहता कि घर को ऐसे घेर लेते हैं कि छूटना मुश्किल । गाँव के लोग उससे डर कर रहते ।

समी को अच्छा लगने लगा । हमारी आँख कब लग गई पता ही नहीं चला । सुबह बाप दिखायी नहीं दिया । माँ भी नहीं थी । सिर्फ पारी अकेली ही तंबू में थी । बाकी सारे बच्चे ही थे । चाय नहीं थी...पानी नहीं था...रोटी नहीं थी । एक टुकड़ा तक नहीं था । मैं सारे तंबू की देखरेख करता बैठा था । दिन काफी चढ़ आया था । पारी ने गधे खोल दिये थे; तंबू पर नजर रखकर हम गधे संभाल रहे थे ।

औरतें सिर पर टोकरी लेकर जंगल में निकल गई थी । जानवर खुल गये थे । सब बड़े स्त्री-पुरुष तेजी से गाँव से जंगल जा रहे थे । गाँव के बूढ़े और बच्चे ही बचे थे । तंबूओं के चारों ओर कौवे मंड़रा रहे थे । धूप चुभने लगी थी । पेट में कुछ नहीं था...बाप बांस लाने गया था । चूल्हा बुझा पड़ा था । पानी पी-पीकर भूख मिटा रहे थे । समी, लाली, पुष्पी, किसन्या तंबू के पास खेल रहे थे । उन्हें भूख लगी थी । समी मेरे पास आई और बोली, 'भैय्या भूख लगी है ।'

मैंने उसे गधे के पीछे खड़ा किया । हाथ में कटोरा लिया और घर-घर, 'दे री माई । बचा-खुचा, बासा दे दो चाची', कहते हुए घूमने लगा । कोई भुरी लगी रोटी के टुकड़े, साग देते तो कोई फल्ली आदि दे देता । घंटेभर में मेरा बर्तन भरने लगा । कटोरी साग से भर गई । कुत्तों की टोली साथ-साथ चल रही थी । उन्हें पत्थर मारकर, लाठी घुमाते तंबू पर पहुँचे । बच्चे भूख से व्याकुल हो गये थे । गांव से मांगकर लाया भोजन हम सबने खाया। बचा-खुचा ढाककर रख दिया ।

आधा दिन ढल गया । मां-बाप आये । मैंने समी को गधे के पीछे जाने के लिये कहा। मैं फटा-बस्ता कांधे पर टांगकर ठाठ से स्कूल चल दिया ।

वैसे तो मैं स्कूल जा रहा था, पर मैं, बरामदे में बैठकर ही सुना करता और सारे लड़के कक्षा में बैठते । बाप ने मास्टर से कहा, पर स्कूल में बैठने नहीं दिया । मास्टर ने झल्लाते हुये कहा था, 'अरे भिखारियों के लिए भी कहीं स्कूल होती है? ..अरे, उसके पढ़ने के बाद टोकरियां कौन तैयार करेगा ? यह सब नहीं चलेगा । बड़े आये पढ़ने वाले' । मैंने देखा, बाप की आंखें डबडबा आई थीं । मैं भी रो रहा था । स्कूल में जाऊंगा...मास्टर बनूंगा, ऐसे सपने देख रहा था । इधर स्कूल के बाहर ही बैठकर पढ़ाई कर रहा था ।

उसी गाँव से बाप ने मेरे लिये बनिये की दुकान से स्लेट, पेंसिल, खरीदी थी । मैं दूसरे लड़कों को देखता । वैसा रहने की कोशिश करता । स्कूल में मन लगने लगा था । लकीरें खींच रहा था, मिटा रहा था । बोर्ड देखकर उतार रहा था - क्या लिखा होता, वहाँ !

मैं व्याकुल था । मास्टर स्कूल में प्रवेश न देता । बाप स्कूल भेजता । मास्टर को गालियां देता । इधर हमारा पड़ाव बदलता रहता । मेरी स्कूल इसी तरह चल रही थी । चार-पांच दिन इसी तरह बीत गए । मैं स्कूल के बरामदे में नियमित जाकर बैठा करता ।

एक दिन बाप बोला, 'अब मेरा डेरा हिलाना पड़ेगा ।'

फिर खंडोबा के मालवड़ी में...देव के मेले में जाने के लिये गधे तैयार हो गये । पालवण

की पहाड़ी उतरे, पहाड़ियां उतरकर मलवड़ी के नाले का पानी पिया। हमें गधों से नीचे उतारा गया। नाले के किनारे सपाट मैदान में पेड़ की छाया में डेरा जमाया गया। बाप, ने अंजुरी से ही पानी डालना शुरू किया। जिस तरह गौरया नहाती है। वैसा ही वह नहा रहा था। मैं नंगा हुआ और नाभि तक पानी में तैरने लगा। इंदया, खग्या, म्हाद्या सब पानी में कूदने लगे। पानी काफी गंदा हो गया था। बाप ने धोती बदली। मां ने नौ गज की साड़ी पहनी। मांगकर लाई चोली पहनी। पाटलिन का दिया पोलका समी को पहनाया। तंबू के पास खग्या को बैठाया। और हम सब गाँव में गये।

मलवड़ी अच्छा-खासा गाँव था। वहाँ पूस में खंड़ोबा का काफी बड़ा मेला लगता है। काफी लोग इकट्ठा हो गये थे। सबका शरीर हल्दी की बुकनी से सना होता। मेरा हाथ बाप के हाथ में था। और हम भीड़ में से रास्ता निकालते हुये मंदिर के पास पहुंचे। मंदिर में बड़े- बड़े आईने लगे थे। मंडप, भी काफी बड़ा था। भीतर भीड़ थी। दम घुटने लगा। पसीने से लथ-पथ हो रहा था और पैरों पर पैर पड़ने के कारण कराह उठता। एक बार ही मंडप के पास गया। बाप ने नारियल प्रसाद, एक व्यक्ति के हाथ में रखा। उसी में से प्रसाद उसने वापस किया। बाप ने उसे माथे से लगाया और लौट आया। खंडोबा का जयजयकार चल रहा था, 'एलकोट, एलकोट, मल्हार।' भक्त हाथ जोड़कर दण्डवत् हो मोटे रस्से से झूल जाते। बाप वैसे भला आदमी...वह भी मुझे छोड़कर रस्से से लिपट जाता। लोगों की रेलपेल में जान निकलने को आई। मां, पारी, जयसिंह कहीं दिखाई न देते।

हम दर्शन लेकर लौट आये। सारे शरीर पर भभूति ही भभूति लगी पड़ी थी। डेरा गांव के बाहर रेत पर जमाया था। वहाँ हम पहुंचे। बाप ने हमें गांव से बाहर लकड़िया चुनने भेजा। मैं काफी थका था फिर भी गया। जो भी हाथ में लगता बीनकर ले आता।

माँ, पारी, जयसिंह सारे लोग रेत पर तंबू के पास बैठे थे। काम किसी को नहीं था। जैसे ही चूल्हा सुलगाने के लिये लकड़ियां आई मां और पारी उठे। तीन ईंटोंवाला चूल्हा जलाया। हवा ने दुश्मनी ठान ली थी। लपटें फट रही थीं। तवा गर्म ही न होता। इसलिये मां परेशान हो उठी थी। धुएं से आंखें बह रही थीं। हाथों से नाक पोंछती और आटा गूंथ रही थी। आटा ठीक होने पर हाथों से रोटियाँ बनाने लगी। आटे का गोला हाथ से गोल करती उसे पतला बनाती और तवे पर डालती।...एक रोटी एक ओर से सिंक जाती तब उसी पर दूसरी डालती। सिर्फ उसे पलट देती। तवे पर ही ढेर लगाती। अपनी इच्छानुसार वह टोकरी में डालती। हमें भूख लगी थी। मुँह में पानी आ गया था। मैंने माँ से आंख चुराकर रोटी का टुकड़ा तोड़ा और मुंह में डाल दिया। मां ने देख लिया था। एक सनसनाती झापड़ मेरे मुँह पर बरस पड़ी, 'मुझे अभी भगवान को नैवेद्य दिखाना है और तूने जूठा कर डाला?' वह मुझे गालियाँ देने लगी और मैं भगवान को...।

उस समय, बाप जयसिंह तीन-पत्ती ताश खेलने में व्यस्त थे। माँ ने मुझे मारा इसलिए मैं वहां से चलता बना। मैं जब इधर आया तब जयसिंह एक आदमी के साथ तू-तू, मैं-मैं कर रहा था। मैं बाप को बता रहा था। माँ ने पाव सेर चावल लाने को कहा है। बाप 'तीन- पत्तों' में उलझा था। मैं बोल-बोलकर थक गया पर बाप एक न सुनता। उसे पैसों



की पड़ी थी और मैं चावल की रट लगा रहा था। बस, इसी बीच एक जोरदार तमाचा पड़ा, 'चुप बैठ कुत्ता कहीं का।' मैं चुप हो गया। बाप को काफी पैसे मिले थे। बाप ने धोती के छोर में चावल बांधा और 'मल्हार बन पंढरीनाथ' गुनगुनाता तंबू की ओर आया। माँ ने चावल का बर्तन चूल्हे पर रख दिया। दिन डूबने को था। समी मिट्टी का तेल ले आई। बाप ने पैसे दिये थे, वह बीड़ी, माचिस की डिबिया ले आई थी।

बाप पानी में उतरा और हाथ पैर धोये। नैवेद्य की थाली ली। लोटे में पानी लिया। अगरबत्ती, प्रसाद, मिसरी, पान, पूरी सुपारी, एक बड़ा पैसा नैवेद्य पर रखा और धोती के छोर से उसे ढाँककर जल्दी- जल्दी मंदिर की ओर गया। मैं रोते-रोते उसके पीछे जाने की जिद कर रहा था। 'तेरे माँ की...' कहते हुए उसने सोंटा उठाया, तब मेरी आवाज गले में ही अटक गई। मैं चुपचाप अपने तंबू में लौट आया।

आते समय बाप ने खाली थाली और मुर्गा लाया। मुर्गा पंख फड़फड़ाता। उसके पैर बाप ने पकड़ रखे थे। वह दातों में धोती का छोर और दूसरे हाथ में भरा लोटा लेकर आया था। मुर्गे के पैर में एक चिंदी बांध दी थी। माँ ने नैवेद्य सजाया।

अंधेरा उतर रहा था। बाप ने भगवान की टोकरी खोली। टोकरी के सामने पानी छिड़का। नैवेद्य थाली के सामने रखा। अगरबत्ती जलायी, गुलाल लगाया। मुंह से कुछ बड़बड़ाता हुआ मुर्गे के दोनों पंख अपने पैरों में दबा लिए। एक हाथ से उसका सिर पकड़ा और बांस काटने की हंसिया से मुर्गे का सिर उड़ा दिया। मुर्गा फड़फड़ाने लगा उसने दोनों पैर पकड़कर फेंक दिया। मुर्गा उछलने लगा, छटपटाने लगा। मैं उसके पीछे-पीछे दौड़ता। उसकी जान नहीं निकल रही थी। मैं पकड़ता और वह उछलता। अंततः उसका संघर्ष समाप्त हुआ।

बाप ने मुर्गे को खुरचा। फिर उसे चूल्हे पर रखा और मुर्गे के पंख जलने लगे। चारों ओर मुर्गे के पंखों की गंध फैल रही थी। मुर्गे को सभी ओर से ठीक से भूना। चूल्हे से नीचे उतारा और छीलना शुरू किया। तब तक मां ने हल्दी, नमक, गीले नारियल का टुकड़ा कूट लिया था। मिर्ची भी पीस ली थी। सब मुर्गे को लगाया और चूल्हे पर चढ़ा दिया। बाप चूल्हे से अलग न होता।

काफी रात हो गयी थी। मुर्गा पक गया था। नैवेद्य दिखाए बिना कुछ खाना नहीं था। आंखों में नींद उतर आई थी। लाली, पुष्पी, किसन्या सोने लगे थे। बाप नाराज हो रहा था। मां ने नैवेद्य सजाया उसमें मांस रखा। बाप ने नैवेद्य भगवान की टोकरी के सामने रखा। लोटे का पानी कटोरी में डाला। सुगंध नाक में मंडराने लगी। तमाकू-सी पुड़िया भगवान के सामने रखी। उसके साथ दो अंडे रखे। नीबू चीरा और बाप के शरीर में कुछ संचरित होने लगा। उसके साथ देव काफी देर तक संचरित रहा। फिर शांत हुआ। बाप की पूजा हो गई थी। सारे बच्चे कतार में बैठे थे। खग्या, इंदया, म्हाद्या, मैं, मां, पारी किसी को भी प्रसाद नहीं छोड़ना था। नारियल का टुकड़ा और घूंट-घूंट दारू सबने लेनी थी। ना नहीं करना होता इसलिए सबको दी। मैंने कटोरी मुंह से लगायी तो गला जलता और जलता-जलता ही पानी नीचे उतरा था। मैंने कटोरी नीचे रख दी थी। मैं नहीं पी पा रहा था। मैं पीने से मना करने लगा तब सारे चिल्लाए, 'ना नहीं कहते। आंखें बंद कर और एक घूंट

में सारा गटक जा । कुछ नहीं होता ।'

मैंने अजीब-सा मुंह बनाया और दारू पी गया । तालू और गले की जलन तभी खत्म हुई जब कटोरी खाली हुई । बाप ने खाने के लिए चने दिए । मैं चने खाने लगा । फिर कुछ ठीक लगा । मां ने सबको परोसा । मेरे कटोरे में मटन था, सिर्फ इतना ही याद है । परंतु हाथ थाली से मुंह तक न पहुंचता । सब कुछ घूम रहा था । मुंह में पानी आ रहा था । किसी तरह खाया और सो गया । रात में नींद खुली तो देखा कि मां, बाप वही पानी पी रहे हैं। बाप मां से लिपट रहा था । मैं आंखें खोलता । रेत बिलकुल ठंडी लगती और मैं आधी नींद में सो-जाग रहा था ।

दूसरा दिन आया । आज भगवान के रथ का दिन था । सारे मांग, महार, गड़ेरिये, कैकाड़ी, मदारी, ज्योतिषी, जोगी, देवदासी, नचनियों से मेला खचाखच भरा था । एक लोकनाटक भी लगा था ।

बंजारों के तंबू, सामान सब अस्त-व्यस्त थे । तंबुओं के सामने बच्चे खेल रहे थे । लोगों की भीड़ बढ़ रही थी ।

गांव में नाचने वाली लडकियां नाज-नखरा कर ताल-सुर में नाच रही थीं । तमाशा अर्थात लोकनाटक का मंच अब शुरू होने जा रहा था । सारे लोग नीम के पास वाले बरगद के पेड़ की ओर जा रहे थे । गुब्बारेवाले, भेलवाले घूम रहे थे । मन में इच्छा होती कि गुब्बारे लें...भेल खायें, पर बाप से पैसे मांगने की हिम्मत न थी । मांगा तो या तो मार पड़ती या तेरी माँ...जैसी गालियां मिलतीं । इसलिए मैं पैसे न मांगता । परंतु उसकी धोती का छोर थाम कर पीछे-पीछे चलता रहता था ।

बाप और जयसिंह, शिरपा वडार के साथ बातें कर रहे थे । शिरपा वडार मलवड़ी का ही रहने वाला था । गांव में चार-पांच सूअर छोड़े गए थे...

अब उसकी संख्या पचीस तक पहुंच गई थी । गधे दो थे, अब उसकी संख्या आठ-दस हो गई थी । आसपास के गांव में शिरपा मिट्टी का काम लेता । काफी पैसा कमाता था । बाप ने कहा था, शिरपा हम जात-बिरादरी के लोग हैं, साल में एक बार आते हैं । खंडोबा ने तुम्हारा सब ठीक कर दिया है । हम पेट के लिए गांव-गांव, पैसे- पैसे के लिए भटक रहे हैं । अरे साले दारू-वारू पिलाएगा कि नहीं । कोई जानवर काटोगे या नहीं ?

शिरपा बोला, 'बापू, ऐसे क्या पत्थर मार रहा है ? अरे आज रथ निकलेगा, कल देखेंगे। नानी को बता दिया है । हर साल दारू पिये बिना बापू, बज्या, जयसिंह नहीं जाएंगे । एक 'सूअर' मारूंगा । ऐसे साल में कभी आप आते हैं, रोज थोड़े ही आते हैं ?' तब बाप खुश हो गया । तमाकू खायी । सिर्फ इतना ही समझा कि हमारा मुकाम और बढ़ गया ।

वहां से बाप नचनियों के तंबू की ओर बढा । कोट पहना एक बूढ़ा गुनगुना रहा था । मदारी जाति का था वह । छोटी लड़की को सिर पर खड़ा कर कुछ बता रहा था । बाप ने चिलम निकाली उसमें तमाकू भरी । बूढ़े ने तीली जलाई और दोनों धुंआ उगलने लगे ।

बाप ने हालचाल पूछे । सब ठीक है, बोला, 'बापू शारदी मर गई रे ।' उसकी आंखों से धाराएं फूट पड़ीं । वह कुछ नहीं बोल पा रहा था । बाप ने ही पूछा,



'अरे, शंकरदादा ! क्या हुआ, यह तो बताओगे । रोने ही लग गया, क्या हुआ था शारदी को ?'

बूढ़े ने आंखें पोंछीं और बोला, 'बापू, बच्ची कैसी चवली की फल्ली-सी झुक रही थी । होंठ निचोड़े होते तो उसमें से दूध निकला होता रे ! बुढ़ापे में यह मेरे हिस्से आया, नहीं तो आज यह मेला जीत लिया होता ।'

बाप चुपचाप धुंआ उगलता सुन रहा था ।

बूढा बता रहा था, 'उस कोने में तंबू था । दिन भर गांव में मांगता फिरा । बहुत नाची, रस्सी पर उछली भी खूब, बालों से पत्थर उठाया । रात में घर आया । शारदी ने रोटियां सेंकीं । छोटी को सुलाया । मैंने चिलम पी और तानकर कब सो गया, पता ही नहीं चला। रात में जगा तो देखा शारदी नहीं है । बाप रात भर भटका....सारे गांव में सिर पीटता फिरा, पर शारदी नहीं मिली । सुबह हुई तो देखा शारदी बरगद के नीचे बालू पर पड़ी है । सिर्फ धीमी धड़कनें बची थीं उसकी....।

बूढा बता रहा था । बाप खिन्न होकर सुन रहा था । आंखें पोंछ रहा था । मेला अपने चढाव पर था । लोग रथ खींच रहे थे । प्रसाद- नारियल चढा रहे थे । 'जयजयकार' का जयघोष चल रहा था । और बूढा बता रहा था,

'बापू, सारा शरीर खून से सना था । उसने आंखें खोलीं पर बोली नहीं, कुछ बताया नहीं। क्या हुआ होगा बापू ? दो दिन वह जी सकी । बापू, पानी की बूंद तक उसके गले से नहीं उतरी, उसने क्या-क्या सहा होगा....!'

बूढ़ा फिर रोने लगा, 'अपना डेरा हिलाने का सोच रहा था, पर इसका कोई भरोसा न था । वह चली गई । बापू, अब ऐसे दिनों में मैं क्या खाऊं ? इस छोटी को कैसे पालूं ?'

बाप ने चिलम बुझायी । राख झाड़ी और उठता हुआ बोला,

'बापू, तुम मेरे साथ चलो । अरे जिसने मुंह दिया है, वह चारा भी देगा ।'

बूढ़ा घिसटता-घिसटता काफी बढ़ आया । धूप आ जाने के कारण बाप मुझे झोंपड़ी की ओर भेज रहा था । उधर लोकनाटक अपनी खुमारी पर था । मेला छूट गया था । काफी भीड़ थी । नर्तकी नाच रही थी । जय मल्हार । ढोलकी की धुन पर गालियां दी जाती रही थीं । सवाल-जवाब चल रहे थे । नोट न्यौछावर किए जा रहे थे । जवान लड़कों की मूंछें ऐंठ रही थीं । लोकनाटक के साथ वे भी रंगीन हो गए थे ।

भगवान का रथ आते ही मेला छूटा । लोग जाने लगे । हम अपनी झोंपड़ी में आए । जयसिंह बाप से कह रहा था, 'बापूदादा मेरी सिंगी (गधे की मादा) बेच दी । तीन दस और दो रुपये में दत्या बेलदार को । अभी कल वह आधे पैसे देगा और कालूबा को आधा ।'

पिता ने हामी भरी । दिन भर भटकता रहा । मेला यानी घूमने- फिरने वालों से मेल-मुलाकात का दिन । आदमी का क्या भरोसा आज है, कल नहीं ।

मेला जैसा लगा था, वैसा ही खत्म हुआ । शिरपा वडार के घर कल- आज दावत थी। सारे लोग दो दिन रहेंगे । शिरपा ने एक जानवर पकड़ा । सारे गांव में कुत्ते, शिरपा, बा, जयसिंग, तात्या कोलाटी रस्सी लेकर दौड़ रहे थे । जानवर पकड़ लिया । चारों पैर बाँध

दिए । मुंह बांध दिया और गांव से बाहर निकल गए । कचरा जलाया । जानवर की छाती लातों से मारी और उसके प्राण लिए । सूअर को काटते नहीं । फिर आग पर रखा । उसमें से तेल टपकने लगा । जानवर का गोश्त बहुत मस्त हो गया था । शिरपा साल में एक बार ही इस तरह मारा करता ।

पुरईन के पत्ते बिछाए । बाप ने पत्थर से उसकी चमड़ी खुरची । भीतर कुरमुरी भुनी चमड़ी निकली । उसे चीरा, टुकड़े किए । और सबने बांट कर खाया । मैं खग्या, इंदया, म्हाद्या और कई लड़के थे । सबको पटिये पर ही चमड़ी मिली खाने के लिए । कोई महिला नहीं थी ।

दावत का मटन अर्थात् सबके प्राण या जान । बस, मटन तोड़ कर टुकड़े किए । घमेले में भरा । दो घमेले भरे । उस पर घासफूस डाली और सारे गांव के बीच से आए । सारे लोग मरी भैंस की तरह देख रहे थे, थूंक रहे थे । हमारा 'जुलूस' आगे बढ़ रहा था । मां को, समी को, पुष्पी को, लाली और किसन्या को यह मटन नहीं मिला । मुझे बुरा लग रहा था, पर क्या करें ? मटन अब घर लाना संभव नहीं था । खाकर जो बचा था, उसे शिरपा ने मिट्टी में गाड़ दिया था, लाने नहीं दिया ।

शाम को पिता, मां सब लोग शिरपा के घर खाना खाने गए थे । पिता, जयसिंह और बड़े लोग बोतल की 'ठर्रा' पी रहे थे । मटन खाने के बाद सभी बड़े लोग बड़बड़ाने लगे थे। किसी को किसी की बात समझ न पड़ती ।

शिरपा कह रहा था, 'हम कालूबाई आएं, तो रंडी के ऐसा ही होना चाहिए अगले साल।' स्वादिष्ट मटन के गंज खाली हो रहे थे । रोटी तोड़कर सड़क पर फेंक रहे थे । कुत्ते अचानक एक-दूसरे पर गुर्राने लगते । मैं मां के सामने खा रहा था । छोटे बच्चों को अलग नहीं दिया गया था । बड़े लोग क्या कर रहे थे, कुछ समझ न पड़ता ।

दूसरा दिन कलसकर की बाड़ के पास उगा । रात में खाते-खाते ऊंघ रहा था । आगे क्या हुआ, पता नहीं । जब जगा तो मैं राधी के पीट पर बंधा था । ठीक से जागा । सभी गधे एक कतार में चल रहे थे । चारों ओर पहाड़, चट्टानें और बड़े-बड़े पत्थर । बीच में एकाध बबूल का या तो बेर का पेड़ दिखाई पड़ता । पिता कह रहा था, 'कलसकर की बाड़ का पहाड़ चढना है । ठीक से बैठो ।' हम सतर्क हो बैठ गए । ...हा...च्या...च करते हुए मां, बाप, पारी, जयसिंह चल रहे थे । सिर पर बोझा था । एकाध पसेरी अनाज था । सारा घर-संसार गधे पर लादा था । और गधे हांकते हुए पहाड़ चढ़ रहे थे । पांव पर सपासप बेंत के निशान उभर रहे थे । गधे चल रहे थे । पहाड़ खत्म हुआ और एक टीला आया । मां ने चने का पेड़ उखाड़ कर हंडे में डाल दिया था । मैं बिना मुंह धोये ही शुरू हो गया । समी बड़बड़ाने लगी । बाप ने उसे गधा हांकते चने की दो डाली दी । वह चुप हो गई । सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था । अभी और दो पहाड़ उतरना बाकी था ।

बाप कह रहा था, 'यह वाड़ी का पहाड़ उतरकर किले पर जाएंगे । वहां बच्चे एकाध कौर रोटी खा लेंगे ।'

हम वाड़ी का पहाड़ उतरे । जान हथेली पर थी । पगडंडियों से गधे उतर रहे थे । नीचे



गहरी खाई थी । पहाड़ पर नंगे बूढ़े पेड़ खड़े थे । और घास-फूस थी । पहाड़ पर एक परिंदा भी नहीं था । दूर-दूर तक कुछ नहीं था, सिर्फ कभी-कभार करौंदे के पेड़ दिख जाते । बाकी सब हरा घास पर, भरा-भरा-सा । गधे का पैर फिसला या उसका संतुलन बिगड़ा तो...जान निकली...मैं पैदल चलने के लिए रोता ।

बाप कहता, 'चुपचाप बैठ जा, तू चल नहीं सकेगा ।'

मेरे यूं कहने पर कि मुझे डर लगता है, वह बोला, 'क्या कुतिया का दूध पिया है । चिपककर बैठ ।' वैसे भीतर से वह भी डरा हुआ था ।

किले में आए । गधों पर रखा सामान नीचे उतारा । आम के एक बड़े से पेड़ के नीचे हम सब बैठ गए । रोटी हाथ में ही रखी । चटनी ली । सूखा निवाला गले में अटकता, पर किसी तरह नीचे ढकेलते ।

खाना खाते हुए जयसिंह बाप से बोला, 'बापूदादा, किले में हमारा कौन आया था रे?'

रोटी का टुकड़ा निगलता हुआ बाप बता रहा था, हमारे पूर्वजों में से कोई यहां आया था । उस समय किले पर मुसलमानों का राज था । मुसलमान सबको अपने धर्म में मिलाना चाहते थे । तब वारुडगढ पर हमारे लोग रूप बदलकर आते । बाकी लोगों के लिए फलटन दरवाजा बंद था । कड़ा पहरा होता, सिपाही होते । तब फलटन के राजा ने इन्हें खबर लाने के लिए किले पर रूप बदल कर भेजा था ।

हमारे लोग रूप बदलकर आए और हंसिये से यहीं के मुसलमान राजा के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । उसी वेश में गिरवी किला उतरकर नीचे गए । नीचे आने के बाद चीख-पुकार शुरू हुई । पर सिपाही नहीं दौड़े । वे बहुत पराक्रमी और वीर थे । गिरवी को फलटन के राजा ने ईनाम दिया था । पर गांव ने इसे नहीं पचने दिया । गांव के लोग बोले, 'अरे स्साले, ये कैकाड़ी, उस मुसलमान को हंसिया से काट सकते हैं । ऐसी आफत हमारे गाँव में नहीं चाहिये । इन्हें भगाओ यहां से । तब निरगुड़ी के पाटिल ने अपनी हवेली की पहरेदारी के लिए हमें रहने के लिए जगह दी । तबसे हम निरगुड़ी के वतनदार हो गए । नहीं तो कहां मिलता हमें घर-आंगन ।

बाप का भोजन हो चुका था । गधों पर सामान लाद दिया था, लगाम चढ़ाई । हमें बिठाया और गधे, वारुगढ़ की दुर्गम घाटियां सामने के पैरों पर बोझ का संतुलन बनाते हुए चींटी की गति से पहाड़ उतरने लगे । आधे पहाड़ तक पहुंचे होंगे । वहां एक झरना था । पानी पीने झरने पर रुके । बाप बता रहा था, 'ऊपर किले में राजा की टंकी में नीबू डालने पर वह इस झरने में उतर आता है । बहुत बड़ी सुरंग थी । लोग पैदल निकलकर यहां से राजा के महल तक पहुंच सकते थे । पर अब सारा पानी ही पानी है । काइयों और कीड़ों से भरा हुआ - हरा पानी ।

झरने से पानी पीने के बाद गधे रास्ता पार करने निकल पड़े । फलटन दरवाजे से सारे ऊंचे-ऊंचे वृक्ष और नीला-घना आकाश । तर्जनी-से लोग लगते कुरवली बांध से और माचिस के बराबर घर दिखाई देते । इसके बीच हरे-भरे खेत दूर-दूर तक दिखाई दे रहे थे । बाप कह रहा था, 'और एक मोड़ आने पर हम उतर जाएंगे ।'

गधे हांफते हुए उतर रहे थे । खग्या जिस गधे पर बैठा था, वह बहुत छोटा था । उसका पैर फिसल गया और वह झट नीचे बैठ गया । खग्या चिल्लाया । पर चोंट नहीं लगी थी । गधे को जयसिंह ने उठाया । उसके पैर छटपटा रहे थे । पसीने से उसका सारा शरीर लथपथ हो गया था ।

'अरे, च...च्...' कहते सारे बड़े लोग गधों के पीछे चल रहे थे । गधे उतर रहे थे ।

अंततः पठार आ गया । गधे के बच्चे भागने लगे । पत्थरों का जहां ढेर लगा था वहां बाप गया और उसने सबसे कहा कि पांच-पांच पत्थर उस ढेर पर डालो । 'पत्थर क्यों जमा करें ?' बाप हंसा और बोला, 'यूं ही, सब उस ढेर पर पत्थर डालते आए हैं, इसलिए ।' घाटी पार की । बाप ने पीछे मुड़कर हाथ जोड़े । खंडोबाराय ने सकुशल नीचे पहुंचा दिया था । सामने देखकर हाथ जोड़े कालूबाई को - उसकी सीमा में आ गए इस कारण । पहाड़ उतरे कि घर पहुंचे ही समझिए । बीच में कदम का गिरवी गांव । गिरवी वैसे बाजार का गांव। गांव में बड़ी हवेलियां हैं । पहले राजा था गांव में । बाप ने तमाकू ली । होठों में दबाई और गधे सड़कों पर तेजी से दौड़ने लगे । फिर पगडंडी लगी । लोग पूछते, 'क्या बापू ? कहां से आ रहे हो ?'...बाप बता रहा था ।

निरगुड़ी हमारा गांव । फलटन से पांच-छह मील । ठीक-ठाक गांव । गांव के निचले हिस्से में नाला है । वैसे यह सिर्फ बरसात में ही बहता है । अन्यथा सूखा । गांव में सातवीं कक्षा तक स्कूल है । महार, मांग, वल्हार, कैकाड़ी, गडेरिया, सोनारों के चार घर । बाकी सारा गांव मराठों का, बड़े मकानात, बड़ी हवेलियां....। गांव बहुत पुराना था । संस्कार भी पुराने ही थे । पाटिल की हवेली की बाईं ओर कैकड़ियों की बस्ती और उसके सामने महारों की बस्ती, पीछे रामूसी की बस्ती, पास ही मांग की बस्ती । गांव के बीचो-बीच चौपाल । चौपाल के सामने स्कूल । स्कूल के सामने नीम का ऊंचा पेड़ । गांव में सिंचाई सुविधा । गन्ने के खेत...केला, ज्वार, मुख्य फसलें । गन्ने की हरी-भरी खेती ही गांव की असली दौलत ! गांव के बारह बलुतेदार गांव की सेवा करते । साल में एक बार फसल कटाई पर अनाज मिलता। महार, मांग, रामूसी, कैकाड़ी - सारे गांव के बलुतेदार । हम कैकाड़ियों के दस- बारह घर थे । बरसात में खुले रहते । वैसे गोबर के ताले थाप कर चल देते थे । हम जब लौटकर आते तब, कैकाड़ी-बस्ती गोबर के तालों से मुक्त होती । बाप के दो सगे भाई - दानू और बजरंग । बाकी सब रिश्तेदारों के घर । चैत्र की अमावस पर कुरवली में कालूमाई का मेला लगता । पेट के लिए साल भर लोग गाँव-गाँव घूमते पर इस चैत्र को गांव आते और दशहरे तक घर रुकते । यही क्रम चलता । जिस दिन हम आए उसके चौथे दिन दानू और बजरंग का परिवार आया । वे दूर नातपुत, मालशिरस, इंदापुर जाकर आये थे । हम मानदेश हो आए थे । सब ओर खुशी का वातावरण था । अपने लोग मिल रहे थे । एक-दूसरे से गले मिलना हो रहा था ।

पिता शाम को अपने भाई से बातें कर रहा था, किसने कितना कमाया...पूछ रहा था। सबने 'कुछ नहीं' कहकर हाथ खड़े कर दिऐ । कुरवली का मेला चार दिन पर आ गया था। तीनों परिवार अलग- अलग हो गये थे । भगवान कह रहा था...'अब तीन मेले होने चाहिये'



'इस साल से अपना मेला आप देखो । भगवान का हुकूम है ।' ज्ञानू, बजरंग्या चकित हो गए । उन दोनों की तैयारी नहीं थी । फिर ज्ञानू की चार-पांच बेटियां थीं । एक सयानी हो गयी थी । बड़ी आफत आ पड़ी ।

'भैय्या, तीनों मिलकर मेला संभालेंगे!' बाजरंग्या बोला । परंतु बाप ने एक न सुनी। बाल-बच्चों के लिए कपड़ा-लत्ता खरीदना था । दो मुर्गियाँ, एक बकरा, भारी खर्च था । बाप अडिग रहा । भगवान का हुकूम । बाप गांव में गया । पैसे तो तीनों के पास नहीं थे । बाप ने फसल के समय की बोरा भर ज्वार किसन पाटिल के पास रखी थी । उसके लिए ग्राहक ढूंढा और 40 रुपये में उठा दिया । बजरंग्या ने, ज्ञानू ने अपना-अपना तंबू झटका । पाँच-पचास रुपये खड़े किये । पूरे साल की कमाई रोकड़ा जमा की । फिर भी हिसाब पूरा न बैठता। बाप दिनकर पाटिल से मिला, बिनती कि...भगवान का काम, धरम का काम इसे तो करना ही होगा । इसके बिना कैसे चलेगा । मां मातुसरी का आशीर्वाद है । इसलिये रूखा-सूखा मिल जाता है । उसकी सेवा तो करनी चाहिये । दिनकर पाटिल ने दो सौ रुपये ब्याज पर दिए । बाप घर आया । भाई से ब्याज से पैसे लेने की बात बतायी । दोनों को अच्छा लगा। देवी मां ने संकट से उबार लिया, इसका निःश्वास छोड़ा ।

इतवार को फलटन का बाजार । बाप, आप्पा (बानू), तात्या (बजीरंग्या) बाजार गए। मैं रोता हुआ साथ चलने की जिद करने लगा । बाजार के लिए इस तरह जिद करने पर माँ ने दो चार तमाचे रसीद दिए ।

गाल फुलाकर इमली के पेड़ के नीचे बैठ गया । धूप से सारा बदन झुलस रहा था । इमली के पेड़ को नई कोपलें फूटी थीं । गाँव के लड़के गोटियां खेल रहे थे । मैं पास खड़ा देख रहा था ।

लड़के पारी को लेकर मार-पिटाई करने लगे । लड़के झगड़े में उलझ गए.. मैंने गोटियां जेब में डालीं । किसी के ध्यान में नहीं आया । लड़के फिर गोटियां खेलने लगे । मैं उनमें घुल-मिल गया । मेरे पास गोटियां थीं । पाटिल का बेटा अगुवा था । उससे मैं मिमिया रहा था, मुझे भी खेल में शामिल करो । पाटिल का बेटा कहता, चल हट ! तेरी माँ की...हूंह! हमारे साथ खेलेगा ! सारे लड़के दाँत बिचकाने लगे । मैं चुप बैठा । नाक से रेंट लटक रही थी । उस लड़के को क्या ताव आया, क्या पता । उसने मेरी ओर देखा और 'रेंटी भेड़ी' कहकर चिढ़ाने लगा । फिर बाकी लड़के भी चिढ़ाने लगे । मैं रुआंसा हो गया । उनसे मैं दूर निकल आया तो वे मेरे पीछे ही पड़ गए । 'साला हरामी' नहीं तो, 'रेंटी भेड़ी' कहकर नाचने लगे । अब मुझे भी खूब गुस्सा आ गया था । मैं भी उलझ गया । हाथ में सोंटा लिया और 'तेरी मां को चोदूं' कहकर उसकी ओर दे मारा। सोंटा उसकी पीठ पर लगा । वह कराहने लगा । बाकी पाटिल मुहल्ले के सारे लड़के मुझ पर टूट पड़े । लातों-मुक्कों से मुझे नीचे गिरा दिया । मुंह में धूल जा रही थी । और ऊपर से मार पड़ रही थी । जब मैं चीखने-चिल्लाने लगा, तब सारे भाग गए । पारी ने झगड़ा छुड़ाया । हमारी भाषा में लड़कों को गालियां देने लगी ।

दिन डूबने पर घर गया । माँ का कहीं ठिकाना न था । वह गांव में गई थी । टोकरी

में रोटी का टुकड़ा न था। अब गांव में मांगने जाने की इच्छा न थी। चुपचाप बैठ गया।

मां आई। माँ आंचल में हरी मिर्च और रोटी लाई थी। रोटी में मिर्च लगाकर मैं खा गया और आंगन में आकर बैठ गया। आंगन में लड़के खेल रहे थे। उनके साथ खेलने की इच्छा हो रही थी। उठकर चल पड़ा तभी सड़क से बाप आता दिखाई दिया। जोर से दौड़ता गया। उसके सिर पर बाजार का सामान था। हाथ में बकरे की रस्सी और दोनों कांख में दो मुर्गे। मैंने बकरा संभाल लिया। दौडते-दौड़ते घर लाया। खूंटे से बांध दिया। और खड़े-खड़े मां को पुकारते हुए बताने लगा। समी, पुष्पी, लाली, किसना सारे बच्चे नाचते-फुदकते पिता की धोती से लटकने लगे। फिर आप्पा और तात्या आए। उन्होंने भी बकरा लाया था।

राह देखते-देखते मेले का दिन आ गया। सारे कैकाड़ी मुहल्ले के लोग मेले के लिए तैयार हो गए। सभी बच्चों के लिए नए कपड़े आ गए थे। मेरे लिए बाप ने ख़ाकी चड्डी और लकीरोंवाली कमीज लाई थी। समी के लिए घाघरा और पोलका, किसन्या के लिए तुर्रेदार टोपी, कुर्ता, पुष्पी के लिए घाघरा और पोलका....मां के लिए साड़ी। पिता ने अपने लिए सिर्फ कमीज खरीदी थी। सारे बच्चे नाच रहे थे। आप्पा, तात्या ने भी कपड़े लाए थे। साल में एक बार मेले के समय सबको कपड़े मिलते।

मेला शुरू होने का पहला दिन आया। सारा बोरिया-बिस्तर बांध लिया। नये कपड़ों की गठरी मां ने संभाली। भगवान की डलिया बाप ने पीठ से बांध ली। हमें गधे पर बिठाया। फिर कारवां आगे बढ़ा। सारा कैकाड़ी मुहल्ला गधों पर बैठ गया। एक-एक कर पांच- पचास गधों का कारवां कुरवली की ओर बढ़ा। कुरवली, इचुर्णी से जाना होता। सारी पथरीली जमीन रौंद डाली। सड़क मिलने पर गधे मंथर गति से दौड़ने लगे। पांच-छह मील बचे होंगे। धूप ढल चुकी थी। दिन डूब रहा था। हमारे गधे कुरवली पहुंच गए।

वैसे कुरवली बहुत छोटा गांव था। गांव के ऊपरी ओर पर वैनगंगा बहती है। नहर आई है तब से नदी में पानी नहीं होता है। चैत्र की धूप ढल चुकी थी, फिर भी गर्मी कम नहीं थी। नदी की इस ओर गांव और उस ओर कालूबाई का मंदिर। मंदिर के सामने नीम के, पीपल के, पिपरनी और बरगद के पेड़। नदी की ओर नीम के बड़े-बड़े पेड़। वैनगंगा बह रही थी। गधे पानी पार कर उस किनारे चले गए। हमारे डेरे की जगह तय थी। मंदिर के सामने अलग नीम के एक पेड़ की छाया में हमारा बोरिया-बिस्तर उतारा। गधे छोड़ दिए। सामान लगाया। तब तक नदी के दोनों किनारे चार-पांच परिवार आ चुके थे। गधों का कारवां आ रहा था। लोग जमा हो रहे थे। कैकाड़ियों के डेरे देवी के सामने वाले हिस्से में मेले में, कैकाड़ियों को यह सम्मान मिलता। लोगों के डेरे देवी को लगकर। उनके सामने धांगड, बाजीगर, बजनियां, मदारी, गोसाई, मांग, ओझा, ग्रामीण वैद्य और उनके सामने अठारह किस्म की जातियाँ जमा हो रही थीं। मेले के पहले दिन मिठाई का नैवेद्य था। दूसरे दिन बकरे का नैवेद्य। बकरा बलि चढ़ाया जाता। उसकी सूचना गोली और भक्तों द्वार घूम-घूमकर दी जाती। गोली अर्थात मराठा देवी के भक्त। उन्होंने समय की सूचना दी। बालकू कैकाड़ियों का मान पहला होता। उनके परदादों ने देवी की स्थापना की तबसे उन्हें पूजा



करने का सम्मान पहला होता।

दूसरा दिन उगा। सबने वैनगंगा में स्नान किया। हम बच्चे तो पानी में ही खेलते रहते। बाप के पुकारने पर बालू से भागकर तंबू के पास आए। बाप ने दो मुर्गे थमाए। मुर्गा छटपटा रहा था। दबाकर पकड़ा। हाथ में नैवेद्य का बर्तन उसमें गेहूं की रोटी, उस पर भात का ढेला, गुड़ का ढेला, अगरबत्ती, कपूर, गुलाल अबीर, सिंदूर हल्दी। पिता ने मुर्गा पकड़ा और उसे खींचते-खींचते देवी तक ले गया।

लंबी कतार खड़ी थी। सब अपनी-अपनी इच्छा से कतार में खड़े थे। देवी को बकरियों की बलि चढाने की अभी शुरुवात नहीं हुई थी। विवाद चल रहा था कि पहला बकरा किसका चढ़े। बालकू कैकाड़ी जीवित नहीं था। वह पिछले ही साल मर गया था। उसके बेटों में संघर्ष चल रहा था। आपसी झगड़ा था। प्रतिष्ठा के लिए चारों अकड़ रहे थे। बलि नहीं चढ पा रही थी। पीछे कतार में शोरगुल चल रहा था। जानवर थककर निढ़ाल हो रहे थे। सामने क्या चल रहा है, पता न चलता।

बाप कह रहा था, 'बेटों शकुन लगा लो, कहो....ईश्वर जो कहेगा, उसका मान पहला।' सबने समर्थन किया। बस, देवी को शकुन लगाया गया। समय बीत रहा था। पुजारी तंग आ चुका था। अब तक पांच-पचास बकरे गिरने चाहिए थे। बड़बड़ा रहा था वह। ईश्वर ने शकुन दिया - बालकू कैकाड़ी के छोटे बेटे के नाम से। बाकी चारों पीछे हट गए। बकरी भागने लगी। कसाई आ गया था।

सब कतार में बकरी लाने लगे। बकरी काटने के सवा रुपये, मुर्गे के आठ आने दर था। पहला सम्मान जिसे मिलता उसके बकरे को धोती, साड़ी, चोली मिली। कसाई बकरे काट रहा था। जिसका बकरा होता उसे बकरे के पांव पकड़ने पड़ते। वह सिर्फ सिर उड़ाता। खून का फव्वारा फूट पड़ता। मुर्गे की गरदन कटते ही उसे उछाल देता। धीरे-धीरे खून ही खून ही फैल जाता...नाला-सा बह निकलता-खून का। खून का कीचड़ रौंदता बाप सामने आया...बकरे के चारों पैर पकड़े। गरदन पर छुरी घूम गयी। खून का फव्वारा उठा, बाप ने नैवेद्य दिया। पैसे दिए। पैर छुए। भक्ति-भाव से प्रसाद उठाया। फिर बकरे को खींचता हुआ तंबू की ओर निकल पड़ा। हजार- दो-हजार जानवरों की बलि चढी होगी। चारों ओर चूल्हे जल रहे थे। शाम के छह बजे तक बकरे कट रहे थे। बाप ने बकरा लाया। ऊपर नीम का पेड़ था। उस पर रस्सी डाली और बकरे को उल्टा टांग दिया। सर्र से चमड़ी छील डाली। सिर, चमड़ी, एक टांग, चार टुकड़े चमड़ी में बांधकर नीम की डाली पर बांध दिया। शाम के लिए मटन निकाला। तब तक मां ने मुर्गा छील लाया था। कुत्तों की मौज थी। सारी नदी घुएं से भर गई थी। यहां-वहां चूल्हे सुलग चुके थे। मटन पक रहा था।

अंधेरा उतरते ही मंदिर में ढोल बज उठे। आरती का समय हो गया था। सभी स्त्री-पुरुष, बच्चे मंदिर के मंडप में जमा होने लगे थे। ढोल बज रहा था...ढिगाडांग...टिपाडांग ढिगाडांग, टिपाडांग। कैकाड़ी बाजे लेकर दौड़े आए। बैंड बजने लगा। देवी का परिसर लोगों से भर गया। चारों ओर लोग खड़े थे। यह सारी भीड़ थी। मैं खंभे से टिक कर खड़ा था। तात्या, आप्पा, पिता बैंड बजा रहे थे। जयसिंह, खग्या, दत्तू, सद्या, चंद्रया, राजी, मारुति

सब बैंड बजा रहे थे । ढोलक का ढिगाडांग, टिपाडांग गतिशील हो उठा था । एक ठेका था। झांझ बज रही थी । कैकाड़ी, मदारी सारे कलाकार लोग । रात का मुकाबला शुरू हुआ । एक थका तो दूसरा सामने हाजिर हो जाता । बैंड चालू रहता ।

पुजारी नंग-धडंग था । चमड़े के कोड़े से अपनी पीठ पर मारता 'मां कालीबाई की जयजयकार' कहकर घूमता रहता । एक नाद गूंज रहा था । लोग ठेके पर नाच रहे थे । देवी शरीर में संचार कर रही थी । जिनके शरीर में संचार होता वे ताल ठोंककर नाचते-कूदते सामने मैदान में आ रहे थे । देखते-देखते देवी का संचार होने वालों की संख्या बढ़ने लगी । मंडप कम पड़ने लगा । सब लोग-कोई कालूबाई, कोई सांताआसराया, कोई मरीमाई, कोई लक्ष्मीबाई, कोई खंडोबा, विरुवा, म्हसूबा, म्हालसाई, लमान आदि सब अठारह जाति के देव-भूत नाच रहे थे । पुजारी हाथ में जलता कपूर लेकर मुंह में डाल रहा था । कोई नीम की पत्तियां खा रहा था । कोई अगरबत्ती चबा रहा था । सब लोग अपना नामघोष करते । बजाओ रे बजाओ कहते ही आठ दस लोगों का ढोल डिपडांग टिपडांग दाँव- ढाँव डिपडांग जोरों से शुरू करते थे । देव नाच रहे थे ।

बीच में ही बजना बंद हो जाता । किसी की पहेली होती । वह पूछा करता,

'मां, बच्चे जीते नहीं । चार दिनों में ऊपरवाले का झाडू लगा । चारों बच्चे मर गए ।'

'मां, बीमार हूं बरकत नहीं है...'

देव सुन लेता । झूमता रहता । मन में जो आता उस भाषा में वह बड़बड़ाता । पुजारी देव से फिर बिनती करता...'बताऊँ सो करो । सामने के मेले में झूला डाल...हुँ...हुँ...हुँ...हुं ...दो बकरे, चार मुर्गियां और मेरा देना दे । मुक्त हो जाएगा ।'

वह सिर हिलाता । कबूल करता । पैर छूता । कोई कहता बच्चा नहीं होता, जानवर जीते नहीं...या तो किसी ने टोना कर दिया है...बीबी घर में टिकती नहीं । गधा जीता नहीं, इसी तरह के प्रश्न होते । देव शरीर में संचारता । देव के रुष्ट होने की कमी न थी । औरतों को अपने आंचल, साड़ी का भान न रहता । देव खेलता, पर जिसके शरीर में संचारता उसकी दुर्दशा होती । रात भर यह सब चलता ।

'बकरा दो, पेड़ा दे...मांढर देवी के मंदिर में जा...वहां का पानी ला...अमावस-पूनम में जाते रहो...सेवा करो...अपनी मर्यादा संभालो...।

सारे लोग पुजारी के भीतर संचारित देव के पैर छू रहे थे और औरतें- बच्चे यह सारा उत्सव देख रहे थे । आरती के बाद अपने तंबू में लौट आये । तब तक खाना नहीं था । सारे मेहमान, सगे-संबंधी, मान- मनौती खाने पर बुलाते । हम खाना खाने जाते । चार-चार निवाले खाते किसी को मना नहीं करना था । उस दिन पिता कितनी जगह खाया होगा, किसे पता, बहुत खाया । मां भी मुझे तंबू में बिठाकर, मामा-मौसी, मां-पिता ये सब मेहमानों के साथ खाना खा आई । सब बड़बड़ा रहे थे । कैकाड़ी भीड़भाड़ हो गई थी । मुझे नींद आई। डटकर मटन खाया था । सो गया ।

आज देव-पालकी निकलने वाली थी । भोर में ही मां ने जगा दिया । भागते-दौड़ते नदी पर पहुंचा । वैसे पानी बहुत ठंडा था । कपड़े उतारे और नदी में कूद पड़ा । पानी बहुत गंदला



गया था । स्त्री- पुरुष सब स्नान कर रहे थे । नदी से ही दंडवत् कर रहे थे । सामने डफली बजती । भीगे कपड़ों से स्त्रियां दंडवत् कर रही थीं । हाथ में एक पतली लकड़ी होती। नदी से ही लेटकर, हाथ जोड़ते हुये सरकते । हाथ की लकड़ी से निशान करते...उठ खड़े होते। निशान तक चलते । फिर लेट जाते । सामने डफली बजती होती । गुठली की सीटी बजाते। पीछे रिश्ते की चार-पाँच स्त्रियां होतीं । इसी तरह लोटकर दंडवत् प्रणाम करते हुए सब भगवान के चारों ओर घूमते । मुख्य देवी के मंदिर तक पहुंचने पर मनौती समाप्त होती । पुरुषों का लोटना अलग होता । उन्हें भीगी धोती में सोना पड़ता । आठ-दस हट्टे-कट्टे लोग होते । सामने बाजा बजता । सोने वाले मुंह में पान का बीड़ा रखते । चित-पट लोटने की शुरुवात करते। नदी से मंदिर तक ये लोटते लुढ़कते हुए जाते...बाकी उन्हें दुर्गम स्थान से उठाकर समतल स्थान पर ला रखते । वे फिर लोट-पोटकर देवी को पाँच फेरी लगाते और मनौती पूरी करते।

स्नान कर मैं लौटा । दिन उगते ही आरती हुई । पालकी निकली । सामने चार लोग पालकी को काँधा देते । चार लोग पीछे काँधा देते । पालकी के लिए पुजारियों का मान होता। पालकी पुजारियों के बिना न हिलती । और पुजारी मेले में आए प्रत्येक व्यक्ति से बकरे का सिर, पाया, चमड़ा, टुकड़े और सूखा-सिधा अर्थात गेहूँ या ज्वार जमा करते । चार- पाँच दोरे बकरे के सिर, टुकड़े, अनाज, पाया और चमड़े का बड़ा ढेर बनता । उसके बाद पालकी हिल पाती। प्रत्येक के तंबू तक जाती । वह अपनी टोकरी से देवता को पालकी का गुलाल लगाता । पालकी में पेढ़ा रखते । सब पालकी की आरती उतारते । उसके बाद दूसरे तंबू की ओर बढ़ते । इस तरह पाल झुलाती पालकी घूमती रहती । और पालकी नीचे गाँव में जाने के बाद, लौटने पर दोपहर उलट चुकी होती ।

पालकी नदी की ओर नीचे जाने पर, मेले में आए लोग बचा हुआ मटन खाने की शुरुवात करते । तब तक उसे न छूते । भोजन के बाद बाबा के मंदिर के पीछे बरगद के नीचे ये अठारह प्रकार ही जातियाँ एकत्र होतीं । गड़े मुर्दे उखाड़े जाते, लेन-देन की बातें चलतीं । जानवरों की खरीद-फरोख्त चलती । और किसी के झगड़े-विवाद होते तो उन्हें भी वहाँ रखा जाता । मैंने होटल के सामने खाना खाया । तात्या ने एक आने की लाल कुल्फी दी । चूसता-चूसता बाबा के मंदिर के पीछे गया...

वहां लोगों की भीड़ थी । स्त्रियां आई थीं । पुरुष आए थे । दो-चार बड़े-बूढ़े भी थे । पचरंगी पगड़ी में इतरा रहे थे । दोनों ओर बीस- पचीस लोग आए थे । उन दो दलों में एक बहुत बूढ़ा था । वह बोला, 'कोर्ट का खर्च रखो ।'

वह रकम बताता । वादी-प्रतिवादी पंचों के सामने पैसे रखते । फिर पक्षकार अपनी कैफियत रखते । वादी-प्रतिवादी को बोलने की इजाजत नहीं थी । उनकी ओर से जमानतदार ही बोलेगा। वादी- प्रतिवादी को आवश्यकता महसूस होने पर या नया मुद्दा सूझने पर अपने जमानतदार को एक ओर ले जाकर बताते । यह दोनों के जमानतदार की मार्फत चलता ।

मैं जब गया तब एक आदमी बता रहा था...

'मेरी औरत धर्मा के पास चार साल से गिरवी है । उसने पांच बार पचास-पचास रुपये दिये । मैंने कहा था कि मैं चार साल में लौटा दूंगा । अब मैं पैसे दे रहा हूं । परंतु वह मेरी

औरत नहीं लौटाता।'...बताने वाला जमानतदार था, पर वह इस तरह बता रहा था जैसे यह उसका अपना बयान हो। इस मुकदमे में ऐसा ही बताना होता है।

प्रतिवादी का पक्षकार कह रहा था,

'जनता-जनार्दन आप पंच-परमेश्वर हैं। आप जो भी न्याय करेंगे हम मानेंगे। पुन्नाप्पा कह रहा है, यह सत्य है। इसे पैसा चाहिए था। इसने अपनी औरत रखी। अच्छी थी, मैंने रख ली। आग पर दूध रखने से उसमें ऊफान आएगा या नहीं, बताइए ? भाइयो, चार वर्षों तक प्राणि 'मिलन' के बिना क्या रह सकता है ? मैंने उसे सिर्फ खिलाने के लिए नहीं रखा था। पैरों में चप्पल ठीक बैठी, मैंने पहन ली। इसमें मेरा क्या अपराध है ? अब चार वर्ष हो गए हैं। उसे मुझसे एक नन्हा बच्चा है। वह पैसे दे, मैं औरत लौटा दूंगा। मैंने कब इन्कार किया है ?' पुन्नापा कह रहा था।

'मालिक, परमेश्वर, मैंने विश्वासपूर्वक अपनी दौलत इसके पास रखी। मैंने क्यों रखी, क्योंकि मुझे जरूरत थी। मैं जरूरतमंद था। मैंने अपनी औरत रखी काम के लिए, साथ में सोने के लिए नहीं। और इसने तो एक बच्चा निकाल लिया। मुझे बच्चा नहीं, सिर्फ औरत चाहिए।' उस औरत का वादी कह रहा था,

'महाराज, मैं एक गूंगा जानवर। हरी-भरी घास दिखाई दी, चर गई। रीति-रिवाज क्यों बनाया ? इन चार बरसों में मुझे गिरवी रखकर भडुए को कमाई चाहिए। जो खाने के लिए देगा वह साथ में सोयेगा। वह क्या फोकट में खाने को देगा ? ऐसे में औरत और जानवर एक जैसे। इसने मुझे उसके खूंटे में बांध दिया। यही कसाई है। महाराज मुझे देवी मां न्याय दे। मैं अब एक बच्चा लेकर इसके साथ कैसे घर बसाऊं ? आप परमेश्वर हैं। और पूछताछ मत कीजिए। मैं आपके बेटी जैसी हूं।' प्रत्येक व्यक्ति अपना पक्ष रखता। सब का सुन लिया गया। सारा शोरगुल कम हो गया था। पंच उठ खड़े हुए। एक ओर जाकर दलों में चर्चा की। कानाफूसी चल रही थी। सब लौट आए। अपनी-अपनी बात मुखिया को बताने लगे। अपने-अपने पक्ष की जिद करने लगे। सभी पंचों की बात सुन ली गई। और विचार के लिए बैठक समाप्त हुई। फिर शाम को बैठक तय हुई। दोनों पक्षों की पैरवी और गवाहियां हो चुकी थीं। वादी-प्रतिवादी की ओर से पैरवी की गई थी।

इधर तमाशबीनों का ध्यान उस औरत पर था। उसकी गोद में बच्चा था। वह आनंदित होकर अपनी मां का स्तनपान कर रहा था।

जिन्हें यह 'पंचायत' सुननी न होती उनके लिए नदी के किनारे खुली जगह में नौटंकी चल रही थी। नचनिया नाच रहा था। लोग मुग्ध हो गए थे। धूप ढलने के बाद कुस्तियों की स्पर्धा शुरू हुई। कुस्ती की शुरुवात नारियल चढ़ाने से हुई। मैंने दो-तीन कुस्तियां खेलीं। फिर बड़े पहलवानों की कुस्तियां शुरू हुईं। अंतिम कुस्ती गुकली के आनंदा कैकाड़ी ने जीती। चित करने पर उसकी जीत घोषित हुई। कुस्तियां समाप्त हुईं। लोग मटन समाप्त करते आए थे। अपना सब कुछ उन्होंने पेड़ पर टांग दिया था। मटन खाकर वे बेहद अघा गए थे।

शाम की पंचायत सुनने मैं बाप के साथ गया। वे दो बूढ़े निर्णायक थे। उनमें से एक जो कम बूढ़ा था उठकर निर्णय सुनाने लगा। प्राणी जिसकी है उसी की खूंटी में बांधना चाहिए।



पर अब बाल-बच्चा हो गया है। अब पुनाप्पा को शादी का सारा खर्च देना चाहिए। पुन्नाप्पा ब्याज और पूंजी प्रथानुसार दे। प्राणी जिसके पीछे जाए उसने दूसरे की शादी का खर्च देना चाहिए। मामा का दिया उपहार उसे लौटाना चाहिए। वह भी यहीं। सारा खर्च वह देगा, जिसके खूटे पर प्राणी बंधा हो। बाई की गलती नहीं है, वह एक गूंगा प्राणी है। जैसा हांका वैसा चलता है। पर चप्पल पैर में ही रखनी चाहिए। परंतु, पुन्नाप्पा वैसा नहीं कर सका। धर्मा ने प्रथा के अनुसार ही किया है। निर्णय सुना दिया गया था। बाप खुश था। अब चार-पांच सौ रुपये पंचों को मिलने वाले थे। उसकी दारू आएगी। उसे 'तिदलकी' कहते हैं। मेले के मुखिया की मौज थी। न्याय-निर्णय हो चुका था। अन्याय की बात किसी ने नहीं छेड़ी। इधर न्याय चल रहा था और उधर मंदिर में आरती शुरू हो चुकी थी।

मेले की आखिरी रात, आंखों में जागते कटती। कैकड़ियों के बैंड की स्पर्धा होती। सब अपनी-अपनी शहनाई और बाजे लेकर बैठे थे। पंच मंदिर के सामने बरगद के नीचे चबूतरे पर बैठे थे। सात-आठ दल जमा हो गए थे। पुसेगांवकर जयसिंह, फलटणकर लालब, निरगुडकर सदबा, सांगलीकर दत्तूबा सभी के बजनियां खड़े थे।

पुसेगांव के जयसिंह ने एक चीज बजाई। वही सुर सबको बजाना पड़ता। जो न बजा सकता, उसे पीछे हट जाना पड़ता। शुरुवात हुई। लोग जी-जान से अपना कौशल बताने की कोशिश करते। अब तक पुसेगांवकर की बराबरी कोई नहीं कर पाया। इस साल नारियल किसे मिलेगा ? लोग चुपचाप देख सुन रहे थे। एक के बाद एक सुर निकल रहा था। सांगली का दत्तूबा इस वर्ष तैयारी से आया था। उसने कोशिश की थी। पुसेगांवकर और सांगलीकर का मुकाबला हुआ। परंतु सांगलीकर के ढोलकीवाले को एक सुर का ठेका समझ में नहीं आ रहा था। दत्तू बिगड़ पड़ा। झटपटताल का ठेका साधो-यह सूचना दत्तू ने उसे दी। ढोलकीवाला ठेका साधने लगा। पर ताल न उठता और सारा कुछ बेकार गया। पुसेगांवकर को नारियल देकर विजयी घोषित किया गया।

मदारी का खेल हुआ। ऊंची कूद हुई। और अब रात की नौटंकी के लिए लोग उठे। रात को देव-यात्रा निकलती। पालकी डेरे से उठने के बाद मेला समाप्त हुआ। नौटंकी खत्म हुई। सुबह नारियल फूटा। पुजारियों ने नारियल की कटोरियों से बोरे भरे। गधों के दल आने पर दसो-दिशाओं की ओर वापसी-यात्रा शुरू हो गई अगले वर्ष आने के लिए। देवी मां के दर्शन के लिए सब आते हैं। देवी मां उनकी रक्षा करती है। भूत-प्रेत, चुड़ैल-डायन किसी का कुछ नहीं चलने देती। लोगों की शमशानघाट, दिसा-मैदान; वहां इनका स्थायी निवास। पैरों में भटकन बांध कर पेट के लिए बन-बन भटकना पड़ता है। देवी मां टोकरी में साथ ही रहती है। साल में एक बार देवी को 'भेंट' देनी पड़ती। नहीं तो देवी का शाप लगता। मां-बाप खुश होने पर इसी तरह कुछ कहते। मैं सुनता रहता। भीतर ही भीतर देव भगवान से डरता रहता। मां मासिक धर्म में होती तो मैं नंगा घूमता। अशुद्ध हो जाऊंगा, सोचकर भगवान का डर लगता।

चैत्र का मेला खत्म हुआ। घर में अनाज समाप्त हो चुका होता। बाप पटेलकी करता घूमता। बैंड के लोगों को आपस में जोड़ता रहता। हमारे घर का ही बाजा था। बाप ढोलकी

बजाता । आपा क्लेरिनेट, तात्या मंजीरा, मैं घुंघरू बजाता । चार लोग बाहर के होते और उसके लिए बाप घूम रहा था । दत्तू का बेटा और दत्तू । दत्तू को डेढ़ हिस्सा वह अधिक निपुण था इसलिए । मुझे चार आना । दत्तू के बेटे विट्ठल को चार आने । बाकी सबको एक हिस्सा । बाजा तय होने पर बुलावा आने लगता-पचीस से पचास रुपये तक के लिए। कोई तिथि अधिक होने पर, जोरदार होने पर, भाव बढ जाता । तिथि कम रही तो सिर्फ खाने पर भी फूंकते रहते ।

घर में दाना नहीं । घर की डलिया-टोकरी के लिए ग्राहक न होते । परेशान होकर मां इन्हें बेंचने सारकाल, भाड़ली, सोनवड़ी, चिरकवाड़ी, दूधबायतूर जाती । धूप से दुर्गम रास्ता इतना तप जाता कि पांवों में बड़े-बड़े छाले आ जाते । मां रात में तेल लगाती । दिन भर वह बेहाल हो जाती । पर और कुछ नहीं तो वह ठंडक देने वाली वनस्पति का टुकड़ा लाती । बाप किसी चीज को हाथ न लगाता । सिर्फ कितने बुलावे आए...कितने की बात हुई । आपस में कैसे बांटे, बस इन्हीं बातों में उलझा रहता । एक बार मां के साथ बेचने गया । सासकल हमारा गांव अर्थात हमारे हिस्से का । उस गांव में दूसरा कोई कैकाड़ी न जा सकता। सबने अपने गांव आपस में बांट लिए थे । उस गांव में गांववाले से नमक से दाना तक जो कुछ देते, हम ले लेते । सिर्फ सिरफोड़ी होती । फसल कटाई आने पर खलिहान में जाते । कुनबी देता वह लेते । साल भर मुफ्त में काम करते । कभी हरी-मिर्च, कभी फल्लियां और बचा-खुचा इस तरह सालाना मेहनताना मिलता । बलुतदार के गांव जाने पर मां मुझे किसी के ओसारे में बैठा देती । गांव की मां-बहनें बासी रोटियां खाने के लिए देतीं । मैं किसी के ओसारे में बैठकर खाता । पानी ऊपर से देते । दोनों हाथों की अंजुरी बनाकर मुंह में लगाता । पानी पीता । मां माल बेचने के लिए मोलभाव करती । परंतु बहुत कम कीमत पर बेचना पड़ता । मां मन मसोसकर रह जाती । जो मिलता ले लेती । रोटियां कपड़े में बांध लाती...भोजन के लिए मिली चीजों की गठरी उठाती और आते- आते किसी की बाड़ से हरी टहनियां काट लेती । देखने पर कुनबी गालियां देते । कभी-कभी बहुत अप्रिय घटनाएं घटतीं । चोटी पकड़कर पीटते । बाप होता तो उसे भी मार पड़ती । इतने से निपट गया तो ठीक नहीं तो कोर्ट-कचहरी करनी पड़ती ।

एक बार ऐसा ही हुआ । सबेरे मां-बाप बेचने के लिए निकले । हम बच्चे घर पर थे । भरपूर धूप का समय होगा । घर से बाहर सिर निकालना भी मुश्किल था । गांव जैसे मरकर सुनसान हो गया हो । पक्षी तक नजर न आते । मैंने बासी रोटी इमली के पानी में भिगो रखी थी । पेट में आग धधक रही थी । बाहर की आग में भीतर की आग घुल रही थी। आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली थी । घर में कुछ भी नहीं था । सब लोग परेशान थे । मां-बाप का इंतजार चिड़ियों की तरह कर रहे थे । अब मां आएगी, अब बाप आएगा, आते समय रोटी लाएंगे, परंतु उनका कोई ठिकाना नहीं था । किसन्या जो सबसे छोटा था जोर-जोर से रोने लगा । किसी की न सुनता । उसे समी पानी पिला रही थी । बहुत छटपटा रहा था । मां-बाप को हम मन ही मन गालियां दे रहे थे । और अचानक कोलाहल बढ़ गया। बाप सबके सामने था । उसके पीछे मां । मां के शरीर पर चोली नहीं थी । बाप की कमीज



उसने पहन रखी थी । साड़ी की चिंदियां झूल रही थीं । बाप के शरीर पर सिर्फ धोती थी। सारे शरीर पर काली- काली सांटें उभर आई थीं । उसके पीछे चार-पांच लोग थे । मां चिल्ला रही थी । बाप उसे चुप रहने को कहता । हम कुछ न समझ पाए । हम रोते हुए गिर पड़े। मां ने किसन्या को उठाकर छाती से लगा लिया । उसके सिर से हाथ फेरने लगी । मैं मां के पास गया । उसके दोनों हाथ लहूलुहान थे । सिर के नीचे सारा चेहरा लथपथ था । मैं रो-रो कर परेशान था । बाप के हाथ बंधे थे । बाप ने गर्दन झुका ली थी । मां-बाप को घर नहीं लाया गया । पंचायत के सामने खड़ा किया गया । तब तक देखनेवालों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी । मेरी मां की इज्जत...बाप की कमीज में ढंकी थी । मैं भीतर से सुलग रहा था। उम्र तो खास नहीं थी पर सब समझता था । पंचायत से 'घर जाने दीजिए,' मां पाटिल के पांव पकड़ रही थी ।

वह कहकर रहा था । 'क्यों मरने गई थी ? तेरी...में पैर डाला ।'

मैं क्या करूँ नहीं सूझ रहा था । देखते-देखते हवा समूचे गांव में फैल गई । सारा गांव, पंचायत के सामने जमा हो गया । हमारे मुहल्ले के बड़े-बूढों ने बिनती की, बोले, बाप को सजा दो, पर गांव नहीं हिला ।

'ये साले । बहुत सिर चढ गए हैं । बाड़ में एक हरी डाली नहीं रहने देते और न ही खेतों में भुट्टे । देखते-देखते उठा लेते हैं । पूछने तक की जगह नहीं छोड़ी इन्होंने । बाँध दो भडुए को पेड़ से और डालो इन पर गुड़ का पानी । सारा गांव बेसुध हो गया था । कोई कुछ कहता, कोई कुछ । चोरी से लेकर, मां का संबंध किससे है, यहां तक सब चल रहा था। सारी कैकाड़ी बस्ती दया की भीख मांग रही थी । पर कोई न पसीजता ।

यह सब चल रहा था । हमारी बेचैनी बढ़ रही थी । बाप सिर झुकाकर पैर की मिट्टी खोद रहा था । पाटिल आया । पंच जमा हुए । वह गांव बाहर की सोनवड़ी की पाटिलन कह रही थी...'चार दिन हो गए । गांव में बबूल की एक भी टहनी नहीं रहने दी । रात को आते हैं और बबूल की टहनियां और कंटीली डालियां उठाकर ले जाते हैं । आज इन दोनों को पकड़ा है । भागे जा रहे थे । यह मादरचोद बच निकला था...पर इस रांड की गांड की साड़ी अटक गई थी, यह देखकर वह पीछे दौड़ते आया । बहुत मारा नहीं है । आप तक ला छोड़ा है । क्या करना है आप तय करें । फिर हमारी सीमा में न आएं, इतना देखिए। नहीं तो जिंदा नहीं छोडूंगी । फिर आप कहेंगे, ये क्या हो गया...इनके कारण हमारे संबंध खराब नहीं होने चाहिए ।'

'इनके घर गिरा दो । इन चोरों को हमारे गांव से भगाइए । इनके कारण सोनवड़ी के लोगों ने हमें बेइज्जत किया है । अभी इसी समय इन्हें सजा मिलनी चाहिये ।' एक-एक का हाथ मूंछ पर फिर रहा था । अब हमें गांव छोड़ना पड़ेगा । मेरे मां-बाप को जान से मार डालेंगे । इन विचारों से मैं रोने लगता हूं । जयसिंग्या, पारी, तात्या, आप्पा सारे लोग ज्यों मय्यत में आए से शोकाकुल मुंह लटकाए बैठे थे । यह सब एक नौजवान सुन रहा था। उसका चेहरा लाल था । गुस्से से तेज कदम चल रहा था । गठीला बदन और चेहरा उसके तेज से चमक रहा था । मूंछों का गुच्छा था, पैजामा, कमीज पहने था । बाल करीने से लगाए

थे । पढ़-लिखा युवक था । रामभाऊ उसका नाम था । गुस्से-से उठ खड़ा हुआ । बोलने से पहले खंखारा । सब रामभाऊ को देखने लगे । रामभाऊ गुस्से से तेज कदम चल रहा था। मां के हाथ खोले उसने । मां के शरीर पर मार के निशान देखकर आंसू पोंछे और भर्रायी आवाज में बोला, 'आनवरी तू जा । मैंने तुझे मुक्त किया । तू जा ।' मां प्राण मुट्ठियों में लिए खड़ी हुई । सारे भूत शांत । पर सब देखने लगे । पाटिल का चेहरा लाल हो गया था। 'रामभाऊ, आपने यह क्या किया ? आपको कुछ पता भी है । आप सरकारी कामकाज में दखल दे रहे हैं । इसके लिए सूचना भेजकर आपको गिरफ्तार करवाना पड़ेगा ।'

रामभाऊ गुस्से से उफनता बोला, 'उस आनी की इज्जत की जगह आपकी बहन को इस तरह खड़ा किया तो क्या आप सहन कर लेंगे । आपके भी मां बहन हैं या नहीं ? मैं आपकी लकड़ियां लौटाता हूं । कितनी लकड़ियां लाई है सोनवडी से ? और लकड़ियों के लिए सजा देने का अधिकार आपको किसने दिया ? आप इत्तला दीजिए । आपकी पत्नी को यहां पंचायत में खड़ी करने पर कैसा लगेगा ?'

पाटिल चिढ़ गया । उसने पैर की चप्पल निकालकर रामभाऊ की ओर दे मारी । रामभाऊ के लोग भी उससे चिढ़ गये । कोलाहल बढ़ गया । लोग पंचायत से गांव की ओर भागने लगे । और गांव के लोग क्या हुआ, यह जानने पंचायत की ओर दौड़े । 'क्या हुआ, क्या हुआ?'

'रामभाऊ को मारा...!' बस यही चर्चा चारों ओर थी । रामभाऊ के लोग लाठियां लेकर पंचायत की ओर दौड़े । सारे गांव में दंगा होगा । विट्ठल महार फलटन की ओर भागा । धर-पकड़...मार-पिटायी...कौन- किसे मार रहा है, पता ही न चलता । एक-दूसरे पर चढ़ रहे थे । कारण कैकाड़ियों का और झगड़ा गांव का । महार-मुहल्ले में समाचार फैला । रामभाऊ को पीटा गया है । गांव के निचले मुहल्ले से महार, जो भी हाथ लगता लेकर दौड़ते रहे थे। मातंग आए, रामूशी आए और ऊपर का मुहल्ला पीछे हट गया । पाटिल पहले ही सिर पर पैर रखकर भाग गया था ।

रामभाऊ को काफी चोंट आई थी । सिर से खून बह रहा था । मां ने कमीज फाड़कर सिर बांधा । वह बहुत घबरायी थी । बड़े- बुजुर्गों ने झगड़ा छुड़ाया । लोग अपने-अपने घर जाने लगे । सारा कुछ शांत हुआ । मां-बाप, तात्या, आप्पा सब लोग रामभाऊ के मकान में सहारे के लिए चले गये । सोनवड़ी के लोग कहाँ गए, पता ही नहीं चला । सब शांत हो गया और पुलिस की गाड़ी गांव में आई । आठ- दस लोग होंगे । पाटिल पहले ही सारी चुगली कर चुका था । पुलिस रामभाऊ के मकान के सामने आई । रामभाऊ जख्मी हालत में आए। पुलिस से उनकी क्या बातें हुईं, उल्टा-सीधा क्या-क्या पुलिसवाले बोल रहे थे पता न चलता। रामभाऊ, मां-बाप, पाटिल की ओर से चार-पांच लोग, इस तरह कुल आठ-दस लोग गाड़ी में बिठाकर फलटन की ओर रवाना हुए । मैं, समी, पुष्पी, किसन्या, लाली अप्पा के घर गए नानी ने हमें सीने से लगा लिया । रोने लगी, क्यों आग लगाने के लिए लकड़ियां लेने गए, कहकर मां-बाप को गालियां देने लगी । आप्पा, तात्या, जयसिंग्या, सदा, चंदन्या, मारुति सब लोग पैदल फलटन गए । रामभाऊ की ओर से बड़े-बुजुर्ग फलटन गए । औरतें बातें



कर रही थी रामभाऊ को क्या पड़ी थी ? इनके चक्कर में क्यों पड़ा ? अपनी जगह छोड़ी ऐसे से कभी बात बनती है ।

कइयों के मन में जो आता, बक रहे थे । मेरा कलेजा धक्-धक् कर रहा था । विट्ठल के सामने कोतवाल था । वह कह रहा था, 'उसे कुछ नहीं होगा । जमानत पर छोड़ देंगे। बापू पर पहली केस नहीं है । रामभाऊ हैं । तुम चुप बैठो ।'

कोलाहल घुलता गया । सुबह से मुंह में एक बूंद पानी भी नहीं गया । नानी ने (अप्पा पत्नी) लाली, पुष्पी, समी, मुझे भी आधी- आधी ज्वार की रोटी दी । गांव की ओर देख-देखकर थूंकती और गालियां देती । मुंह में आता, वह बक रही थी ।

रात अंधेरी खाई में डूब चुकी थी । नानी ने सबको सुलाया । उसे नींद न आती । एकटक देखती रहती । मैंने आंखें मूंद ली थीं पर आंखों के सामने मां-बाप डोलते रहते । सारे बच्चे सो गए । मुझे नींद न आती । मैं मां-बाप के साथ नहीं गया इसका दुःख होता रहा । सारी दोपहर एक घुटन में बीत गई थी । लोगों की निगाहें जलाती रहतीं । मेरी मां ने ऐसा क्या किया ? लकड़ी, डालियां रोज लाती है । फिर आज ही उन्हें क्यों पीटा गया ? मुझे बाप पीटता है, पर पुलिस कभी नहीं आई । ये लोग क्यों झगडे.? क्यों मारा मां को ?....घटनाएं आंखों के आगे घूमती रहतीं । आंखों से धारा फूट चुकी थीं । करवट बदलता रहता । छटपटाहट होती रहती । दूसरे दिन की सुबह हुई । माँ बाप रात में लौट आये होंगे । यह सोचकर घर छान मारा । नानी से पूछा, कोई नहीं लौटा था । दोपहर हुई । ध्यान सारा सड़क की ओर था । दोपहर ढल गई । मन डूबने लगा । अब मेरे माँ बाप नहीं आते कहकर रह-रहकर रोता रहता । अंततः भगवान की टोकरी के पास गया । गुलाल लगाया । पैर पड़ा । माँ-बाप को आने दो यह कहकर कितनी देर तक खड़ा रहा । सांझ हुई । माँ, बाप, सब लोग आए । आते ही माँ सबसे लिपट गई । चूमती रही । रो रही थी वह । मैंने पूछा,

'माँ, तुम्हें बहुत मारा ? मां ने गर्दन हिला कर ही नहीं कहा । गोद में लिया..फिर क्या हुआ, कैसे निपट गया किसे मालूम? मैंने और आगे नहीं पूछा । सब भूल गया ।

चार आठ दिन बाप बोला ही नहीं । माँ को कभी हँसता नहीं देखा । दिन गुजर रहे थे। भूखे रहने की आदत हो गयी थी । रूखा-सूखा ही खाते । नमक के पानी में नहीं तो इमली के पानी में रोटी तोड़कर खाते थे ।

बाप ने 'सुपारी' ली थी । बैंड बाजे का काम शुरू हो गया था। पाँच-पाँच, दस-दस मील पैदल चलना पड़ता । धूप की तकलीफ होती । बजाता रहता । जाते ही बाजा बजाता रहता। बाजे के बाद दो-चार गाने बजाता । फिर हल्दी लगती । मंडप में दूल्हा-दूल्हन को हल्दी लगने लगती और हम बजाने लगते । हल्दी के बाद जल्दी-जल्दी खत्म हो इसके लिये मन ही मन भगवान को याद करता । आँख झपकती पर बैंड बजाता रहता ।

हल्दी लगने पर कचरे के ढेर के पास मंडप के बाहर बेसन और रोटी खाता । बच्चे की पतली टट्टी के जैसा बेसन..अधकच्ची ज्वार की रोटी खाता । घर में तो यह भी न होती।

मैं इतनी कम उम्र में बजाता हूं, इसकी लोग प्रशंसा करते । घुंघरू ताल में बहुत अच्छा बजाता । शादी के सारे दिन किसी बच्चे के 'बजाओ' कहने पर भी बजाता । शादी हुई कि

थोड़ा आराम मिलता ।

सबके भोजन के बाद हम बजनियों को खाना मिलता । दूर मंडप से बाहर । चाय के लिए हमारे पास जो बर्तन होते उसमें चाय पीते, परंतु खाने के लिए पत्तलें दूर होतीं । भोजन के बाद पत्तलें हमें ही उठानी पड़तीं । पुकार-पुकार कर परोसने के लिए कहना पड़ता ।

बरात में सब बजाने जाते । मैं दत्तू का विट्ठल सो जाते । आठ-आठ- पंद्रह-पंद्रह दिन तक घर न होते । मां की याद आती । परंतु लड्डू खाने को मिलते । घर की भुखमरी से यह भटकना अच्छा लगता । सब मिलकर निकलते । मां घर चलाती । हमारे घर जाने पर वह चिढ़ी रहती । फिर बाप दो-चार रुपये उसके हाथ पर रखता-बस उतना ही उसे सहारा होता। शादी-ब्याह खत्म हुए । बंटवारा हुआ । मेरे हिस्से में 21 रुपये आए । ऐसा बाप बता रहा था । बाप ने स्लेट, पुस्तक, पेंसिल, कपड़ा सब मेरे पैसे से खरीद लिया । स्कूल शुरू हो चुकी थी । एक दिन बाप घर आया । स्कूल का समय हो गया था । हाथ थामा । स्लेट, पुस्तक, पेंसिल दी...स्कूल लेकर गया । खुसफुसाहट चल रही थी । पर स्कूल क्या चीज है यह मालूम था । और यह गांव की स्कूल । मास्टर भी परिचित, गांव का ही था । आकुबा मास्टर समूचे गांव को परिचित थे । कुछ नया न लगता । हाथ-पैर बांधने-सा लगता । पर कक्षा के सारे लड़के मेरे जान पहचान के थे । मुझसे छोटे ही थे । मैं भी मास्टर से बड़ा दिखता। मेरे उम्र के लड़के तीसरी-चौथी में रहते...तब बाप ने स्कूल में नाम डाला । मास्टर ने पूछा,

'उम्र क्या है...।'

बाप बोला,

'किसे मालूम...होगा आठ-दस साल का । गांधी बाबा गया उस साल का ।'

'जन्म कहां हुआ ?' मास्टर ने पूछा ।

बाप बोला,

'आकुबा' अब कौन-सा गांव बताऊं ? कोकण में इसके समय वह प्रसूत हुई वह गांव मुझे याद नहीं आता...'

फिर मास्टर बोला, 'निरगुड़ी लिखता हूं ।'

बाप 'हां' बोला ।

'अब स्कूल में रोजाना आना चाहिए । स्कूल नियमित आए ।'

मास्टर कह रहा था ।

स्कूल शुरू हुई । रोज स्कूल जाता । स्कूल छूटने पर उछल-कूद करता । गांव के दिसा-मैदान के पास ही बगीचा था । बगीचे में जाता । किसी का पपीता निकालता । किसी का केला तोड़ता । इस तरह शाम तक चलता । मार खाता...गालियां खाता ।

'कुत्ते के जीवन को भी रहम होती है, पर तेरे जीवन को रहम नहीं मिली ।' मां जब परेशान हो जाती तो कहती । बरसात का समय हो चुका । बाप ने लिया कर्ज बजा-बजाकर चुका रहा था । रोज शाम को बाप को परेशानी होती ।

कैकाड़ी को काम कोई न देता । आधी रोटी के लिये बाप पाटिलों के घर ढेर-सा काम करता । बैलों को पानी पिलाना, किसी की बाड़ लगाना, किसी की घास काटना, किसी की



गाड़ी जोतना - इस तरह के काम करता । जो भी मिलता लाकर देता । कभी-कभी पीता भी । बरसात आने पर 'काल' आया, ऐसा कहता ।

खेतों में काम न होता । कपास को कहीं पानी पिला तो कभी रात की पहरेदारी, तो कभी कपास पर दवाइयां छिड़कने जैसे काम मिलते । मां जो भी लिपाई-पुताई का काम मिलता करती । मजदूरी पैसों में नहीं थी । कटोरी भर मिर्च, भुट्टे, फल्लियां, भात इस तरह जो भी पाटिल के घर मिलता ले आती ।

मैं नियमित स्कूल जाता । सुबह स्कूल लगने तक गधों की देखभाल करता । गधों के पीछे-पीछे जलाऊ लकड़ियां चुनता । स्कूल लगने पर स्कूल जाता ।

बारिश रुकने पर काम करता । घनघोर सावन बैरी होकर आता । मां चार दिन तक खाना खाते दिखाई न देती । दो-चार रोटियां बनती । आधी चौथाई टुकड़ा हम खाते । मां-बाप मेरे सामने तो न खाते । पीछे पता नहीं ? सावन में कपास चुनने के लिए मजदूर लगते। मजदूरों को मजदूरी नकद मिलती । छुट्टी के दिन मैं, समी, मां-बाप सब कपास चुनने जाते। मां-बाप को पूरे दिन की मजदूरी मिलती एक-एक रुपया । हम भाई-बहनों को मिलते दो-चार आने । उतनी ही नमक मिर्च का सहारा । शिकायत करने को जगह ही न थी । सब कुछ कैसा शरीर खटाकर काम करना पड़ता । पौधों की निगरानी और फिर कपास चुनने जैसे काम करते-करते दिन ढकेलते ।

सावन महीने के अंतिम सोमवार को पूजा करता । गेहूँ की रोटियां बनतीं । नैवेद्य किया जाता । पांच नारियल, पांच नीबू, पेड़ा जैसा मीठा नैवेद्य । फिर कपास के सूखे पौधे उखाड़ने होते एकड़ से हिसाब से पौधे उखाड़ने का काम लेता । बीस- पचीस रुपये एकड़ । फिर सारा परिवार उस पाटिल के खेत में पौधे उखाड़ने जाता । खेत गीला होता । तो पौधे जल्दी उखडते नहीं तो बहुत मेहनत पड़ती । मां-बाप, मैं, समी, लाली, पुष्पी सब काम करते। बाप हाथों में चीथड़े का टुकड़ा रखता। पौधे का ऊपरी हिस्सा कमर तक होता...उसे पकड़ कर एक झटका देता । एक-एक पौधा उखाड़ कर खेत साफ करता । हाथ की चमड़ी छिल जाती। फफोले उभर आते तो वहीं सूख जाते । हाथ हिलते रहते । बाप के हाथों पर गांठें उभर आई थीं । मेरा हाथ कोमल था । मैं पौधे उखाड़ता थक जाता । हाथ दुखने लगता तब मैं गट्ठा बनाने का काम करता । सारे पौधे एक जगह जमा करता । दो-तीन दिन खूब थक जाते।

बीस-पचीस रुपये मिलने पर पूजा करता । काम करते-करते स्कूल जा रहा था । मां उधार मांग-मांगकर घर चलाती । दशहरे में घर पर पूजा होती । शरीर में देव-संचारने जैसा सारे कैकाड़ी मुहल्ले में तेज आ जाता । कौन किसके घर जायेगा...यह तय होता । अपना-अपना परिवार लेकर पेट भरने निकलते, जीने के लिये निकलते ।

दशहरे पर कोकण में चावल की फसल होती है । सारे लोग आगे-पीछे कहीं होते पर दशहरे पर मावल जाते । भीख मांगने बाहर निकलते । गधे की पीठ पर अपना सामान लादते। फिर लोनंद, शिखल होते हुए पेन, पनवेल, खारपाड़ा, खोपोली की ओर कोई महाबलेश्वर की ओर से महाड़ की ओर उतरते । इस साल बाप के सामने एक कठनाई थी । मां को दिन चढ़ गए थे । दिन भरते आए थे । बाप ने सोचा, हम खोपोली की ओर जाएंगे ।

रास्ते में लगनेवाले गांवों के दिसा-मैदान में, मंदिरों के पीछे पेड़ के नीचे डेरा बदलते हुए फसलों के समय की भीख मांगते-मांगते पेन, पनवेल पहुंचते। कोकण में सिर्फ भात खाते। सुकट, बोंबिल, बक्कल मछली मिलती। झोल और भात। आमसूल आता। मेरा स्कूल गधे की पीठ पर चलता रहता। जहां मुकाम होता वहां बाप लिखता बैठता। कभी स्कूल में तो कभी बाहर, पर स्कूल जारी रही। घर पर किताबें देखकर अध्ययन करता रहता। यह देखकर मां-बाप को बहुत आनंद मिलता। कोकण में नकद- ग्राहक काफी होते। बाप के पास पैसे होते। वह गांठ पर गांठ मारकर रखता। रात-रातभर वह बांस की डलिया बनाता रहता। ग्राहक काफी होते। खूब मेहनत करते। रात भर मैंने उसे और मां को सोते नहीं देखा। दिन उगने पर दोनों डलिया बांधकर बाहर निकल चुके होते। आते समय कच्चे पेड़ की डाली का गट्ठर लेकर आता। मां सामान लेकर आती।

हमारे तंबू के साथ, आप्पा, तात्या की हमारे चाचाओं के तंबू होते। मां पेट से थी इसलिए सब एक-साथ रहते। मेहनत करते। साथ खाते और समय आने पर एक-दूसरों के लिए जान की बाजी लगा देते। नानी, चाची, मां ने आपस में कभी झगड़ा नहीं किया। बाप अपने भाइयों के लिए मां को पीटता पर भाइयों को कभी अलग नहीं समझा।

एक दिन रात के काम चल रहे थे। मैं चीर कर देता। मां भी चीरकर देती। छोटे बच्चे सो रहे थे। बाप सुनी-सुनाई कहानियां सुना रहा था। देवी-देवताओं और उसके देखे भूतों की कहानियां। कभी-कभी आप्पा सुनाता। बाकी सब काम करते हुये हामी भरते रहते। डलिया बुनते, सींक मोड़ते, पेंदा बैठाते। इस तरह सब चलता रहता। बाप को आप्पा बता रहा था, 'भैया आज तो मेरी मौत ही आ गई थी।'

तात्या, चाची, मां, नानी, बाप सबने काम रोककर पूछा, 'क्या हुआ ?'

और आप्पा सुना रहा था। आज सुबह पहाड़ी पर हरी डालें काटने तीनों भाई गए थे। तीनों ने डालियां काटीं। एक-दूसरे पर गट्ठा चढ़ाने लगे। किसी के सिर पर, किसी के कांधे पर गट्ठा उठाया और कदम बढ़ाने लगे। बाप और तात्या काफी आगे निकल चुके थे। आप्पा काफी पीछे छूट गए थे। दिन उग आया था। आप्पा का बोझा काफी भारी था। उसने गट्ठा नीचे रखा...गट्ठों से कुछ लकड़ियां निकाल दीं। गट्ठा फिर बांधा। सिर पर उठाया और चल पड़ा। तब तक बाप-तात्या दूर निकल गए थे। ये तेजी से चल रहा था। रास्ता कोलतार का काला फक्क। इसके पैरों की आवाज ही सुनाई पड़ती या तो किसी चिड़िया की आवाज बस्स। रास्ते से वाहन न आते-जाते। सुनसान रास्ता था। बाप-तात्या दिखाई न पड़ते। उन्हें पाने के हिसाब से उसके कदम तेजी से उठने लगे। उसने सामने देखा तो पेड़ सड़क पर आड़ा गिर पड़ा है। स्साला रास्ते में पेड़ गिर पड़ा हैं। इसलिए आगे जा रहा है। अब वह पेड़ करीब आ गया था। उसकी नजर में आ गया था। पर ये मन ही मन सोचता, ये पेड़ तो दूर दिखाई दे रहा था ये कैसा चल रहा है ? क्या कोई भूत-प्रेत का चक्कर है ? कोकण में भूत-प्रेत बहुत हैं। कुछ गड़बड़ लगता है। इसलिए मन ही मन कालूबाई का स्मरण करने लगा। फिर पेड़ और करीब आ गया। लेकिन अब आपा के कपड़े पसीने से लथपथ हो गए..... पैर आगे न बढ़ पाते....। सामने चार लोगों के हाथों इतना बड़ा सांप। सारी



उम्र इतना बड़ा सांप नहीं देखा था। आप्पा के पैर कांपने लगे। मुंह से शब्द न निकलता। सांप करीब आ रहा था। इतने में पीछे से चार-पांच साइकिलवाले आए। आप्पा के पास आकर उन कोकणी लोगों ने सांप देखा। कोलतार की सड़क पर पैर पटकना शुरू किया। तालियां बजायीं। साइकिल की घंटिया बजायी। सांप रास्ते से नीचे उतरा और जंगल में ओझल हो गया। कोकणी कह रहे थे, 'अरे इस गट्ठरवाले को यह अजगर पूरा निगल जाता, अच्छा हुआ हम लोग यहां आ गए।'

मृत्यु आ गई थी, पर समय नहीं आया था। आप्पा सुना रहा था। सबने ईश्वर को धन्यवाद दिये, हाथ जोड़े। बाप उठा, टोकरी के पास गया। क्या-क्या बड़बड़ाया, गुलाल लाया और सबने लगाया। आप्पा के तंबू पर डाला। माथे पर लगाया। मैं खिसक गया। फांक वहीं डाल दी और चुपचाप जाकर सो गया।

सड़क के किनारे खोपोली के पास रुके थे। ऊंची-ऊंची पहाड़ियां, हरी-भरी प्रकृति देख रहा था। आप्पा, तात्या मेरा लाड़ करते। सुबह ब्रेड-बटर मिलती। कभी-कभी भेल भी। मैं पढ़ाई में मन लगाऊं इसलिये सब मुझसे मीठा-मीठा बोलते। कुछ चूकने पर तुरंत न मारते...बापदादों को काला अक्षर भैंस बराबर था। चिट्ठी आने पर मास्टर के पास जाना पड़ता। मैं स्कूल जा रहा था। कभी-कभी न भी जाता। जब जिस गांव में होते, वहीं हमारी स्कूल होती। अब आदत हो गई थी। किसी से घुलते-मिलते तो नहीं थे। कोई छूने भी न देता। रात को मिट्टी के तेल का कंदील। खुले आसमान में हमारा घर। वहीं तंबू में रहते। कचरे के ढेर में अनचाहे पौधे-सा बड़ा होता रहा। तंबू रास्ते के किनारे लगाए गए थे। दिन डूबने लगा था। मां ने तीन ईंटोंवाला चूल्हा जलाया था। 'जेजू' टुकड़े जमा किए। चावल पकाने रख दिया। मैं आग जलाने लगा। मां की तबियत ठीक नहीं लग रही थी। बाप उठा। एक आने का गुड़ लाया। चाय की पुड़िया लाई। चाय बनायी। मां को दी। अब कुछ ठीक लग रहा था। फिर काम शुरू हुआ। आप्पा का, तात्या का चूल्हा जल चुका था। हवा बह रही थी। आग न सुलगती। आग ठीक से न पहुंचने के कारण जिस ओर आग होती भगौने का चावल पकता और जिधर आग न पहुंचती चावल कच्चा रहता। इसलिए नानी, काकी 'जलने दे, मिट्टी का तेल गिरने दे, मुर्दे जाने दे' कहकर हवा को गालियां देतीं।

सभी खाने बैठे थे। मां का पेट दुख रहा था। बाप ने अंगारा लगाया। मां निरंतर रो रही थी। भोजन सरका दिया गया। बाप ने धोती का छोर खोंस लिया। चार युवक खड़े किये। कंदील बड़ा किया। दौड़कर मैं मिट्टी का तेल ले आया। आप्पा दो हंडे भरकर पानी ले आया। नानी, काकी काम में लग गए। धोती की ओट में वे न जाने क्या- क्या कर रहे थे...हम बच्चों को उधर जाने न देते। डांटते रहते। आस- पास की दूकानें बंद हो रही थी। अंधेरा बढ़ रहा था। आंखों में अंगुली डाल दें फिर भी कुछ दिखाई न देता। कंदील धोती की ओट में गया तब अंधेरा और गहरा गया। डर लग रहा था। आस-पास जंगल। झाड़ियों से किर्रर्र ऽ ऽ की आवाज आ रही थी गांव के उस मोड़ पर बहुत बड़ी बस्ती नहीं थी। जान-पहचान नहीं थी। मां दर्द से कराह रही थी। नानी कहती, अरी चुप बैठ सहन कर। क्या हो रहा है, मुझे कुछ पता न था। बाप को पूछा तो उसके चेहरे पर मौन था।

एक जगह वह बैठता भी नहीं था ।

अंततः मां का कराहना बंद हुआ तब एक नन्हें बच्चे की रोने की आवाज आई । तात्या, आप्पा, बाप सबने मुक्ति की सांस ली । सभी आनंदित हुए । नानी भीतर से पानी मांग रही थी । आप्पा पानी दे रहा था । नानी ने आप्पा को गालियां दीं, 'अरे बर्फ-सा ठंडा पानी है। क्या मार डालने का विचार है ?'

बाप ने चूल्हा जलाया । पानी गरम किया । पानी गरम होने पर धोती के पीछे चला जाता । बच्चा रो रहा था । मां को बच्चा हुआ था । मुझे भाई हुआ था । समंदर के किनारे बेटा हुआ । बाप कह रहा था.....समंदरया नाम रखेंगे ।

मां मुक्त हो गई थी । रात भर क्या-क्या सहा उसने । बाप ने हमारे लिए गुदड़ी बिछा दी थी । हम सो गए थे । ठंड पड़ रही थी । सर्दी लग रही थी । हवा बह रही थी । हमारे ऊपर गुदड़ी डाल दी थी । नींद कब लग गई पता नहीं चला ।

मां की प्रसूति को चार दिन हुए होंगे । रोज सुबह भात खाना पड़ता । मां बुनने का काम न करती । सिर पर साड़ी का टुकड़ा बंधा रहता । तीन ईंटों के चूल्हों पर जर्मन के बर्तन में भात पकता । हम बच्चे नंगे ही थे । किसी भी लड़के के शरीर पर कपड़े न होते । बाप कहता, 'अपवित्र हो जाएंगे । ईश्वर के साथ हैं । जानबूझकर मुसीबत क्यों मोल लें । छुआछूत नहीं चलेगी ।'

मां का भात अलग होता । सुकट-बोंबिल मछली का झोल खा-खाकर ऊब गया था । गांव के बाहर, सड़क के किनारे ग्राहक आने बंद हो गए थे ।

फिर भी तंबू वहां से न हिलते ।

कोकण में पैसा ठीक-ठाक था, बरकत अच्छी थी । कुछ पैसे मिलने के दिन थे और मां के साथ इस तरह बीता । बाप चिढ़ता । तिलमिलाता । पैसा कमाता वह, अब गंवाने के दिन आ गए थे । बच्चे की छठी का कार्यक्रम अच्छा करेंगे । ताव में आकर बाप अपने छोटे तात्या को बता रहा था, 'तू अपने सभी लोगों को बता दे । सबको निमंत्रण देना चाहिए । जात-बिरादरी के बाकी लोग पेन, पनवेल, खारपाड़ा जहां कहीं गए होंगे उन्हें निमंत्रण दे आ ।'

तात्या दिन उगते ही धोती में चावल बांधकर चल पड़ा । आप्पा और बाप कहीं गये थे । दोपहर को बाप आया । उसके हाथ में बोतल थी । आप्पा खड़े-खड़े की गटक रहा था। मैंने दूर से देखा और दौड़ते हुए सामने गया । बाप गरजा, 'आ मूत पीने । यहां क्या खाने का पड़ा है चला आता है ।' उत्साह सूख गया, सिर झुकाया । बाप ने निराश कर दिया था।

हम तंबू में लौट आये । गधे को खूंटे से बांध दिया । समी ने भात पकाया था । हम खाने लगे । बाप गपागप भात भर रहा था । खाते-खाते बोल रहा था । आज शाम को छठी का कार्यक्रम करना है । इसलिए मां से पूछ रहा था कि क्या-क्या चाहिये । मां बता रही थी, 'बकरे की पूंछ पर सफेद दाग दिखता है । छठी के दिन सिर्फ काला बकरा ही लगता है ।'

बाप खाना-खाते उठा । टांग उठाकर नीचे-ऊपर कर बोला, 'अरी, वह दाग नहीं, प्याज का छिलका है ।'



बाप ने निःश्वास छोड़ा । बकरे के रंग से आश्वस्त हुआ । फिर खाने लगा । माँ बता रही थी, गेहूं लगता है । गेहूं के आटे के दिये बनाने पड़ेंगे । मीठा तेल, पांच नारियल, पान, सुपारी, नीबू, हरी चूड़ियां, सिंदूर की डिबिया, हरा कपड़ा, हल्दी, सिंदूर और पता नहीं क्या-क्या । बाप सारा कुछ ध्यान से सुन रहा था । दोनों भाइयों का भोजन हो चुका था । दोनों उठे ।

बाप ने धोती कांधे पर डाली और दोनों जल्दी-जल्दी जाने लगे । मां ने कपड़े सुखाने के लिए डाले । बच्चे पर धूप आ गई थी । उस पर कपड़े की छांव की और जलाने के लिए लकड़ियां चुनने चली गई । मैं बच्चे के पास बैठा । समी और मैं खेलने में व्यस्त थे ।

दिन डूबने लगा होगा । तात्या के साथ पांच-छह लोग आए थे । मां ने चाय बनाने को कहा । नानी ने चाय बना दी । सबने चाय पी । मैं सबको पहचानता था । जयसिंह का तंबू खारपाड़ा में था । तात्या उसे कह रहा था, 'अरे जयसिंह । यहां ग्राहक नहीं हैं । हम भी यहां से जा रहे हैं । परंतु भाभी के प्राण हल्के हो गए हैं । अब कोई चिंता नहीं है । टोकरी बनाने के लिए हाथ ही नहीं चलता । ठकी को यह काम बिल्कुल नहीं आता । सिर्फ पंडवा संभालती है । कोई औरत होगी तो देखो । दूसरे की होगी तो भी चलेगा पर काम में चपल होनी चाहिए ।

दोनों की बातें चल रही थीं । तभी बाप और आप्पा सिर पर गठरी लेकर आए । लोग जमा हो गए थे । बाप ने जल्दी की । ज्वार पीस कर लाया था । चावल की पोटली बांधी। थाली, भगौना, हंसली एक बोरी में भर दी । नमक-मिर्च आदि, भगवान का सामान सब कुछ बांध डाला और आप्पा को निकलने के लिए कहा । उसने सारी बड़ी गठरी सिर पर उठायी । बाप ने नैवेद्य का सामान लिया । एक हाथ में आटे का दिया लिया । आटे के गोले एक छोटी थाली में रखे । हाथ में हंसली उठाकर उससे वे गोले काटे । चारों ओर फेंक दिये। मुंह के मुंह में पता नहीं क्या-क्या बोलते । सब लोग नीचे सिर झुकाये आगे बढ़े । बाप ने सबको बताया, 'पीछे कोई मत देखो । कुछ छूट गया होगा तो रहने दो । पीछे देखना नहीं।'

सारे लोग चुपचाप एक-दूसरे के पीछे भेड़ों की तरह घुप्प अंधेरे में चल रहे थे । मैं आप्पा के पीछे बकरा हांकते चल रहा था । मेरे पीछे बाप हरे राम, राम...राम उच्चारते चल रहा था । पीछे क्यों नहीं देखना ? मन में सवाल उठता रहता । परंतु किसे पूछना ? सारे मय्यत में चल रहे-से चुपचाप बोझिल कदमों से चल रहे थे ।

चारों ओर अंधेरे का साम्राज्य था । हाथ को हाथ न सूझता । ऊपर से पैरों में कुछ नहीं था । ठोकरें लगतीं । कांटें चुभते । 'सी ऽ ऽ..आय...आय कहता । बाप पूछता, क्या हुआ रे ? बताने की हिम्मत न होती । डरते-डरते बताता । बाप कहता, 'आंखें नहीं हैं क्या ? आप्पा के पीछे-पीछे चल ।' आसपास लोग नहीं थे । रात ज्यौं निगल जाएगी । चारों ओर घुप्प अंधेरा । झींगुर चिल्ला रहे थे । सब कुछ डरावना । अंधेरे में बकरा भी ठीक से न चलता। जों यम आ गया हो, कुछ इस तरह डरता । कोई बात न करता । सबसे आगे तात्या था। कुछ अच्छी जगह देखकर तात्या रुक गया । सब वहीं रुक गए । वह वहीं से बोला, 'अरे भैया, यह पेड़ है, ओट है...और मैदान भी है...यहीं रुकें ? गांव से हम लोग काफी दूर निकल

आए हैं ?' बोझा सिर से नीचे रखा । बाप ने तीली जलाई । रोशनी हुई । 'कंदील लेकर आते तो...' मैंने कहा ।

तात्या ने झिड़क दिया, 'अरे चुप । ऐसा नहीं कहते ।' तब तक बाप ने करौंदे का पेड़ आधा काट डाला था । अच्छी ओट कर ली थी । आंटे के दीये में मीठा तेल डाला और उसे जलाया ।

तब मद्धिम रोशनी हुई । सब रोशनी के पास एकत्र हुए । बाप ने दस-बारह छोटे-छोटे पत्थर जमा किए । पानी से धोए । कतार में लगाए । उस पर हल्दी-सिंदूर लगाया । चूडियां रखीं । कपड़ा, सुपारी, पान-नींबू, सब रखा । तात्या ने नारियल छील लिया । फटाफट नारियल फूटा । अगरबत्ती जलाई । कपूर जलाया । भक्ति-भाव से भगवान को हाथ जोड़े । बाप सटवाई (छठी के दिन पूजी जाने वाली देवी) लाना भूल गया था । क्या किया जाए यह एक बड़ा सवाल था । शिरपा ने कहा, 'अरे बापू उससे क्या होता है ? इसे पूज ले सब हो जाएगा। तात्या ने चार आने चढ़ाये । बाप ने उसे हल्दी- सिंदूर लगाया । 'मां सटवाई' कहकर वह रख दिया। इतने में जंगल में सियार चिल्लाया । रोंगटे खड़े हो गए । मैं भगवान के पास से उठकर लोगों के बीच आकर बैठ गया । आप्पा ने बकरा गिरा दिया । यह समधी द्वारा काटा जाना होता है । बाप ने जीजा से कहा वही एक समधी आया था । जीजा ने बकरा काटा। खून भराभर बहने लगा । खून की पहली धार उछली, उसे अंधेरे में बाप ने थाम ली । और भगवान के आगे छिड़क दिया । बकरे की जान निकल गई । और शिरपा ने चमड़ी छील डाली । सिर और खुर भगवान के सामने रख दिये । जीजा ने और तात्या ने पत्थर रखे। आप्पा ने अंधेरे में ही लकड़ियां जमा कीं जलाईं और लपटें उठीं तब जाकर कहीं अच्छा लगा। अब अच्छी रोशनी हो गई थी । ठंडी हवा शरीर को चुभ रही थी । मैं चूल्हे की ओर गया। अब कुछ गरमाहट हुई । लोग आपस में गपिया रहे थे । दूर गांव में कुत्ते भौंक रहे थे । शिरपा ने सारा मटन चूल्हे पर रख दिया । आप्पा ने रोटियां बनाईं । बाप रोटियां भून रहा था । सबका ध्यान इसी में था कि मटन कब पकता है । जीजा बोला, 'नरम है, अभी पक जाएगा । जरा सुपारी का टुकड़ा डाल । पकने में देर नहीं लगती ।' बाप ने सुपारी का टुकड़ा भगौने में डाला । आग तेज चल रही थी । पेट में चूहे दौड़ रहे थे । बाप ने नारियल फोड़ा।

'नानी को साथ लाते तो?'

मैंने पूछा, बाप समझाता बोला,

'अरे, औरतों का यहां आना मना है । भगवान हो नहीं चलता यह सब ।'

सभी पुरुष लोग ही काम में लगे थे ।

मटन पक गया था । कलेजे का छोर रस्सी से बांधकर उबलते बर्तन में डाला, उसे निकाला। पीतल की थाली में रोटी, मटन और कलेजे का टुकड़ा रखा । लोटे में से पानी लिया और झुककर बाप ने नैवेद्य दिया ।

थालियां चार ही थीं । दो-दो...चार-चार थाली के हिसाब से बैठे । झोल बहुत तीखा बन गया था । शिरपा ने नैवेद्य के लिए जो प्रसाद लाया था, वह सबको दिया । मुझे रात में जाना



है, इसलिए प्रसाद नहीं दिया । सबने बोतल की शराब पी । और थाली के बाद दूसरी थाली समाप्त होने लगी । मटन अच्छा बन पड़ा था । जितना पकाया है सब खत्म करना होता । वापस कुछ भी ले जाना नहीं था । सिर्फ गोश्त ही खाया ।

लोग रास्ते में क्या-क्या बक रहे थे । बिल्कुल बेकार और फालतू । आदमी खूब पीकर कामुक हो गया और औरत ने कमर खिसका ली, शिरपा रंग में आकर बता रहा था । मुझे कुछ समझ न पड़ता । सब हंसते, मैं भी हंसता । परंतु आदमी कामुक हुआ यानी क्या ? मैं चुपचाप खाना खा रहा था । मैं अकेला ही होश में था । बाकी सब नशे में चूर थे । खाना हुआ । बाप ने बचा हुआ खाना खत्म किया । दीये का तेल खत्म होने को आया था । बाप ने जल्दी की । सारा सामान बांधा और लोग रास्ते से हो लिए । शिरपा को बहुत चढ गई थी । उसे आप्पा ने पकड़ रखा था । आगे तात्या, उसके पीछे जिज्या और जिस तरह आए थे उसी तरह लौटे । अमावस की रात । शिरपा और आप्पा एक खाई में लड़खड़ा गए । अरे...आय...आय कहते उठे । बाप 'संभाल के' कहकर हुकूम चला रहा था । मुझे कुछ दिखाई न देता । बिल्कुल अंधे की तरह, आंखें पूरी ताकद से खोलने पर भी कुछ भी दिखाई न देता । बाप ने मुझे उठाकर कांधे पर रख लिया और हम नदी के किनारे पहुंच गए । सब जल्दी-जल्दी पानी में उतर गए । बर्तन-भांडे खोले और सारा गीला किया । स्नान किया । मुझे नंगा किया । खैर कि स्नान नहीं करवाया । परंतु ठंड से दांत किटकिटा रहे थे । शरीर पर रत्ती भर कपड़ा नहीं था । रात काफी हो चुकी थी । पर नींद उड़ गई थी । झपकी आती पर ठंड से भाग जाती ।

गीले कपड़ों से सब लोग भागते-दौड़ते, उठते-बैठते वापस तंबूओं में आ गए । सभी को बिछाने ओढ़ने को नहीं था । शरीर पर गीले कपड़े । बाप ने धोती फाड़ी । सबको धोती का टुकड़ा बांटा । सबने धोती के टुकड़े पहने और पैर पेट से चिपकाकर सो गए । मैं बोरे में घुस गया । तब कहीं कुछ गर्मी मिली । गर्मी मिलते ही मेरी आंखें भारी पड़ने लगी । बाकी लोगों ने क्या बिछाया किसे पता ? मैं सो गया, तब भी बाप बड़बड़ा रहा था ।

दिन उगनेवाला था । पक्षी चहचहा रहे थे । कोलतार की सड़क पर आवाज ही शुरू हो गई थी । मछली लेकर मछली की गाड़ी जाते ही मछली की गंध फैल रही थी । दूधवाले की साइकिल पाव-बटरवाला लड़का, सड़क की जान में जान आ रही थी । बाप ने लकड़ियों की टहनियां चूल्हे में ढकेली, चाय चढ़ायी । एक आने का दूध लिया । चाय बनकर तैयार। सारे मेहमानों ने चाय पी और अपनी-अपनी राह पकड़ी । हमने अपना ठिकाना बदल दिया। बाप ही सारे काम निपटा रहा था । गधे के दोनों ओर लटकने वाले थैले में बाप सामान भर रहा था । भाग रहा था । भाग-दौड़ मच गई थी । हम पर नाराज होता । मां ने बच्चे को कपड़े के टुकड़े से पीठ पर बांध दिया । साड़ी का पल्लू खोंस लिया । दूर से ही भगवान के पैर पड़ी । बाप ने हमें गधे पर बिठाया । आप्पा, तात्या के परिवार साथ नहीं आए थे। तात्या दूसरे दिन किसी के गांव जाने वाला था और हम दूसरे गांव । आप्पा कह रहा था, 'दीपावली के पहले दिन नहीं तो राम मेला के समय मैं निरगुड़ी आऊंगा ।'

तात्या भी उसी समय निरगुड़ी आने वाला था । हम कुछ दिन आगे-पीछे लगभग उसी

समय निडगुड़ी जाने वाले थे ।

इसके बाद हम महीना-सवा महीना कोंकण में रहे होंगे । टोकरी बनाना और बेचना रात-रात काम करना । मां-बाप में झगड़े, हम पर गुस्सा करना, समझाना यह सब चलता रहता। शाम को जब बाप काम करता, मुझे बिना चूके अध्ययन के लिए बैठाता । मैं अपनी बुद्धि से लिखता- पढ़ता रहता । एक-दो की गिनती सौ तक याद करने के लिए मुझे पढ़ाता । दो-दुन्नी, तीन-दुन्नी करता-करता अध्ययन चल रहा था । बीच में ही कोई दिन बेवड़ा बाप को राक्षस बना डालता । मां कुछ न बोलती । बाप उसे कुछ न बोलने देता । 'रांड, तेरी मां की गांड,' यही चल रहा था । सिर का पसीना पैरों तक बहाते हुए मां-बाप खट रहे थे ।

हम खारपाड़ा में थे । पेट भरने के लिए कोंकण में बेरोजगारों की भीड़ थी । हमारे तंबू के पास जोशी का परिवार ठहरा था । पति, दो पत्नियाँ इस तरह तीन लोगों का परिवार था । रोज शाम को तीनों का झगड़ा तय था । पति रोज बेवड़ा चढ़ाता और रात जगाता रहता । औरतें सिर पर टोकरे में अल्युमिनियम के बर्तन भर रहे थे । सिर पर टूटा-पुराना ले-देकर सारा दिन भूखे-प्यासे भटकते रहते । इधर जोशी रोज सुबह नियमित नहाकर और माथे पर चंदन लगाकर 'भविष्य जानिए'...'ज्योतिष जानिए' कहता फिरता ।

शाम को बाप के साथ बैठता । बाप उससे भविष्य के बारे में पूछता वह हंसता और प्रसन्न होने पर कहता, 'अरे बापू दादा इस तरह यदि भविष्य बताया जा सकता तो पारी और सरी मुझे कब छोडेंगे, यह भी मैं बता सकता । अरे तू किसलिए खट रहा है । पेट के लिए ही न ? हम पेट के लिए सूत पकड़कर स्वर्ग पहुंच जाते हैं । आदमी के चेहरे को टटोलते हैं । फंसेगा, यह सोचकर उसे फंसाते हैं । तू जिस तरह एक-एक फांस पर फांस रखते जाते हो, वैसा ही है । घर में जाते ही दरवाजे पर बैठना, पानी मांगना और औरत पानी लेने भीतर गई तब सारा घर निहारना, घर में गेंद दिखी या गुल्ली-डंडा, रस्सी पर छोटे बच्चों के कपड़े दिखायी दिए, बड़ों के कपड़े सूखने रखे दिखाई दिए, इस पर घर में कितने लोग ? छोटे बच्चों के कपड़े दिखाई दिए, इस पर घर में कितने लोग । छोटा बच्चा या बच्ची होगी...घर में, फोटो होने पर घर में पति-पत्नी और कितने लोग होंगे...यह सब अंदाज ध्यान में आते ही बोलना शुरू । प्रत्येक के जीवन में एकाध बीमारी तो होती ही है । घर में खटपट होती ही रहती इससे आगे बढ़ते जाना होता है । आदमी के बात करने से सब कुछ मालूम हो जाता है, उसे थामकर बोलते जाना । हममें भी काफी जातियां हैं ।' इसी तरह कई बातें बताता जाता । खाना बनने पर पारी, सरी पुकारती फिर, 'रांडे बुलाती हैं, पलभर बैठने भी नहीं देती,' कहकर उठता । लगातार बीड़ी पर बीड़ी फूंकता रहता । खांसी का झटका आता तो छाती थाम लेता । खांसते-खांसते जाता और जाकर लेट जाता । मां-बहन की हमेशा गालियां देता। पचापच थूंकता रहता । औरतें काफी खटती रहतीं । हम पेन में रहते थे । रास्ते के किनारे बरगद का एक बड़ा पेड़ था । उस पेड़ के नीचे हमारा परिवार ठहरा था। हमारे बाद आए चार परिवार हमारे ही जाति के थे । मां-बाप उन परिवारों से बोलते रहते। मुझे खेलने के लिए दोस्त मिल गए । बहुत खुशी हुई । परंतु लोग क्या लगते हैं, यह मालूम नहीं था । मैंने मां की ओर का रिश्ता पकड़ लिया था । सब लोग मां के रिश्ते से थे । इससे



बाप पर मां का मन भर आया था । वह लाड़ में आकर मुझे सबकी पहचान बता रही थी। कोई मामा, कोई चाचा । चाचा को स्वाटू और चाची को स्वाड़गा...कहने के लिए मां ने सिखाया। और देखते ही देखते वे नए परिवार निरगुड़कर के परिवार के ही हो गए । और कई दिनों तक यह साथ मिला । उसमें से मारुति मामा एक मेरा मामा था । वह युवक केले के पेड़ की तरह था और सुंदर भी था । मुझे लगता, स्साला, ये आदमी अपने में से नहीं लगता हैं । पर मामा ही लगता है.. यह जानकर बड़ी खुशी हुई । उसकी नजर कौवे की नजर-सी कुछ न कुछ खोजती रहती। मैं उसकी ओर एकटक देखता रहता । वह लकड़ी चीरता बैठता तब मैं वहां जाता । पर वह तिरस्कार करता । उसकी पत्नी को मैं पारुमामी कहता था । अब वह समी की बजाय मेरा लाड़ करती । इसलिए वह मुझे पसंद थी । महिला बहुत सुंदर थी । गोरी-गोरी, खड़ी चवली की फल्ली-सी सिर्फ हवा से भी चपलता से डोल जाती। मेरी मां को, आठ-आठ दिन शरीर को पानी न मिलता । परंतु पारुमामी रोज स्नान करती। वह शाम को या सुबह के उजाले में रास्ते के किनारे ही नहाती । वह नहाने बैठती तब जवान लड़के हमारे घर की ओर चील-गिद्ध की तरह यूं ही सूंघते रहते । इसका क्या भाव ? और इसकी क्या कीमत? बाप बहुत चिढ़ता । चिढ़ने पर कहता...

'दूब-सा देना और मूसल-सा चोदना...तुम्हें लेना है तो बोल । नहीं तो मैं बेकार नहीं हूं । जा...बाबा, जा ।' कहकर भगा देता । उधर वह नहाने बैठी । इधर मारुतिमामा दांत-होंठ चबाने लगता, ये, तेरी मां की...क्या तू ब्राह्मणी है । शरीर में गू लगा है । हमेशा नहाती रहती है । ऐसा कहकर गालियां देता । इसी तरह एक बार वह नहायी और तंबू से आईना लेकर बाल संवार रही थी । मारुतिमामा के रहते वह बालों का जुड़ा बनाती पर उसके न रहने पर कंधे से बाल संवारती । मां भी उसे भला-बुरा कहती ।

'हम गरीब लोग, कहीं भी रहने वाले । ये औरत अपने भाई की जान पर आफत आने के बाद ही मानेगी ।' ऐसा बहुत कुछ कहती । मुझे कुछ भी न समझता । वह बाल संवार रही थी, यह मारुतिमामा ने दूर से ही देखा और पट्ठा कुत्ते की तरह झपट पड़ा और पारुमामी को गिराया उनकी छाती पर चढ़ बैठा । आईने से उसके चेहरे पर मारने लगा । आईने के फूटे कांच से उसके गाल से खून बह निकला । वह चीख रही थी । मां-बाप और सारे लोग बीच-बचाव करने लगे । उन्हें छुड़ाया । उसे काफी लगा था । पति-पत्नी का झगड़ा, कौन क्या करेगा ? वह बोलता,

'मैं तेरी बोटी-बोटी कर डालूंगा, तू अपने आपको समझती क्या है ?' इसी तरह न जाने क्या-क्या कहता । वह उसे नहाने न देता । बाल संवारने न देता । 'कोल्हू में रहना है कोल्हू जैसा होना होगा । बहुत धनी-मानी जैसा मत कर । हम सड़कों पर रहने वाले लोग, कोई भी आता रहता है । किसी का ध्यान गया तो ?'

उन दोनों के बीच हमेशा ही झगड़े होते । मामा मामी को आंखों से दूर न होने देता। वह कपड़े धोने जाती तो तब भी यह पीछे-पीछे जाता । लकड़ी काटने जाते समय भी साथ में...बेचने जाते तब भी साथ- साथ...इतना ही नहीं, जब वह पेशाब के लिए जाती और समय पर न आती तो 'इसकी मां की गांड ! ये कहां जा बैठी' कहता तुरंत निकल जाता।

मां उसे कहती,

वह टट्टी के लिए जाएगी तब तू पानी लेकर जाना । अरे वह कलि है, लाज-आबरू की है । इतना क्या उसमें सोना लगा है, उसे नोंच खाएंगे ? और सारे हँस पड़ते । मामा कुछ नरम पड़ता । पर थोड़ी देर भी इधर-उधर जाती तो वह बेचैन हो उठता ।

हमारे तंबू दो-चार दिन में हिलने वाले थे । मारुति मामा और मामी दोनों लौटनेवाले थे । अपने गांव वापस । और एक रात पारूमामी पर आकाश ही टूट पड़ा । हम सब लोग खाना खाकर सो गए थे । आधी रात बीत चुकी होगी । अंधेरा फैला हुआ था । और पारुमामी चीखते-चिल्लाते भागते आ रही थी । सारे लोग जाग गए । 'अरे उठो- जागो' कहते सारे जाग गए । एक ही कोलाहल, 'क्या हुआ, क्या हुआ ' सब पूछने लगे । पारुमामी का मुंह कपड़े से बांधा हुआ था । वह कुछ नहीं बोल पा रही थी । सिर्फ उसका आक्रोश मालूम होता। नीचे से मिट्टी लेकर मुंह पर मारती । सबको लगता मारुति ने ही पीटा होगा । परंतु वह तो धान की कटी बाली-सा खड़ा था । कोई उसे छूता भी नहीं था । उसे छूना भी नहीं था। आज वह अकेली ही सोयी थी । बगल में मारुति मामा सोया था । उसे कुछ मालूम नहीं था । और यह औरत तो सिर्फ चिल्लाये जा रही थी । अंततः मां और समी ने उसे पकड़ा। और हमारी भाषा में ही पूछना शुरू किया ।

डेरे की सारी औरतें आईं और उसे एक ओर ले गईं । सारे पुरुष दूसरी ओर बैठे थे। उसे भूत बाधा हो गई ऐसा अंदाज मेरे बाप का था । मैं मां का आंचल पकड़कर औरतों में बैठा था । काफी देर बाद पारुमामी का चिल्लाना बंद हुआ । सिसकते हुए उसने बताया। डरी- सहमी तो थी ही । हाथ-पैर कांप रहे थे । वह बोली,

'मैं बोरे पर सोयी थी । नींद गहरी लगी थी । और कहर हो गया...'

और फिर रोने लगी । औरतें फिर-फिर पूछतीं । वह फिर बोली, 'मैं दूर बैठी हूँ कहा, फिर भी नहीं छोड़ा ।'

फिर रोने लगी । दो-चार थे...पता नहीं । नींद में ही मुझे उठाया होगा । मेरी नींद टूटी तब मेरा मुँह बांध दिया गया था और मुझे दो- चार लोग उठाकर ले जा रहे थे...

और फिर रोने लगी । उधर अंगुली दिखाकर वह बता रही थी ।

'बहुत जुल्म हो गया रे ! बाबा । अब क्या करूँ ।' कहकर रोने लगी ।

'बहुत वेदना सही...दरिंदों ने नहीं छोड़ा । शरीर का चिथड़ा कर दिया ।' इसी तरह न जाने क्या-क्या कहती और चीखने-रोने लगती ।

अब सबको स्थिति मालूम हो चुकी थी । उसे औरतों ने पकड़ रखा था । वह लगातार कह रही थी,

'मुझे मरने दो अब शरीर मुझे नहीं चाहिए । और उठकर भागती । औरतें पकड़ती । वे लोग कौन थे, उसे नहीं पता । वह बता नहीं सकती थी ।

मां ने आकर बाप को।और मारुतिमामा को बताया तो मारुतिमामा छटपटाने लगा ।

'रांड की गांड ने सारा तमाशा खड़ा कर दिया । मुझे शंका थी ही...यह छिनाल निभायेगी नहीं । मेरी तो नाक ही काट डाली...।' और रोने लगा । उसे बाप ने पकड़ा और समझाया।



दोनों ने सारी रात जगा दी ।

मामा का काफी दिनों से संशय था । 'सुंदर औरत अपनी नहीं है' कहकर फटाक-फटाक अपने ही मुंह पर मार लेता ।

कैकड़ियों के डेरे पर काफी शोरगुल हो गया । लोग जमा होने लगे । उजाला हो गया था ।

'अब यहां रहने में बुद्धिमानी नहीं है..।' बाप कह रहा था, 'इसे छोड़कर जाना ठीक नहीं, क्या करें ?' सुबह होने पर मारुतिमामा ने मामी की ओर देखकर कहा,

'अब हमारे रास्ते अलग-अलग हो गए । तू अब मुंह कहीं भी काला कर । मेरा कोई संबंध नहीं है । सारी इज्जत मिट्टी में मिला दी । सारा लुट चुका है । तू भी जा ।' कहकर वह अपना सामान समेटने लगा ।

पारुमामी उठकर चलने लगी । वह क्या करेगी, यह देखने मां-बाप भी पीछे-पीछे गए। हम तंबुओं में बैठ गए । सारे बड़े लोग उन दोनों के पीछे गए थे । मामा पारुमामी को नहीं ले गया । 'भोग, रांड, करम का भोग ।' कहता हुआ गाड़ी से रवाना हो गया ।

पारुमामी पागल-सी पांच-दस गांव हमारे साथ घूमी । खाना न खाती । कुछ न खाती। जब भी देखो रोती रहती । मां-बाप उसके साथ रूखा व्यवहार करते ।

एक रात वह वहाँ से निकल गई । कहाँ गई, किसी को नहीं मालूम । कुछ खोया-खोया -सा लगता । माँ उसे बहुत गालियाँ देती । क्या हुआ, कुछ पता न चलता। पर कुछ बुरा हो गया इतना ही मालूम हुआ ।

बाद में, काफी दिनों बाद कालूबाई के मेले में पारुमामी का बाप माँ से कह रहा था, 'वह मेरे पास आई थी । परंतु वह पागल हो गई थी और तड़पते-तड़पते मर गई । मरते समय भी बड़बड़ा रही थी । सिर्फ गालियाँ बकती रहती । मैं पंचों में मारुति को माफ नहीं कर सकती। मारुतिमामा ने दूसरी शादी कर ली थी । पर माँ कहती, भिखारी पतिव्रता-सी रहनी चाहिए। नौटंकी की नचनिया-सी नाज-नखरे नहीं करना चाहिए । नहीं तो पारु जैसा हाल होता है। और सही था । मैंने माँ को कभी कंघी से बाल बनाते नहीं देखा । बाप नियमित स्नान करता। उसे भगवान को पानी चढ़ाना होता । और यदि वह न नहाया हो तो मुझे नहाकर भगवान को पानी चढ़ाना पड़ता ।

कोकण के घर की ओर जाने की सब लोग तैयारी कर रहे थे । अपने पास का चावल बेचकर पैसा बना रहे थे । और दो-चार गांव घूमकर निकलना था । धान की क्यारियाँ खाली हो रही थीं । फसल कटाई के दिन खत्म हो रहे थे । ग्राहक पूछते न थे । सभी का ध्यान रास्तों पर लगा था । सबको वापस लौटना था ।

हमारे डेरे से काफी दूर एक मंदिर था । उस मंदिर की ओट में एक ज्योतिषी रहता था। भीख माँगने जैसा वह चिल्लाता । पर दिन में न चिल्लाता । एक हाथ में कंदील लेता और दूसरे हाथ में घंटी होती । घंटी बजाता आधी रात को वह बाहर निकलता । मद्दिम रोशनी में वह जिसको दिखता उसका दिन अच्छा बीतता । दिन अच्छा जाने के लिये जो इस भिखमंगे ज्योतिष से मिलता, उसे पैसे देता । किसान अनाज भी देते ।

यह 'इसे बरकत मिले' दुआएं देता आगे बढ़ जाता। बीच में ही भिखारियों-सा चिल्लाने लगता। इस जाति के भाग्य में बहुत-बहुत भटकन होती। हम कम से कम दो-चार दिन एक गाँव में रहते। इनका बहुत अलग था। ये नाथपंथी या ऐसा ही कुछ कहते। दिन उगते ही भीख माँगना बंद। किसी के देने पर भी न लेते। और एक रात से अधिक रहना भी नहीं।

यह भिखारी उसके चार-पांच बच्चे और पत्नी। उसे वह हमेशा रांड ही कहता। वह दोपहर को उस मंदिर के पास आया दूसरे दिन दोपहर में उस भिखारी ने काफी झोली भर लाई थी। अब दिन भर काम नहीं। फिर कहीं मछली पकड़ कहीं केकड़ा खोजता फिरता...चूल्हे के लिए लकड़ियाँ बटोरता। नहीं तो गांजा फूंकता बैठता। अब दूसरी रात को दूसरे गाँव जाना होता। पर इसे हरारत भर आई थी। बुखार से ग्रस्त था। पत्नी घबरा गयी थी। वह बाप के पास आई। हमारे तंबू से अंगारा लेकर गई। बाप ने उतारा बताया उसे डाला, पर कुछ उपयोग नहीं हुआ। बुखार कम न होता। सारे बच्चे चिंतित हो गए पर औरत बहुत धीरजवाली थी। उसे बाप ने जड़ी-बूटी की दवाई लाने को कहा और शाम होते-होते वह आई। मैं हमारे डेरे पर चूल्हे के पास पैर रखकर बैठा था। आँच से अच्छा लग रहा था। परंतु धुएँ से आँखों से धार बह निकलती थी...कच्ची लकड़ियां सुलगती नहीं थी, सिर्फ धुंआ उगलतीं।

इतने में भिखारिन भागते-भागते औषधि लेकर आई और अपने डेरे पर गई। वह पहले से जल रहा था। ऊपर से औरत दिन ढलने पर आई। बाबा फटाक से उठा बैठा, 'रांड। मवाली। तेरी मां की...कहां मैला खाने गई थी। कहकर उस पर टूट पड़ा। औरत ने बहुत धीरज के साथ उसे नीचे लिटाया और जड़ी-बूटी का रस उसके मुंह में डालने लगी। वह बूढ़ा कुछ न पीता, 'अरी रांड, अब संबंध ही क्या रहा ? उठो...उठो मेरे सामने से दूर हो जा। बुढ़ापे में नखरे सूझ रहे हैं तुझे, कहकर औषधि फेंक दी।

बाप चिंतित हो गया था। क्या हुआ पता ही न चलता।...बाप ने दवाई दी तो लेने को तैयार नहीं था।

'मर गया तो मुझे मर जाने दो। रांड ने मुंह पर कालिख पोत दी है।' कहकर चिल्लाया। तीसरे प्रहर का समय था। लोग इकट्ठा हो रहे थे। हमारा अच्छा था। हमें जो कुछ लगता अपनी भाषा में बोलते। ज्योतिषी का ऐसा नहीं था। वह मराठों की तरह बोलता। लोग हँसते। औरत उसकी काली-काली हो गई थी। मां ने उसे पूछा, तब उसने अपना मुंह खोला। वह बता रही थी। हमारे में दिन डूबने से पहले डेरे पर लौटना होता है। नहीं तो औरत बुरी चाल-चलन की समझी जाती है। सारी उम्र इनके साथ गुजारी। इसकी हड्डियां बज रही थी और आंखें फट रही थीं, इसलिए गई। इस भैय्या ने औषधि लाने को कहा तो ये मुझ पर संशय कर रहा है। क्या इसमें नखरे दिखाई देते हैं ?

उस औरत ने बच्चे लिए। चूल्हे में पानी झोंक दिया और पचापच थूंकी और निकल पड़ी। मां ने रोका, तब बोली, 'उसकी जाँघों में दम है तो दूसरी कर लेने दो। चार बच्चे मैं किसी भी तरह पाल लूंगी। कहकर झटके से उठकर निकल गई। अब बूढ़े के खोपड़ी में बात समझ में आई। वह सिर्फ जोर से चिल्लाने लगा, 'अरी, रांड किसके नीचे सोयी थी?



मुझे छोड़कर कहां चली ?' कहकर चिल्लाने लगा।

स्साला सब अजीब है। मैं सुनता बैठा था। तभी वह इससे चिपक रही थी तो वह खिल उठा था। अब वह निकल गई तो ये चिल्ला रहा है।

जैसे-जैसे रात बढ़ने लगी, बूढ़ा रोने लगा। बेचारी बूढ़ी और चार बच्चे वापस आ गए। अब उसका मिजाज उतर गया था। बुझाया चूल्हा, हमारे चूल्हे की आग से फिर सुलगाया। चार रोटियां थापी और बच्चे तथा बूढ़े को खिलायी। अब वह नरम पड़ गया था। चुपचाप खाना खाया और सबेरे उन्होंने अपना डेरा हिलाया। जाते समय बूढ़ा, बाप के पास आया। जाते समय बोला, 'तुम्हारी औषधि से ठीक हुआ। औरत बहुत अच्छी है। इसलिए खा रहा हूं। भैया फिर मुलाकात पर पहचान रखना। हम कोल्हापुर तरफ के हैं। हर साल आते है। कहकर निकल गया औरत और बच्चे साथ थे। एक बच्चे को कांधे पर उठाकर औरत आगे-आगे चल रही थी। और वह पीठ पर सारा सामान लादे पीछे-पीछे चल रहा था।

भादों में पेट भरने के लिऐ निकले। कैकाड़ी कार्तिक में जेजूरी में एकत्र होने लगते। कोई पूना से, कोई मावल से, कोई शिरवाला से या लोनदा की ओर से आते। सब जान-पहचान के मेहमान, संबंधी गले मिलते। आंख भर देखने का मौका जेजूरी में मिलता। शादी-ब्याह तय होते। सगाई भी होती। लड़कियों के बाप के भाव होते। मेरे श्याम का ब्याह मेरे लाल्या को दे, मेरे इल्या को दे।' इसी तरह चलता रहता।

रास्ते के किनारे डेरा जमाकर, भगवान के दर्शन कर, बेल-फूल चढ़ाकर प्रसाद उठाते। पैसे लेते। रिश्ते जोड़ते। सारी बिरादरी फसल के बाद आती। जेब गरम होती। दारू और मटन उड़ाते। मुफ्तखोर बड़ी संख्या में जमा हो जाते। मदारी के तंबू में कैकाड़ी न जाते और कैकाड़ी के डेरे पर मदारी न आते। किसी चीज को न छूते। मदारी कुछ भी खाते थे। बिल्लियां-बिलाव पकड़कर उसके पैर पकड़कर भूनते। भयंकर विचित्र गंध फैलती। सारे लोग नाक, मुँह पर हाथ रखते। और मदारी, बंदर वाले डेरे पर शोरगुल करते। हम सूअर का बंटवारा करते वैसा। सब भगवान को चढ़ाकर।

तीसरे प्रहर का समय होगा। बगड़ी फलटणकर हमारे डेरे पर आई थी। वह मेरे बाप की चचेरी-चचेरी बहन। भाई ने बहन को रोक लिया था। आप्पा, तात्या सिरया सारे संबंधी एकत्र थे। बहन का तंबू पास ही था। सच तो यह है कि वह अब मायके आई थी। उस दिन वह हमारे साथ रुकी, खाना खायी और सोयी। सुबह होते ही वस्या, शाम्या, लाल्या, नारूया उसके ये सारे बेटे हमारे डेरे पर, अपनी मां से मिलने आए। बाप ने मेहमाननवाजी की। बहन को चूड़ी दी। भोजन दिया। मां ने चोली के कपड़े को सिंदूर लगाया। भाभीजी इधर आइए कहकर आगे बढ़ी। तभी बगड़ी बिगड़ गई मैं क्या तेरी चूड़ी-चोली के लिए आई हूं? मेरा दरवाजा बंद हो गया है।' कहकर रोने लगी।

मुझे समझ न पड़ता कि क्या हो गया। मैं अपनी कमीज का कोना चबाता बोरे पर बैठकर देखते रहता। वहां से मां के पास जाकर बैठा। बगड़ी रो रही थी। मेरा रास्ता मत रोको मेरी दहलीज खुली रहने दे। ऐसा ही न जाने क्या-क्या कह रही थी। समी मां के पीछे धूल में खेल रही थी। बाप बगड़ी से कह रहा था।

'अरी बगड़ी क्या करूं बोल...तुझे बेटी नहीं। लक्ष्या से शादी कर दी होती। बगड़ी रो ही रही थी। वह कह रही थी, 'बापू, मेरे वश्या के लिए यह जो धूल में खेल रही इसे दे दे।'

बस, बाप संभाल गया। 'देखेंगे' कहा। परंतु बगड़ी चूड़ी-चोली न लेती। बाप उलझन में फंसा-सा चिंतित हो गया। आप्पा, तात्या, बाप दूसरी ओर गए। तीनों भाइयों ने सलाह की। समी, मैं, वश्या, लाल्या, धूल में खेलने में मग्न थे।

थोड़ी देर में मां ने समी को पुकारा। समी जिस स्थिति में थी वैसी ही लोगों के सामने चली गई। रिश्तेदार एकत्र हुये थे। बीच में एक पीतल की थाली में पान, सुपारी, शक्कर रखी थी। तात्या सबको पान-सुपारी बांट रहा था। मैंने हाथ आगे किया। उसने आंखें फाड़ीं और मैं पीछे हट गया। समी की हालत मजेदार थी। वह बगड़ी की गोद में बैठी थी। वश्या मां की गोद में बैठा था। दोनों के माथे पर सिंदूर लगाया था। वे दोनों अपने पास से उठ गए और उन्हें सब सिर पर उठाते हैं। इसलिए मैं तंग आ गया था। मैंने धीरे से लाल्या को इशारा किया। लाल्या लोगों को लांघता आया। किसी के पैर पर उसका पैर पड़ गया, इसलिए किसी ने उसके चूतड़ पर झापड़ जमा दी। वह रोते ही आया। मैं उससे भीड़ में 'क्या हो रहा है,' पूछा, वहीं से वह बोला, 'समी की शादी तय हो गई है। हमारे वश्या के साथ।' 'वश्या के साथ ?' मैंने फिर पूछा। तब हां कहा उसने। बस मैं रोने लगा। अब समी जाएगी। अपनी समी अब दे डालेंगे यह सोचकर। शाम की रोटियां तेल के साथ बनीं। समी की सगाई हो गई थी। बाप का पैर न रुकता। बगड़ी ने चूड़ी-चोली ले ली थी। रिश्तेदारों को सगाई का भोजन मिल गया था। चार-पांच दिन हम जेजूरी में थे। कितने ही लड़के-लड़कियों की शादियां तय हो चुकी थीं। अपनी भी ऐसी ही तय हो जाएगी। अपने लिए लड़कियां आती हैं। और बाप ना-ना क्या कहता है, यह मेरी समझ में न आता और मैं बाप पर चिढ़ता।

जेजूरी छोड़कर हम पेट पालते-पालते बाजरे की फसल तक खटाव की ओर पहुंच गए। खटाव में बहुत मेहमान। दो दिन रहकर पुसेगाव, बुध घूमते-घूमते हमारा डेरा पूना, पालवण, कुलकजाई, बुध, कलसकर की वाड़ी होते हुए बारह गांव घूम रहा था।

कोकण में जैसा जमता स्कूल जा रहा था। बाप मास्टर के हाथ-पैर पड़ता, मैं चार दिन स्कूल जाता। कोकणी भाषा अलग है, समझ में न आती। बाप तंग आ जाता। घर में झगड़ा-झंझट न हो इसलिए मैं स्कूल जाता। वैसे मास्टर यहां के न थे। बाप गांववालों को पहचानता। वैसा ही वह इसे अपना वतन कहता। मास्टर को डलिया, टोकरी, सूपा मुफ्त देता। मैं स्कूल में बैठा रहता।

देखते-देखते होली पास आ गई और बाप ने कटनी समेटी। सामान गधे पर लादा और निरगुड़ी रवाना हो गए। आकुबा मास्टर ने बाजारवालों की मार्फत संदेशा भेजा था। लक्ष्या की परीक्षा पास आ गई है। बापू को बताओ - बाप ने संदेशा को गंभीरता से लिया। गांव की स्कूल, बच्चे, मास्टर - सब पहचान के। उन्हें डरता नहीं था। और अब मास्टर का डर टूट रहा था। महीना-डेढ़-महीना निरगुड़ी के स्कूल में जा रहा था। और एक दिन आकुबा



मास्टर ने पहली की परीक्षा ली। मैं पढ़-लिख न सकता। एक-दो किसी तरह लिख सका होगा...मैं कुछ पास नहीं हो सकूंगा, ऐसा मुझे लगता। पर चैत्र के मेले के पहले ही बाप चौपाल से घर आया। मुझे उठा लिया। बाप कभी इस तरह मुझसे व्यवहार न करता। मुझे कांधे तक उसने उठा लिया। और सीधे घर में भगवान के सामने उतारा। उसने हाथ जोड़े। गुलाल लगाया।

क्या हो रहा था, पता नहीं। बाप भगवान के सामने रो रहा था। उसकी आंखों से धारा बह चली थी। मेरी कुछ समझ में न आता। बाप रो रहा है देखकर मैं भी रोने लगा। हम बाप-बेटे को रोता देखकर छोटे बच्चे भी रोने लगे। मां घर में नहीं थी। नहीं तो वह भी रोती होती। बाप ने बच्चों की ओर देखा। बच्चे रोते हैं, यह ध्यान में आते ही वह झल्लाया,

'अरे, कोई मर गया है, रांड के रोते क्यों हो ?'

मेरा रोना रुक गया था। बाप बोला,

'अरे मेरा बेटा पास हो गया है, पास।' कहकर उसने मुझे फिर कांधे तक उठा लिया। गाल का चुंबन लिया। और सारे दिन जो मिलता, उससे कहता-फिरता 'मेरा बेटा पास हो गया। अरे साल भर मेहनत ली है।'

मां ने तो मुझे दिन भर अपनी आंखों के सामने रखा। दीवाली में भी कोई इतना लाड़ न करता। सारे दिन का मान मुझे मिला। मन के मन में गुदगुदी होती। मुझे तो कुछ भी न आता पर मुझे लगता अब मैं मास्टर हो सकता हूं। मुझे पढ़ाई करनी चाहिए इसलिए सारी दीवारें लकीरों से भर दी थीं।

बैसाख आने पर बाप को काम-धंधा न होता। वह बैंड का ढोल बजाता। आप्पा क्लरेनेट, तात्या मंजीरे और मैं घुंघरू बजाता। चार लोग घर के ही थे। किसी की सगाई, तिलक, छठी का कार्यक्रम हम बजाते थे। आगे दत्तबा के बैंड में हम सब गए। चैत्र की कालूबाई का मेला हो गया तभी कैकाड़ियों के शरीर में ताल-ठेका और अलग- अलग तरह के गानों के रेकार्ड की पिन घूमने लगती। रिहर्सल करते। दत्तू के सामने बजाता। सबको बताता। बाकी के चेहरे बाजेवाले के पीछे बजाते। वही-वही गाने। वही-वही राग होते। बाप ठेका पकड़ता। मैं घुंघरू बजाता। रात-रात भर यह चलता रहता। थककर पता नहीं कब मैं सो जाता। शादी में स्पर्धा होने पर हम बजाने का रियाज करते। होंठ में सूजन आने तक। बाप की अंगुलियों की चमड़ी उधड़ जाती। घुंघरू टूट हाथ में फफोले उभर आते। परंतु बजाने की धुन में कुछ पता न चलता। हम जब रियाज करने लगते तो गांव के लड़के यूं ही भीड़ करते। कोई उन पर चिढ़ता पर वे न हिलते। रियाज हो जो पर मैं उन लड़कों के साथ खेलता। सब 'नचनिया आया, नचनिया आया' कहकर चिढ़ाते। 'आओ नचनिया...ये बैंडवाला' कहकर मेरे पीछे दौड़ते। मैं तंग आ जाता। ....लड़के मेरा पीछा न छोड़ते। फिर मैं चिढ़ जाता। मां-बहन की गालियां देता। वे भी गालियां देते। मारा-मारी होती। अधिक मार मैं ही खाता। पर घर पर कुछ न बताता। नहीं तो फिर बाप की मार खाना पड़ती।

गर्मी के दिन थे। धूप बहुत होती। हम नीम के नीचे नहीं तो इमली के नीचे गोटियां, गुल्ली-डंडा खेलते। लड़के शोरगुल करते। औरतें दोपहर को गालियां देतीं। नींद खराब की

इसलिए । कुंडल्या बोला, 'हम तैरने जाएंगे । आते क्या ?'

मैं तैरना नहीं जानता था । मैं रुक गया । तब सारे बच्चे पीछे आ गए । मेरी दोस्ती करने कुंडल्या आगे आया । मैं मान गया । मैंने घर नहीं बताया । नहीं तो न जाने देते । सीधे लड़कों के साथ कुएं में तैरने के लिए चला गया । मैं कुएं के किनारे जगत पर बैठा । सारे लड़के तैर रहे थे । छलांग लगा रहे थे । कुंडल्या, बाल्या कपड़े उतार कर नंगे होकर छलांग लगा रहे थे ।

कुंडल्या ने पानी से ही भान्या को इशारा किया, पता नहीं क्या-क्या कुएं में बोलते रहे...बाल्या कुएं से बाहर आया । मूतने के लिए जाने- सा गया और मैं कुएं में झांक रहा हूं यह देखकर कपड़ों समेत मुझे कुएं में धकेल दिया । मैं तैर नहीं सकता था मैं पानी में गया । ऊपर आया । नाक-मुंह में पानी घुस रहा था । ....घुटन महसूस हो रही थी । चिल्ला रहा था । पर कुछ न समझता । नीचे-ऊपर हो रहा था । कुंडल्या, बाल्या, भान्या दांत निपोर कर हँस रहे थे । अब मैं मर जाऊंगा, यह सोचकर बहुत डर गया था । काफी नीचे-ऊपर होने के बाद कुंडल्या ने पानी में छलांग लगाई । मेरे पैर पकड़ लिए । हाथ- पैर हिल रहे थे । मैं किसी तरह सीढ़ी तक आया । सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहा था । इतने में भाग्या ने फिर पानी में धकेल दिया । मैं फिर डूबने लगा । फिर कुंडल्या ने निकाला । मैं जोर से रोने लगा था । अपने को ये लड़के जान से मार डालेंगे, ऐसा लगता । मुझे इस तरह चार-पांच बार पानी में धकेल दिया इसलिए ईंट पकड़कर धीरे-धीरे ऊपर आया । घर की लकड़ी को चिपक कर चिल्लाया । तब लड़के दौड़कर आए, 'चिल्लाओ मत । नहीं तो, फिर पानी में धकेल देंगे। मुझे वे धमकाने लगे, मैं चुप हो गया । मेरी चड्डी, अंडरवियर भीग गई थी । वैसा ही गीले कपड़ों से भाग खड़ा हुआ । भागते-चिल्लाते घर का रास्ता पकड़ा ।

धूप ढल गई थी । नीम के चबूतरे पर मां राह देख रही थी । मां को देखते ही रोना अपने आप बंद हो गया । इस घटना की कोई बात घर नहीं बताना है...कुंडल्या ने धमकी दे रखी थी । गीले कपड़े देखकर मां पीटेगी, इसलिए उसे छोड़कर दूसरी ओर से घर की ओर चल पड़ा । मां जान गई थी ।

'अरे शैतान कहां चला...तेरी हरकत मैंने देख ली है, कहती आई ।' मैं भागा । आगे मैं और पीछे मां दौड़ रही थी । मुझे पकड़ा । हाथ दबोचा । चार-पांच तमाचे कनपटी पर रसीद दिए । 'तैरने जाता है...?' कहकर पीट रही थी । कपड़े निकाल रही थी । 'तेरे बाप को शाम को बताकर तुझे टंगवाया नहीं तो मेरा नाम नहीं ।' कहकर मुझे धमकाने लगी। घर लाया तो पहले से डरा मैं और डरने लगा । पर मां ने बाप को कुछ भी नहीं बताया था ।

गांव में किसी की शादी होती तो गरीब-भिखारियों के बीच भगदड़ मच जाती । बीच के मुहल्ले के तानाजी पाटिल की शादी ऐसी ही चर्चित रही । बड़ों की शादी होती तो मां के लिए काम ही काम होता । सारा मंड़प और आसपास की जगह लीपती । कचरा जमा करती । मैं उसकी मदद करता । इस दिन घर में चूल्हा न जलता । दिन भर मुंह का पानी पीते बैठते । कब पंगत बैठेगी इसी सोच में रहते । पूरा ध्यान उधर ही होता । कोई कैकाड़ियों



की बस्ती में बात फैला देता कि खाने की पंगत बैठ गई है । हमारे हाथ के अल्युमिनियम की थाली, कटोरी उछालते हम भागते-दौड़ते शादीवाले घर की ओर पहुंचते । शादीवाले के घर लाने पर पंगत के कोई चिन्ह दिखाई न देते । फिर सिर झुकाए लौट आते । अंततः पंगत बैठती । हम कचरे के ढेर के पास अलग पंगत में बैठते । हमारी बिरादरी का घर होने पर हम मालिक की तरह आगे-आगे होते हमारी बिरादरी का घर न होने पर दूसरे आगे होते । परोसने वाले परोसते आते । हम शोरगुल करते । परोसनेवाला बिना परोसे ही निकल जाता । बहुत शोरगुल हुआ तो 'इनके मां की ऐसी-तैसी' कहकर दौड़ा आता । हमारी ठेल-मठेल मचती । हम भागने लगते । उस आदमी के जाते ही फिर आ जाते । 'भैया परोस रे, बाबा परोस रे' कहते रहते । प्रौढ़ व्यक्ति आकर परोसता फिर थाली में खीर, लड्डू, भात जो बचाता उतना ही होतें और फिर परोसेंगे यह सोचकर बैठे रहते । फिर कोई गालियां देता ।

सारा ध्यान पंगत उठने पर होता । पंगत अचानक उठती । पत्तलों का ढेर जाता । हम कूद पड़ते । पत्तलों पर हम टूट पड़ते । जो भी मिलता झोली में डाल लेते । कुत्तों द्वारा पत्तलें चाटने से पहले हम अपना काम निपटा डालते । जमा किया जूठन झोली में बांधकर आपस में गाली-गलौच कर वापस लौटते ।

दो दिन वही चलता । दूसरे दिन बची दाल, भात मांगने जाते । खीर, भात धूप में सुखाते। अच्छी तरह सूखाकर कुरमुरा हो जाता तो उसे दो-तीन दिन तक खाते । शादी-ब्याह के समय कई बार घर में खाना न बनता । सबको निमंत्रण होते पर हमें क्यों नहीं बुलाते, यह विचार कई बार दिमाग में आता । परंतु उत्तर न मिलता । जो मिलता वही खाते । मिलेगा तब काम करना । ऐसा करते आषाढ़ कब समाप्त हो गया पता ही नहीं चला । मां-बाप हमेशा खटते रहते । पैसा-पैसा गांठ में बांधकर रखते । समी की शादी तय हो चुकी थी । फलटणकर ने तकाजा शुरू कर दिया । शादी-ब्याह खत्म हुए....। सारे कैकाड़ी खाली थे । और बाप ने शादी का मुहूर्त निकाला ।

शादी पास आ गई । सारे नाते-रिश्ते के लोग जमा होने लगे । गधों का काफिला आने लगा । सारा कैकाड़ी मुहल्ला लोगों से खचाखच भर गया । शादी के लिए आठ दिन बचे थे, फलटणकर के बाराती आकर बैठे थे । मेहमानों का खाना-पीना शुरू हो गया था ।

देखते-देखते हल्दी लगी । हल्दी लगते समय काफी विवाद हुआ । हमारा मामा अड़ बैठा था । शादी के अवसर की पूजा के सामान की रखने की जगह के लिए मामा के सलाह के लिए काम रुक गया था । चौदह रुपये मामा की ओर से रखे जाते थे । यह रखने के बाद ही हल्दी लग सकती है । ऐसी प्रथा थी ।

हल्दी लगी । शादी का दिन आया । सुबह गुड़ की डली ले जाने की रस्म बाजे के साथ लेकर गए ।

और दिन उगकर दो-तीन घंटे हुए होंगे, फलटणकर ग्यारह पसेरी अनाज बाजे के साथ लेकर मंडप में आए । दूल्हे की ओर के लोगों ने दो रुपये और अनाज - गेहूं, चावल, दाल लाकर रखा ।

पंच सामने आए । उन्होंने दूल्हे के मामा को, दुल्हन के मामा को, दूल्हे के बाप से, दुल्हन के बाप से काटनमाड़ा, आवनमाड़ा, फड़तनमाड़ा कहते-कहते पांच रुपये से पचास रुपये तक पैसे लिये । उसे पंचों ने अपने पास रखे ।

हल्दी के दिन दूल्हे की ओर से तेल मसाला से बना भोजन दिया । शादी के दिन दुल्हन की ओर से अनाज आने के बाद भोजन देना होता । साड़ियों के दिन फिर दूल्हे की ओर से भोजन होता । सारा दिन समी मौर बांधे रहती । उसे साड़ी पहनाई थी । वह उसे संभाल न पाती । बांध-बांधकर पहनायी साड़ी उसके पैरों में अटकती रहती । मुझे बहन के भाई को दिया जाने वाला सम्मान दिया गया था । चारों ओर इतराता घूमता । सबको नए कपड़े पहनाए गए थे । आप्पा, तात्या, बाप जिसे दारू बीड़ी, पान-सुपारी लगती उसे देते रहते । इमली और नीम के पेड़ों के नीचे लोग उल्टियां करते...दण्ड स्वरुप उन्हें रिश्वत देनी पड़ती। पंचों की मौज थी । किसी का झगड़ा-टंटा होता तो वहीं पंचायत बैठ जाती । पैसे वसूल करते और दारू में गंवाते ।

शादी का समय आ गया तब भी देव-पूजा नहीं हुई थी । सारे लोग पीकर मस्त हो गए थे । मां की जान जल रही थी । परन्तु बाप भी होश में कहां था । अंततः देव-पूजा के लिए और दूल्हा एक साथ मंदिर गए । मारुति के मंदिर के सामने दूल्हे को कांधे पर उठाना होता। बाहर से ही दर्शन लेकर कांधे पर उठाकर ही मंडप में लाया । अक्षत् बांटे । ब्राह्मण मंडप के बाहर खड़ा रहकर बड़बड़ा रहा था । लोग चाल फेंक रहे थे । ब्राह्मण ने इशारा किया तब बैंड बजने लगा । लोगों ने तालियां बजायीं । तब तक तीसरा प्रहर ढल चुका था ।

माथे पर मौर बांधकर समी और वश्या बुजुर्गों की तरह चुपचाप बैठे थे । समी मुझे पास बैठाती । 'दादा बहुत भूख लगी है । ....उपवास कब खत्म करना है ?' मैं किसी प्रौढ़-सा उसे समझाकर मां के पास गया । शादी के बाद वस्त्र देने की रस्म पूरी होने से पहले उसे कुछ भी नहीं खाना था । इस रस्म को काफी रात हो चुकी थी । उसने कब खाना खाया, किसे मालूम । लेकिन मैंने तो पंगत में खाना खा लिया था । पांच-पांच दस-दस लोग एक-एक बड़ी थाली में रोटी का चूरा बनाकर खा रहे थे । सारे लोग बड़बड़ा रहे थे, दुर्गंध आ रही थी । शिरप्या तो लगातार उल्टियाँ कर रहा था । फिर भी बड़बड़ाता रहता, 'लाल्या को खूप पढ़ाऊंगा । जो भी होगा सब बेच दूंगा पर लाल्या को पढ़ाऊंगा ।' ऐसा ही बड़बड़ाता रहता ।

बाप कहता, 'अरे शिरपा, पढ़ाओ बेटे, पढ़ाओ । मेरा शेर इस साल पास हो गया है। अब कागज-पत्तर पढ़ने लगेगा ।

दोनों मंडप के कोने से टिककर बातें कर रहे थे । खाने वाले खाना खा रहे थे । आप्पा, तात्या देखभाल कर रहे थे । और बाप मस्त हो गया था । वह बता रहा था, 'दगड्या महार का पत्र आया तो वह काका के पास गया, तो काका ने वह पत्र लिया और पढ़कर एक ओर रख दिया । दगड्या से क्या बोला मालूम है - दगड्या, इतनी लकड़िया फोड़ दे । दगड्या ने सारी लकड़ियां फोड़ दी तब कहीं उसने पत्र पढ़ सुनाया । और पत्र में क्या था मालूम है, उसकी मौसी मरने की सूचना थी । फिर चिल्लाते-रोते घर आया ।



शिरपा हिचकियां देते सुन रहा था । बाप ने आगे कहा, 'हमारे दहिगांवकर के यहां से चिट्ठी आयी थी इसलिए मैं रावसाहब धनी के घर गया । तब मुझे धनी ने गट्ठा भर घास कटवा लिया है । तब चिट्ठी पढ़ी । बहुत खराब होते हैं ये कुनबी लोग । तू लाल्या को पढ़ा, झांट मारी । मेरा बाप लगातार कुछ न कुछ इसी तरह सुना रहा था । कभी-कभी गालियां भी देता । सुनते-सुनते एक बोरे पर कब नींद लग गई पता ही नहीं चला ।

दूसरे दिन पंचों के पास जमे पैसे से दारू लाई गई । उसकी पार्टी थी । दारू की बाढ़ आ गई थी । चावल से कंकड चुनने-सा बिन पिया आदमी खोजना पड़ता । इतना पैसा लुटाया पर मां की मां के लिए बगड़ी ने कोई साड़ी नहीं लाई । दूसरे या तीसरे दिन बारात लौट गई और बारात के साथ समी भी गई, तब मैं न जाने कितनी देर तक इमली के पेड़ के नीचे फूट-फूटकर रोता रहा ।

अब खाने वाला एक मुंह कम हो गया था । बरसात अर्थात प्राणों पर बन आती । फिर बाप ने शादी में खूब धूमधाम से खर्च किया था । कर्ज का ढेर सिर पर था । घर में एक दाना न होता । मां-बाप जो काम मिलता करते । मुट्ठी भर मिर्ची के लिए दिन भर मिर्च तोड़ते रहते । आते समय सूरन लाते । उसे उबालकर खाते । मांगकर लायी जूठन खाते । बाप बेचैन हो जाता । पर स्लेट-पुस्तक न खरीद पाता । आकुबा मास्टर ने किसी की पुरानी पुस्तकें दी थीं । जो होता खाते कुछ न होता तो नमक डालकर पानी पीता और स्कूल जाता।

मां-बाप के साथ आज यहां...कल वहां घूमते-घूमते किसी तरह चौथी पास हो गया । अब मुझे सब समझने लगा था । मां-बाप के साथ घूमता तो स्कूल का नुकसान होता । इसलिए मैं मां से हमेशा जिद करता । मैं अकेला ही घर पर रुकूंगा । आप लोग जाओ, पेट भरने। बाप को यह न जंचता । अंत में रामभाऊ ने बाप से कहा,

'तू इसे मुझ पर छोड़ दे । मैं इसका खयाल रखूंगा । जो भी जरूरत होगी, मैं देखूंगा।' इतना कहने पर बाप तैयार हो गया ।

मां, बाप पेट भरने निकल पड़े । मेरे लिए ज्वार, नमक-मिर्च छोड़ गए । गांव को लोगों को बताया । मुझे जोरदार ताकीद दी, 'घर में कोई नहीं है...लड़कों के साथ झगड़ा झंझट मत करना...नहीं तो मार डालेंगे । बोल करेगा...? मां निरंतर बोल रही थी । मुझे रोना आता, पर काबू कर लेता । रामभाऊ का बड़ा सहारा होता । मां-बाप ने मन कठोर कर लिया...और पेट भरने चल पड़े ।

मैं नियमित स्कूल जाता । स्कूल में कांबले मास्टर था । स्कूल छूटने पर भी कांबले मास्टर के साथ बोलता रहता । वे स्वयं पकाकर खाते । मुझे भी आधी रोटी मिल जाती । कभी-कभी घर में ज्वार की रोटी पकाता । रोटी पकाने की इच्छा न होती । पर भूख लगने पर बनाता । कई बार तो बाहर ही कुछ व्यवस्था करता । बाप किसी से चिट्ठी लिखवाता । उसे स्कूल में नहीं तो घर पढ़ता । स्कूल में ही कांबले मास्टर के साथ सो जाता । स्कूल में सोने पर पढ़ाई होती । मां-बाप, समी, लाली, पुष्पी, किसन्या की याद हमेशा आती । नींद में बड़बड़ा उठता । दिन भर स्कूल होती । रामभाऊ हमेशा मेरा खयाल रखते । मेरे लिए गांव के लड़कों को डांटते । इसलिए मुझसे झगड़ता परंतु शाम को पढ़ाई का समय आने पर पता नहीं कौन

चिमनी से मिट्टी का तेल निकालकर उसमें पेशाब कर देता । एक तो पैसा न होता । मिट्टी का तेल चले जाने पर कांबले मास्टर कंदील देते । उनका सारा काम करता । वे ध्यान रखते। कोई मारता-पीटता तो उनका सहारा लगता ।

महीने दो महीने में बाप ज्वार, बाजरी आदि लेकर आता । जाते समय पैसे देता ।

दुकानदार उधार देने की बिनती करता । मास्टर के पैर पड़ता । रामभाऊ तो भगवान-सा लगता । वे बाप को पता नहीं क्या-क्या बताते । बाप खुश हो जाता । और वापस चला जाता । अब खर्च भी काफी होता । उसे संभालना मुश्किल होता । पर मुझे कुछ न कहता। दोपहर की छुट्टी में लड़के रोटी खाने घर जाते । मैं, मांग का बब्या और रामुशी का महाद्या गांव में जाते । गांव में बाग में जाते । गांव के चारों ओर नहरवाली खेती थी । केले के बगीचे, गन्ने के खेत, पपीते, मूंगफली और न जाने क्या-क्या होता । इधर-उधर देखते और एक-एक कर गन्ने के खेत में घुस जाते । पत्ता तक न हिलने देते । चुपचाप पेट भर खाते । एक-एक कर बाहर निकलते । तब तक स्कूल फिर लग जाती । मास्टर चिल्लाता । छड़ी मारता। सीधी तरह मार खा लेता । कुछ न बोलते । केले तो रोज खाना ही है । गदराये केले तोड़ते, तब तक एक गढ्ढा खोदता । दूसरा गीले पत्ते जमा करता और केले वहां गाड़ देते और निशान के लिए वहां पत्थर रख देते दो-तीन दिन में वह गढ़ा खोदते । केले खाते । नए केले फिर गाड़ते । इस तरह तीनों की हम टोली थी । रोज दोपहर होने पर अदल-बदलकर पैर अपने आप खेतों की ओर मुड़ जाते ।

ऐसे ही एक बार खाने के चक्कर में केले के बगीचे में घुसा था । हमारा काम जोर से चालू था इतने में एक आफत आई । एक औरत और एक आदमी बटन लगाते फुसफुसाते सामने खड़े थे । बब्या और महाद्या आहट पाते ही वह भाग गए । मुझे भूख लगी थी, मैं केला लेने के लिए नीचे झुका और उसने मेरे चूतड़ पर एक लात जमाई । मैं लड़खड़ाकर गिर गया । उसने पूछा, दूसरे और लड़के कौन थे....खूब पीटा । घर में कोई नहीं है, बताने पर मास्टर के पास लेकर गए । मैं शांत हो गया था । आफत मैंने ही मोल ली थी । मास्टर ने उसका गुस्सा शांत किया । मुझे रूल की दो-चार मार पड़ी । पर वह वहीं निपट गया ।

गड़बड़-गल्तियां बहुत करता । एक दिन भी बिना मार का बीता हो, ऐसा न होता । मां कहती 'कुत्ते के जीवन का मूल्य होता है, पर तेरे जीवन का मूल्य नहीं है ।' यह याद आने पर ठीक से रहने का तय करता । पर फिर उसी रास्ते पर निकल जाता ।

होली करीब आने पर आठ-पंद्रह दिन के भीतर कैकाड़ी मुहल्ले में लोगों का आना शुरू होता । लोग आने लगते । गोबर लगे ताले खुलने लगते । दरवाजे खुल जाते । टोकरी, डलिया, सूप बुनते बैठते । सबके लिए एक-एक गांव बँटा होता । जिसे जो गांव दिया जाता, उसे उसी गांव जाना पड़ता, दूसरा वहां न जाता । वहां चला गया तो खून छिटक जाता । बहुत मार-काट मचती । रिश्तेदार उसका बहिष्कार करते । उसे साथ खाना न खाने देते । उसके शादी-ब्याह में न जाते । उसकी मय्यत में भी न जाते । ऐसा नियम था । सद्या के घर का इसी तरह बहिष्कार किया गया । वह भीतर ही भीतर घुटता, झगड़े करता और वे विवाद पंचों के सामने आते । कोई औरत छिनाल निकली तो उस घर का भी बहिष्कार किया जाता।



बहिष्कृत होने पर वह घर गांव छोड़ देता । ऐसे कितने ही लोग गांव छोड़ देते । शाम का झुरमुट उतरने से पहले औरत घर आ जानी चाहिए । अन्यथा पति उसे घर में न आने देता। उसे अपने बाप के पास जाना पड़ता । उसे कोई सहारा न देता । बाप उसे लेकर पंचों के बीच आता । पंचों के निर्णय से जो सजा मिलती, भोगनी पड़ती । फिर वह पति के साथ रह सकती थी । एक-एक औरत चार-चार शादियाँ करती । शादी एक औरत से होती । उसे तलाक दिया कहते थे और फिर शादी करते, ऐसा भी होता ।

हमारी गजरा कैकाड़ीन ऐसी ही थी । उसने लकड़ियों का गट्ठर लाकर रखा था । लकड़ियों का गट्ठर खोलकर उसने पेट में चार कौर डाले थे । उसे बांस के चार किवाड़ के लिए ग्राहक मिल गया था । यही सोच कर वह बांस की फांके चीर रही थी । उतने में विठू नाई वहां आया और बोला,

'गजराबाई, मेरे मुर्गे को डालती है या नहीं । अरी, तेरे किवाड़ बहुत अच्छे हैं, इसलिए कहता हूं । मेरा मुर्गा भी ढाँप ले ।'

गजरा हँसी और बोली,

'अरे कंगाल । पहले जेब में हाथ डालकर देख ले । नहीं तो, कालर तो खड़ी है, पर जेब में झांट तक नहीं है । कहीं ऐसा न हो ।' दोनों काफी देर तक बातें करते बैठे थे । दोपहर की धूप उतर आई थी । हम बच्चे नीम के पेड़ के नीचे खेलकर थक गए थे । इसलिए पानी पीने गजरा के मनस्या के साथ उसके घर गए । पानी ढुलकाया और बाहर निकले । बाहर मां खड़ी थी । मैं चौंका और उससे डर गया था ।

'रांड के घड़े से पानी पीता है । इज्जत क्या गिरवी रख दी है ?' कहते हुए एक तमाचा मुंह पर पड़ा । मैं लड़खड़ा गया पर बोलने की हिम्मत नहीं हुई ।

हमारी मां बताती,

'गजरी की दहलीज कभी मत चढ़ना । अब उस रांड का मुंह भी मत देखना ।'

वैसे गजरा देखने में अच्छी थी । थोड़ी थुलथुली हो चली थी । ऊंची थी । सात बच्चों की मां ।

मां कहती,

'पति जीवित था, पर गोबर गणेश-सा बैठा रहता । और यह रांड सारे गांव में घूमती फिरती । सात बच्चे सात लोगों से निकाले । उन पर बहिष्कार है । जात-बिरादरी उसे पंगत में नहीं बिठाती ।'

मुझे यह सब न समझता, पर उसके साथ जाने पर वह रास्ते में मुझे यह सब बताती। गजरी के साथ न खेलने की वह रट लगाती । उसके बच्चे हमारे में से ही थे । परंतु उनका किसी के साथ न बनता । सारी कैकाड़ी बस्ती एक ओर यह परिवार दूसरी ओर । मय्यत के समय भी कोई न जाता । गजरी के बेटे जवान और हट्टे कट्टे थे । पर जात- बिरादरी के बारे में हाथ मलते रह जाते । मां का चाल-चलन वे जानते । परंतु बाप जाने के बाद उसने सभी को यह धंधा करके पाला-पोसा । सबको लगता कि मां को छोड़कर रहें पर लोक - लाज से लड़के चुप बैठे रहते । एक रात ऐसा ही शोरगुल हुआ । हमने बाहर निकल कर

देखा क्या है कि गजरी के घर के सामने मार-पिटाई चल रही है। पहले लगा कि यह भाई-भाई का झगड़ा होगा। ये क्या बड़ी बात है, यह तो रोज ही चलता रहता है। पर कुछ देर बाद मालूम हुआ, भाई-भाई के झगड़े नहीं हैं। गजरी बाहर सोयी थी। उसके पास उसकी छोटी बहू अपने बच्चे को लेकर सोई थी। बेटा दूसरे गांव गया और यह सद्या भड़ुआ घात लगाकर बैठा था। सद्या गांव का खुला सांड। ऊपर के मुहल्ले के पाटिल का बेटा। गजरी के पास हमेशा आकर बैठता। बैठते-बैठते सास की बजाय बहू दिल में उतर गई। परंतु बिचारी बहू के ध्यान में यह सब नहीं आया। वह सास के पास सोयी और यह आफत आई। सद्या ने सास को छोड़ा और इसके बिस्तर में घुस गया। वह चिल्लायी, तब शोरगुल हुआ। तब उसके दूसरे देवरों ने सद्या को पीटना शुरू किया था। सारी कैकाड़ी बस्ती जमा हो गई थी। पर कौन छुड़ाता। सारे गांव के लोग इकट्ठा हुए थे और उन्होंने झगड़ा छुड़ाया था।

भीड़ छँटने लगी और झगड़ा मिट गया। इसलिए मैं सोने घर गया तो थोड़ी देर बाद फिर शोरगुल हुआ। मां ने घर से गालियां दीं। पर मैं बाहर आ गया। वहां हमारी भाषा में सद्या के लिए अपनी मां को गालियां दे रहे थे। एक तो आंखों से आग उगलता मां को पीट रहा था। मां चिल्ला रही थी और बेटा 'तुझे जान से मार डालूंगा, तभी यह खुजली ठीक होगी', कहकर टूट पड़ता। बहुएं भी पीट रही थीं। बिचारी गजरी अब बचेगी नहीं। मैं मन ही मन उसके बेटों को गालियां दे रहा था और ये बेटे अपनी मां को जोर-जोर से गालियां दे रहे थे। अंत में तो मझले बेटे ने उसका झोंटा पकड़कर घसीटते बाहर लाया और बड़ा-सा पत्थर उसके सिर मारने ही वाला था कि इतने में उसके पीछे जो खड़ा था उसने उसे धक्का दिया। इसलिए निशाना चूक गया। नहीं तो...नहीं तो गजरी मर गयी होती।

तुझे सारा गांव कम पड़ता है। मां है या कसाई ? हमें पैदा करते ही गला दबाकर क्यों नहीं मार डाला ? कम से कम इज्जत इस तरह खुले आम नीलाम तो न होती। तुम्हारे कारण बिरादरी से बाहर हुये। कोई बेटी नहीं देता। कोई भी पास बैठने तक नहीं देता।'

सारे लड़के रात भर चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। गजरी सिसकते रोती रही। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं था। सारी कैकाड़ी बस्ती रात भर जाग रही थी। पर कोई भी घर से निकलकर न तो बाहर आया और न ही पूछताछ की। ऐसा क्यों ? गजरी ऐसी क्या बुरी थी। मुझे कुछ न समझता पर वह बदचलन है उसी के बेटे उसे पीटते हैं। वह कुछ बुरा काम करती होगी। ऐसा सोचकर मैं अपने आपको समझा लेता।

इस घर पर सबका इतना भयंकर बहिष्कार था कि गजरी के बेटों की शादी के लिए कोई लड़कियां न देता। ऊपर से जवान बेटे किसी के भी साथ मार-पिटाई करते। गांव के लोग भी उन्हें फूटी आंखों देखना न चाहते। किसी के खेत पर जाने की सुविधा न थी। भीतर से जाति का बहिष्कार। गांव में किसी के यहां भी चोरी होती, किसी का कोई काटकर ले जाता तब आरोप इन्हीं पर आता। पहले तलाशी इन्हीं के घर की होती, फिर दूसरे के घर की। एक बार ऐसा ही हुआ। नीचे के मुहल्ले के नामदेव पाटिल के कुएं से इंजिन का सारा सामान रात में किसी ने चुरा लिया। नामदेव पाटिल फलटन गया और पुलिस लेकर आया। पुलिस की पिंजरेवाली गाड़ी आने पर गांव के मांग, महार और कैकाड़ियों की गांड



में कांटे उभर आते। परत्या, रामुश्या ने सुराग निकाला। लेकिन वह कैकाड़ी-मुहल्ले की ओर आया। हमारे आंगन के आगे उसे कुछ दिखाई न देता। बस माँ-बाप, आप्पा, तात्या, नानी सबको पुलिस खोद-खोदकर पूछने लगी। पर कुछ पता न लगने पर गजरी के दरवाजे पर जाकर रुकी। पुलिस ने घर की तलाशी ली। घर में कुछ नहीं मिला। पुलिस मां-बहन की गालियां बकने लगी। गजरी और उसके बेटे जी जान से बताने लगे। लेकिन पाटिल बोला, 'इनके मां के भोसड़े में पैर। इनके सिवा यह काम कोई नही कर सकता।' बस पुलिस ने चार-पांच जवान लड़कों को पिंजरे में डाल दिया। गजरी और बहुओं ने हाथ-पैर पड़ना शुरू किया। रोने लगीं। परंतु पुलिस द्वारा दोनों को दो-दो हाथ जमाने पर वे चुप हो गयीं। गाड़ी वापस चली गई थी।

बाद में इनके लिए कोई जमानतदार नहीं हुआ। पुलिस रोज मार रही थी। और ये रोज एक का नाम लेते, उसे पुलिस पकड़कर ले जाती। मार के डर से लोग किसी का भी नाम ले लेते। पर इंजिन का पता नहीं चला। बाद में पता चला कि पाटिल के भाई-बिरादरी वाले ने, जिसकी पाटिल से दुश्मनी थी, इंजिन वहां से उठाकर दूसरे के कुएँ में डाल दिया था। परंतु मार खा-खाकर गजरी के बेटे फूल गए थे। उसे सजा भी हुई, पर बेटे छूट आए तब से वे लोगों के साथ कभी नहीं बैठे। सद्या ने गांव छोड़ दिया, हमेशा-हमेशा के लिए। बाकी दूसरे भाइयों ने भी अपने-अपने घर-परिवार दूसरी ओर बसाये। घर में सिर्फ गजरी अकेली रह गयी थी। बुढ़ापे में पेट के लिए थोड़ा- बहुत कमा लेती थी। जो भी मिलता उसे अपने घर आने देती। बच्चों ने उसे कब का छोड़ दिया था। बच्चों को दंड देकर उन्हें फिर जाति में शामिल कर लिया गया था। सिर्फ अकेली गजरी का बहिष्कार था। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।

बेचने जाते समय दो-चार औरतें साथ जातीं। जिस गांव में बाजार होता वहां जाते। अनाज के व्यापारियों से चारों ओर इस तरह भाव पूछते, जैसे उनके पास पैसे हों। मोलभाव करती। माप डालने के लिए कहते। माप लेते समय थैली का मुह ऐंठ कर रखती। काफी माप अदल-बदल कर लेती। व्यापारी गिनने में व्यस्त रहता इतने में दूसरी औरत थैली गायब कर देती। और बीच में ही, ये बाबा कितने माप डाले ? कहकर बहस करती। बाकी दोनों-तीनों शोरगुल करती। तुम्हारा अनाज नहीं चाहिए, कहकर थैलियां खाली कर आगे निकल जातीं। इसे 'उज्ज करना' कहते...अर्थात चोरी करना पर वह समझ में न आनी चाहिये। पर यदि पकड़े गये तो कुत्ते की तरह मरे तक मार खाना पड़ता। हाथ पैर पड़ते।

अब पढ़ाई में मन लग गया था। लिखना-पढ़ना आता था। बाप को संतोष था। चौथी पास होकर पांचवीं में गया था। बैंड अच्छा बजाता था। झुनझुने छोड़कर ढोलकी बजाने लगा था। ढोल बजाना सीख रहा था। कैकाड़ी मुहल्ले में बजिनयों में बड़ी स्पर्धा लगती। बरात में स्पर्धा की तरह बजाते। दायाँ-बायाँ होते। दूल्हे के पास हो तो बैंड अच्छा। सबके आगे यदि है तो वह कम अच्छा। बाप को अब लगता कि मैं पढ़ाई में समय बर्बाद न करूं। बैंड बजाना सीखूं। मुझे भी इसमें अच्छा ही लगता। पांचवीं में पढ़ते हुये ही मैं बैंड में ढोल बजाने लगा। मेरी उम्र के लड़कों से मैं अच्छा बजा लेता। बाप कहता,

'अब लिखना-पढ़ना बस हो गया। मेरे साथ लकड़ियां काटने चल। डलिया बनाना सीख। बैंड में अच्छा नाम कमा। सारे मुहल्ल में सबसे अच्छा होना चाहिए।'

पर माँ को लगता, 'उसे पढ़ने दो। वह अपनी पढ़ाई कर ले रहा है। हमें उसकी कोई तकलीफ नहीं है।' बाप भुनभुनाता। पर बैंड मैं बजा रहा था। लकड़ियाँ काटने जाता था। माँ के साथ बेचने जाता। घर में बच्चे संभाल रहा था और स्कूल में पढ़ भी रहा था। अब तक फेल नहीं हुआ था। बाप अब पहले की तरह पीटता नहीं था। गुस्से में चिढ़कर स्कूल पर गुस्सा निकलता, 'फेल तो हो, फिर तेरी स्कूल ही बंद कर दूंगा।' यह उसकी बात बार-बार होती। सुनने से तंग आ जाने पर उसके साथ कमाने के लिये निकल पड़ता। अब बड़ा हो गया था। बाप का बोझ उठाने लगा था। मुट्ठी भर-भर बांस काटता। चीरता। एक से दो और दो से तीन....कमाने लगे थे। अब बाप को हमेशा लगता की स्कूल का पीछा छोड़ दे। पेट भरने के लिए इतना ही काफी है। ऐसा सोचते-सोचते पाँचवीं पास हो गया।

'स्साला। लड़का काम भी करता है, बैंड भी बजाता है और पास भी होता है। अब इसकी स्कूल कैसे बंद होगी ? ज्यादा पढ़ गया तो ? इसे तो बंद करना ही चाहिए। अब फेल हुआ कि नाम ही कटवा दूंगा।' हमेशा इसी तरह बड़बड़ता रहता। जब मैं छठवीं मे आ गया तो बोला, स्साला जाने भी दो, सातवीं तक पढ़ लिया तो बस होगा। इसी विचार से छठवीं कक्षा घर पर ही रहा। बाप ने हायतौबा नहीं कीं। पर समझदारी अच्छी आ गई थी। रामभाऊ ने भी बाप को बीच-बीच में समझाया।

छठवीं में पहुंच गया तब गाँव के लोग कहने लगे, 'अरे, कैकाड़ी मुहल्ले से तू ही पढ़ रहा है बेटे।' मेरी वाह-वाही तो दूर रही ऊपर से कहते, 'गधे की और घोड़े की क्या बराबरी होती है।' कहकर दुत्कारने लगे। कोई भी पैर जमाने न देता। कितना भी संभलकर चलता आफत आ ही जाती। ऐसे ही एक बार लड़कों के बहकावे में जगताप की शादी में बारात के साथ जिंती गया था। जाते समय बैलगाड़ी से गया। पर बहुत भीड़ होने पर पैदल चला जाता। लोहार के बाजे की गाड़ी में बैठकर गया था। सारी शादी में नाचते-गाते, गांव के बच्चों में खेल रहा था। सारे बच्चे स्कूल के ही होते। गांव के लड़के दूसरे गांव बहुत अच्छे पेश आते, अच्छी तरह घुल-मिल गया था। शादी की पंगत बैठी। मैं बच्चों के साथ सीधे मंडप में खाने बैठ गया। काफी भोजन हो गया था। परोसने वाले परोस रहे थे। हम खाना खा रहे थे पंगत में सारे मराठों के लड़के थे। एक परोसने वाला आया वह हमारी बारात का और शादीवाले घर का मेहमान था। उसने आंखें फाड़कर मुझे देखा। नीचे झुका। मेरा कान पकड़ा और बोला, 'तेरी मां की...कुछ पता भी है या नहीं ? चलो यहां से।'

और भरी थाली से उठ गया। किसी ने कुछ नहीं कहा। बात कलेजे में चुभ गई थी। पास ही निरा नदी बहती थी। पानी का शांत प्रवाह चल रहा था। आंखों की धार से कमीज गीली हो गई थी। चुपचाप जाकर जनवासे में सो गया। किसी ने नहीं पूछा। अब गांव जाने पर मौत आएगी, बस इतनी ही बात दिमाग में घूमती रहती। और रह- रहकर आंखों में पानी आता। और वैसा ही हुआ। बाप की मार से तो बच गया था। परंतु बारात घर गयी थी। जगताप ने बाप को बुला भेजा, 'बेटे को समझाओ, सारी पंगत भ्रष्ट कर दी। हम थे जो चुप बैठे। गांव में होता तो मालूम पड़ता।' डाँट-डपट की। और उसके बड़े बेटे ने कहा, 'ऐसा नमूना कहां से निकाला रे....। बेटा चार किताब क्या पढ़ गया...अभी तो नाक का रेंट भी नहीं पोंछ पाता और गांड धोने लगेगा, तब क्या आफत करेगा। संभाल उसे। बड़े भयंकर परिणाम होंगे।'



बाप गुस्से में ही घर आया। मैं दरवाजे पर गन्ना चूसते बैठा था। आते ही, 'तेरी मां की...। क्यों मूत पीने गया था शादी में ? कहते हुए पैरों की नालदार चप्पल निकाली और गुस्सा शांत होने तक पीटता रहा। मैं चुपचाप सब सह रहा था। आंखों से खून की धार बह निकली। मां ने बीच-बचाव किया तब उसे भी तीन-चार तमाचे पड़े।

'रांड तूने ही खाना खराब किया है। इसे अपनी जात मालूम नहीं या गोत्र नहीं मालूम। हम क्या जूठन खाने वाले लोग। अपनी औकात में रहने से क्या बिगड़ जाता। और रांड, तूने ही इसे बिगाड़ा है।' कहते हुए भुनभुनाता।

गांव के लोग और बच्चे तमाशा देख रहे थे। रामभाऊ बाप पर बिगड़ा,'अरे बच्चा है वह। उसे क्या पता ?'

ऐसा कह रहा था। पर बाकी लोगों ने बाप का ही पक्ष लिया था।

अब काम किया....बाप के सामने रहकर उसका काम किया तो वह ठीक से बात करता। प्रसन्न रहने पर ढंग से खुलकर बातें करता। ...नहीं तो हमेशा टेढ़ा-टेढ़ा बना रहता। मुहल्ले के लोग बाप से धीरे से कहते, 'बाप्या तेरा बेटा पढ़ रहा है, यह कोई बहुत अच्छी बात नहीं है। उसके ये फालतू लाड़ बंद होने चाहिए। अपने लोगों में यह अच्छा नहीं है। आफत बढ़ गई तो अनहोनी हो जाएगी।'

इधर मैं अब खाने के लिए और काम के लिए घर आता। बचा हुआ सारा समय मैं रामभाऊ होते वहां उनके पीछे-पीछे, नहीं तो आकुबा मास्टर के पीछे नहीं तो कांबले, गायकवाड, भंडारे मास्टर के पीछे-पीछे होता। वे बातें करते तब मैं मन लगाकर सुनता होता। पढ़ाई करने के बाद ऐसी बातें कर सकूंगा। मास्टर बन सकूंगा इसके लिए प्राणों के कान बनाकर उन्हें सुनता रहता। उम्र बढ़ रही थी। आकलन...अनुभव भी बढ रहे थे....गधे के पीछे तमाकू कब से खाने लगा, पता नहीं। परंतु तलब लगने पर बाप से भी मांगकर खाता था। अब मां तमाकू के लिए दो आने देती थी। पुड़िया और डिबिया हमेशा के लिए साथ हो ली।

छठवीं बिल्कुल कम नंबरों से पास हुआ। किसी तरह। सच तो यह है कि आकुबा मास्टर थे, इसलिए पास हुआ।

सातवीं में गया, तब मेरी किताबें, कॉपियां, कपड़े सारा कुछ मेरे बैंड के पैसों से ही आने लगे थे। बाप पेट भरने निकल पड़ा था। तब भी मैं नहीं गया। काफी उठा-पटक हुई। घर में पहले ही चार- चार दिन चूल्हा न जलता। और अब किसी के दरवाजे पर भीख मांगने की इच्छा न होती। कपड़े धोता था। साबुन न होता। हिंगोटी घिसकर चड्डी, कमीज धोता। बदलने के लिए दूसरे कपड़े न होते। जूएं हो जातीं। किसी तरह चल रहा था। बाप अब कठोर हो चला था। मां तिलमिलाती। छिपाकर अनाज भेजती। अपने से दूसरों

से जितना संभव था, मुझ तक भेजती । बाप के साथ मेरे लिए झगड़ती । मार खाती ।

मेरा स्कूल चल रहा था । स्कूल बंद नहीं हुई थी । मन में कई बार अनेक विचार आते पर टिका रहा ।

देखते-देखते सातवीं का साल खत्म होने को आया । मन लगाकर पढाई कर रहा था उसी साल बाप मुझे मढी में लेकर गया । 'जात- बिरादरी में अब तुझे ले जाना चाहिए ।' इसलिए ले गया । वैसे मेला बहुत बड़ा था,-पर एक बात ध्यान में रह गई । पंचों के सामने मामला चल रहा था । गुनहगार के सिर पर टट्टी का गंदा पानी से भरा घड़ा रखा था । वह भगवान के फेरे कर रहा था । बाकी के पंच उस घड़े को एक-एक कंकड़ मारते । घड़े में कंकड़ लगने से उसमें छेद हो जाता । छेद से दुर्गंध पूर्ण पानी भराभर बहता रहता । बेचारा खड़े-खड़े उससे नहाता रहता । मुझे लगता उसकी जगह मैं ही खड़ा हूं । मेला खत्म होकर अर्सा हो गया पर यह दृश्य मेरी आंखों से दूर नहीं होता ।

परीक्षा केंद्र पर होती । फलटण में परीक्षा के लिए जाना होता । चार- पांच दिन फलटण में रहना होता । भीतर से खुश था । किसी तरह क्यों न हो, मैं सातवीं तक पहुंच चुका था। ऐसा लगता कि अब आकाश तक हाथ पहुंच रहे हैं ।

परीक्षा पास आ रही थी । मैं मन लगाकर पढाई करता । पर क्या अध्ययन करता समझ में न आता । ऐसे में गांव में एक नयी अजीब बात आ गई थी । ग्राम पंचायत के चुनाव आ गए थे । गांव में कोई भी खड़ा हो जाता और वोट के लिए कहता । सारे गांव को पागलपन लग गया था । हमारा मुहल्ला, नीचे का मुहल्ला, ऊपर का मुहल्ला, बीच का मुहल्ला, महारवाड़ा और व्हलार मुहल्ला अर्थात हमारा गांव । अनेक उम्मीदवार खड़े थे । रामभाऊ का एक पैनल और ऊपर के मुहल्ले का एक पैनल । रामभाऊ के साथ लाल्या महार, मधु रामूसी और बाब्या मांग खड़े थे । रोज शाम को लोग बैठते तो ग्राम पंचायत के अलावा कोई बात न करते। हम लड़के भी उसमें उतर गए थे । मास्टर चिल्लाता । पर स्कूल में भी लड़कों के कई दल बन गए थे । मैं रामभाऊ चुनकर आए, इसलिए मन से काम करता । मां और कैकाड़ी मुहल्ले की सारी औरतों को चिह्न बता रहा था । ऊपर के मुहल्लेवाले को यह सब दिख रहा था । कहते है बाप्या का बेटा बहुत प्रचार कर रहा है...बाप को गालियां मिलतीं...बाप चिल्लाता पर मैं एक न सुनता । सारे महार मुहल्ले, मांग मुहल्ले और सामोस मुहल्ले में चिह्न बताता फिरता । परीक्षा पास आ गई थी । पर वह बात दिमाग में नहीं घुस पाई थी ।

बाप को भी मन ही मन लगता कि रामभाऊ चुनकर आ जाए । पर वह मुझे डांटता, 'यह अपना काम नहीं है । जान ले लेंगे, घर जला देंगे । गांव में नहीं रहने देंगे । पानी में रहकर मगर से बैर मत करो ।' मुझे समझाता । पर मैं आमतौर पर घर पर न रुकता ।

अंततः चुनाव आ गया । हमारा सारा पैनल गिर गया । उस रात को काफी देर तक जागा । किताब तो हाथ में नहीं थी । सतत डर लगता । स्साला । कम से कम इन महारों ने तो रामभाऊ को वोट देना चाहिए था । सिर सनकता रहता । पर दिखाई देता...चूल्हे न जलते । रोज बोला जाता । जो देगा वही लेगा...रामभाऊ क्या देगा ? उसे क्यों चुनें ?

परीक्षा में जाते तो उन लड़कों में दल बन गए । मैं चकरा गया था । मां को हमेशा



डर लगता रहता ।

ये ढंग से जीने नहीं देगा । इसलिए रोज भगवान की पूजा करती । सारे लड़के निकले। चार दिन फलटण में ही रहना था । भोजन घर से लाना पड़ता । मेरा भोजन कौन लाएगा? मां भोजन कहां से लाएगी ? भोजन कौन देगा ? छेदवाला पैसा भी न था । बाप ने ठेका लिया था । मां ने दो रुपये दिये । बोली, भोजन भेजूंगी । मैं परीक्षा के लिए रवाना हो गया। सबने खाने के डिब्बे आने पर आकुबा मास्टर मुझे ज्वार की रोटी देते । मैं खाना खाता । पेपर लिखता, पर मन में एक बात बार-बार कचोटती कि मेरा खाना क्यों नहीं आया ? गटागट पानी पीकर पढ़ाई करता । जितना जमता, लिखता ।

पेपर खत्म होने पर लड़के पता नहीं क्या-क्या खरीदकर खाते । किसी ने कुछ दिया तो - नहीं दिया तो गिलास से पानी पीता और पेपर लिखता ।

पेपर खत्म होने पर अब घर जाना था । पर मास्टर बोले अब 'फोटो खींचना' है । क्या होता है फोटो ? कैसे निकालते हैं ? कब निकालेंगे फोटो ? इतनी उत्सुकता बढ गई थी । परंतु मास्टर ने इसके लिए चंदा जमा करना शुरू किया और मेरा मुंह सफेद-फक्क हो गया। मैं चुपचाप बैठा था । मास्टर ने मुझसे चंदा नहीं मांगा । हम एक छत पर गए । फोटो खिंचवाने के लिए कतार में बैठना होता । मास्टर के बताए अनुसार लड़के बैठे । मुझे जहां कहा था, वहां बैठ गया । मेरी बगल में गांव की लड़की बैठी । बहुत सुंदर थी । गोरी-गोरी । नाक-नक्श अच्छे । हम एक ही कक्षा में थे पर पूरे साल मैं कभी भी उसके पास नहीं गया । उसे मेरे पास मितली जैसा अनुभव हो रहा था । वह उठ कर दूसरी ओर जाने लगी । पर फोटो खींचने वाला चिल्लाया । वह बैठ गई । बटन दबाया और हम सब उठ गये । बस, मैंने कुछ नहीं पूछा, मास्टर ने बताया, 'घर जाना है ।' हम चलते-चलते घर लौट आए ।

दो-चार दिन बीते होंगे । मैं गन्ने के ढेर में डंडा चुन रहा था । दोपहर का समय होगा। मां घबरायी हुई आई । मुझे लगा बाप ने पीटा होगा । वह पास आई...एक ओर ले जाकर बोली, 'इसी वक्त फलटण चला जा । घर मत आ । घर लौटा तो कुत्ते तेरा खून पी जाएंगे।' मुझे कुछ समझ न पड़ता । ...मैंने तो कुछ नहीं किया था । मैंने मां को बार-बार पूछा तब वह बोली, 'अरे....तूने उस रांड से क्या कहां?' और 'फोटो खिंचवाते समय उसका हाथ पकड़ा था ?' मैं भगवान की, मां की कसम खाकर उसे बता रहा था । वह एक न सुनती...वह कह रही थी....'उसका बाप आया था । तेरे बाप को पीटा । लोगों ने छुड़ाया । बहुत पीटा । कह रहा था...तेरी बहू ले जा ।' मां ने समझाया । आंखों से आंसुओं की धारा बह चली थी । मां ने मुझे चूमते हुए मेरा लाड़ किया । दो रुपये हाथ पर रखे और बोली, सोमवार या इतवार को हम सामान लेकर फलटण आएंगे । तेरे बाप ने ही बताया है । तू गांव में मत आ...फलटण में बगड़ी के पास रह । यह गांव छोड़ना है । हमेशा के लिए । फिर यहां लौटना नहीं है । रोती हुई लौट गई ।

मैं रोते-रोते रास्ते से चल रहा था । मन छटपटा रहा था । ऐसा क्या हो गया था ? सारे रास्ते भर सोचता रहा । ऐसा क्यों हुआ ? बाप को बहुत चोट लगी होगी । उन्होंने मौका पाया था । मैं हाथ मल रहा था ।

दो-तीन दिन में सारी व्यवस्था कर बाप ने सामान बांधा और फलटण आ गया। शहर में नहीं निभेगा इसलिए सोमथली के लिए घर- परिवार चल पड़ा। मैं इसके साथ जा रहा था। परंतु बाप की बातों में मुझे कुछ फर्क लगा। मां की बातों में भी कुछ अलग बात थी। ऐसा लगता कि जान दे दूं। पर पैर मुड़-मुड़कर पीछे-पीछे चल रहे थे।

अब स्कूल छूट ही चुका था। सिर्फ परीक्षा के परिणाम आने बाकी थे। बाप ने सोमथली सांगवी का सहारा लिया। निवृत्ति नायक के मंडप में बोरिया-बिस्तार लगाया। नायक ने आश्रय दिया था। उसके पास रुका और वहीं रह गया। बैंड का दल जम गया। बजाने जाता। ढोल मैं बहुत अच्छा बजा लेता। मग्न हो जाता।

तात्या मंजीरा बजाता। चाचा-भतीजे मग्न हो जाते। भजन गाते। गांव में अधिक परिवार गड़रिये कुम्हारों के थे। मराठों के घर कम थे। मन लगता। अपने हिसाब और औकात में रह रहा था।

एक बार की बात है। सांगवी में बजा रहा था। दूल्हे के साथ बजाते हुए जनवासे में गए और हम पास के सपार के मंडप में रुके। इतने में एक रेंटा लड़का आया। बहुत सिर चढा था। लगातार कहता, 'बजाओ।' झख मारकर बजाना पड़ा। वह नाचता। उसका बाप खुश हो जाता और इधर हमारी जान निकलती।

बाजा बजा-बजाकर प्यास लगती। पानी का पीपा भरा हुआ था। पानी में लड़के हाथ डालकर खेल रहे थे। घराती महिलाएं पीपे से पानी ले रही थी। मैं पानी मांग रहा था। कोई पानी न देता। मैं तंग आ गया। बाप ने पानी मांगा। ऊपर से पानी पिया। हाथ की अंजुली से प्यास नहीं बुझी। शरीर पर पानी गिर रहा था, इसलिए पीछे सरक गया, बस मेरा संतुलन बिगड़ा और पीपे को मेरा स्पर्श हो गया। एक औरत जोर से चिल्लायी,

'अरे...अरे...! मुझे अपवित्र कर दिया...अब पानी कहां ? अब क्या तेरा मुरदा पीना? बस, देखते-देखते सारी औरतें चिल्लाने लगीं। बैंडवाले छोकरे ने पीपा छू दिया...चारों ओर बात फैल गई। बाप ने पीपा उल्टा कर गाड़ी जोती और पानी लाने निकल पड़ा। बाप भीतर से छटपटा रहा था,

'जहां जाता है, वहां अपनी ऐसी-तैसी करवाता है। अपनी औकात में नहीं रहता है। ज्यों उनके दिमाग में अंडे चढ़ गए हों। मुझे तो सिर्फ टट्टी खाने के लिए रख छोड़ा है।'

बस्स। पास-फेल मालूम हुआ। मैं एक जगह बजा रहा था। वहां सातवीं का रिजल्ट लगा...पेपर आया था। लोग बातें कर रहे थे। मैंने गवैये को ढोल दिया और पेपर पढ़ने के लिए गया। सारे पेपर में लड़कों के नाम छपे थे। पर मेरा नाम दिखाई न देता। फिर-फिर पढ़ रहा था। पर नाम दिखाई न देता। मैं फेल हो गया यह कल्पना भी भयानक लगती। पास होने पर कम से कम आगे पढ़ सकता था। अब मेरी स्कूल छूट जाएगी। पढ़ाई बंद। किसी तरह कुछ समय बीता और उधर बैंड बजने लगा। चुपचाप जिसका पेपर था उसे लौटाया और बजाने लगा।

मन ने कब की तैयारी कर ली थी कि अब लकड़ियां काटना, टोकरी, डलिया, सूप बनाना और पेट भरते फिरना है। बस। बाप कहेगा, वैसा करना है अब कुछ सयाना हो जाना



चाहिए। अपनी औकात में ही रहना है। घर में सबको मालूम हो गया था। मैं भीतर ही भीतर घुल रहा था। मेरे कारण मेरे बाप को मार खानी पड़ी। हमेशा के लिए गांव छोड़ना पड़ा। वैसे तो अपना कोई गांव है ही नहीं, पर दादा-परदादे वहां बरसात में रहते, इसलिए अपना गांव और उसे भी हमने छोड़ दिया।

देखते-देखते शादी-ब्याह खत्म हुए। फिर एक दिन बाप ने कहा, 'मैं दीदी के घर हो आता हूँ।'

चार-पांच दिन वह अपनी बहन के घर गया। लौटा तो लड़की पसंद करके ही। मां से बोला, 'इस साल लक्ष्मण की शादी कर ही डालेंगे। कर्जा लेंगे। किसी का टट्टी पेशाब साफ करेंगे। पर इस साल शादी होगी।' मां भी खुश थी कि उसे काम की मदद के लिए बहू मिल जाएगी और इसके साथ के सबकी शादी हो गई, इसकी भी करेंगे।

बस।...मेहमान आए। बाप सारी शादी कर के देने वाला था। निमंत्रण बाँटने थे। सारे लोग जमा हो गए थे। मैं मारुति के मंदिर के सामने गुल्ली-डंडा खेल रहा था। मुझे किसन्या ने बताया,

'दादा, लगता है, तेरी शादी तय हो गई है।' मैंने सुना, मन में निश्चित रूप से क्या हुआ, बता नहीं सकता पर शादी करनी नहीं है। मराठों के बच्चों की उम्र होने पर देखेंगे। ऐसा सोचकर ही मैं घर की ओर आया। पर तब तक सुपारी फूट चुकी थी। और उसके आगे की बातचीत चल रही थी।

'दूल्हा आया, दूल्हा आया' सबने मुझे सामने बैठाया। सिंदूर लगाया। मन में लगा कि खूब चिल्लाकर कहें। पर मुंह न खुलता।

शाम का खाना हो गया। मैंने खाना नहीं खाया। बहुत आग्रह किया गया, पर मैंने खाना नहीं खाया। बाप मेहमानों के सामने कुछ नहीं बोला।

दूसरे दिन मेहमान गए। अब मुहूर्त निकालने की बात चल रही थी। आधी शादी तो हो ही गई थी...क्या किया जाए, निरंतर सोच- विचार करता रहता। दुनिया में लोग हैं...मैं सब छोड़...पेट भरने के काबिल हो जाऊंगा। यह सब छोड़ कर एक रात घर-गांव, मां-बाप, भोई-बहन छोड़कर रात को ही चल पड़ा। अंधेरा था। कितनी रात होगी, पता नहीं। परंतु, ठोकरें खाता, रोता-बिलखता, घर से चल पड़ा था।

घर छोड़ आया। मन में हमेशा डर रहता। ऊपर से रात में अकेला चल रहा था। आगे-पीछे कोई आदमी नहीं था। एकाध मोटर-गाड़ी आने पर सड़क के किनारे हो जाता। कहां जाऊं यही सोचता रहता। इतने में एक चिड़िया चहकी। आवाज से घबराकर आगे-पीछे देखता था फिर चलने लगता। चलते-चलते काफी दूर निकल आया और अचानक खड़ा हो गया। रास्ते में सामने नाला आया था। उसके आसपास भूत रहते हैं...मात्र डर से रोंगटे खड़े हो गए थे। स्मशान कैसे पार करूं, इसी सोच में था। एक मन कहता, 'बाप कह रहा है, वैसा कर - आगे मत जा....पीछे मुड़....मां का, किसन्या का क्या होगा...? बाप दुःख झेलेगा। और दूसरा मन कहता, शादी होगी। गधों-सा बोझ उठाना होगा। लकड़ियाँ काटनी होंगी। बुनना होगा, बेचना होगा और बाप की तरह सब करना होगा। यह ठीक

नहीं है । मुझसे ये सब तकलीफें नहीं होंगी । काम में टिक नहीं सकूंगा । सब कहते हैं, मैं सचमुच मर जाऊँगा । ऐसे विचार मन में उठते । घर छोड़ आया था । काफी देर खड़ा रहा। इतने में पीछे से ट्रक आया । वह स्मशान के पास गुजर गया । रोशनी में सारे- स्मशान का इलाका देख लिया । स्मशान में कोई नहीं था । प्राण कठोर कर लिए और आगे बढ़ा । स्मशान पार न होता । फिर सरपट दौड़ा ।

अब दूसरे किनारे पर था । मन ही मन कालूबाई का स्मरण कर रहा था । सकुशल पहुँचा दे...पाँच आने का प्रसाद बाटूंगा । कहकर मन्नत मानी थी ।

फलटण पास आने लगा था । तब तक भोर हो गई थी । फलटण में प्रवेश करते ही बंदरवाले बाजीगरों के घर लगते हैं । ये बंदरवाले भी हममें से ही थे । बाप बताता, बंदरवाले सिंदी की डाल काटते हैं । सिंदी के झाडू के बिना वे किसी चीज को हाथ नहीं लगाते । और हम सिंदी को नहीं छूते । वे झाडू बनाते हैं । गोबर बेंचते हैं । वह सब हम नहीं करते । पर वे हमारे नाते-रिश्ते में हैं । उनकी और हमारी भाषा एक है रोटी व्यवहार होता है । बेटी व्यवहार नहीं होता...।'

थोड़ी देर वहाँ रुका, पर कोई जगा नहीं था । पाव बटरवाला 'पाव- बटरवाला पाव बटर...' कहकर आवाज लगा रहा था । मैं नहर पर गया । कपड़े उतारे और स्नान किया । किसी के देखने से पहले फलटण छोड़ना है, यह सोचकर ही गाँव में गया था । सुबह की भागमभाग शुरू हो गई थी । होटल में कप-बशी बजने लगी थी । यूं ही थम गया । इतने में केरया वडारी दिखा । वह पहले निरगुड़ी में था । उसे यूं ही सयाने आदमी-सा पूछ लिया, 'क्यों रे काका, फलटण आया है ?'

उसने मुझे पहचान लिया, 'अरे निरगुड़ी छोड़ दी तूने, बगड़ी बता रही थी ।'

'हाँ' मैंने हामी भरी ।

उसने दूसरे लोगों के ठहरने के स्थान के बारे में पूछा । मैं असमंजस में पड़ गया । हकलाने लगा । उसका चेहरा गंभीर हो गया । वह बोला,

'लक्ष्या, किसके साथ आया है ?'

मैं गुस्से में घर छोड़कर आया हूँ यह जानने पर उसने कहा, धत् तेरे की । इस तरह रंडी की तरह कहीं भागते हो ? चलो बगड़ी के पास ।

उसे छकाकर भागने वाला था । पर तब तक उसने मेरी कलाई पकड़ ली थी । मैं रोने लगा । उसने मुझे समझाया । होटल में ले गया । भेल खिलायी । उसने पाव, भेल और चाय ली । बाहर आकर पान खाया और अपने घर गया ।

केरया को सारा बताया । उसने उनको, उनकी भाषा में सारा कुछ बताया । वह बोली, रहने दो इसे, हम इसके बाप को बताएँगे । तू शादी नहीं करना चाहता मत कर...पर बेटे ऐसा क्या कर बैठा ? साले । बाप कहाँ और किस हाल में होगा ?'

समझाने के लिए बहुत कुछ कहा । मुझे घर में रख लिया...घर क्या था टीन का दड़बा था । पास में कसाईखाना..दुर्गंध से जान निकलती । वहाँ से भाग जाएँ, ऐसा लगता । पर क्या करना ? पेट में भूख लग चुकी थी । उनके बच्चे के साथ खाना खाया । उन्होंने गधे



जोते । गधों पर गंठिया चढायी । लगाम चढाया । घमेले, खुरपी, कुदाल - सब गधे पर लादा और गधे चल पड़े । केरया बोला, 'लक्ष्या चलो ।'

मैं अपने आप चलने लगा ।

गांव के बाहर वैनगंगा में कीचड़ उलीचने जाया करता । शाम को बगड़ी के पास लाकर छोडूंगा । ऐसा कह रहा था । मैं गधे हाँक रहा था । तानी ने बच्चा पीठ पर बाँध लिया । उसके दो-तीन लड़के दो- तीन लड़कियाँ और मैं हम सब नदी के किनारे आ गए । तानी ने मिट्टी देखी और केरया से गधे रोकने को कहा । केरया ने गधे रोके। सरी ने धोती खोंसी। नन्हें बच्चे को जमीन पर लिटाया । उससे बड़ी लड़की को बच्चे के पास बैठाया और कुदाल से खोदने लगा । 'केरया अभी आता हूँ' कहकर कहाँ चला गया, पता नहीं काफी देर तक नहीं आया ।

मैं तानी की ओर देख रहा था । वह नीचे देखते हुये खोद रही थी । पसीने से सारा शरीर लथपथ था । अब भी केरया आया नहीं था । वह चिढ गई थी । गधे एक स्थान पर ऐसे खड़े थे, यों बंधे हों । वह थक कर नीचे बैठी ही थी कि केरया आया । धोती का छोर खोंसता, बड़बड़ाता गाली दी 'बहुत गाँड मस्ती आ गई है री, बैठ गई...? तानी तंग आ चुकी थी। उसने भी गालियाँ शुरू कर दीं । वह पहले से गुस्से में था और, कैकाड़ी के लड़के के सामने अपमान करती है, कहकर और बिगड़ पड़ा । दूर गए गधे हाँककर मैं ले आया । तब तक उसने उसकी पीठ पर चूतड़ पर फावड़े के डंडे से चार-पाँच बार मारा था । उसकी आवाज से शोर गुल मच गया था । धूप बढ़ रही थी । वह काम में जुट गया तेजी से घमेला भरने लगा । मैं घमेले उठाने में तानी की मदद करने लगा । वह बोली तुम्हारे अंडे में भी जोर आ गया है क्या ? तू भी उस जैसा ही है । मैं पीछे हट गया । उसने तेजी से गधे की पीठ पर मिट्टी लादना शुरू किया । केरया पीकर आया था । काम में लगा था । राक्षस-सा खोदने और भरने में लगा था । सात-आठ गधे भरे । उसके बड़े बेटे और तानी को गधे हाँकते हुए कुम्हार की भट्ठी तक ले जाने होते । वे माँ-बेटे निकले । मैं भी उनके साथ भट्ठी तक गया। मैंने भट्ठी देखी । रास्ते में गधे हाँकते-हाँकते तानी से पूछा, 'एक खेप कितने की होती है।'

वह बोली, 'पचीस रुपये में सौ गधे अर्थात एक खेप में कितना, तू ही बता ।'

मैं हिसाब करने में लग गया । एक समय सात गधे...काफी तकलीफ उठानी पड़ती होगी। मन में सोच रहा था, 'स्साला । इनके और अपने काम में कोई खास फर्क नहीं है । दिन भर गधों के पीछे दौड़- दौड़कर पिंडलियां दुखने लगी थीं । दूसरे खेप से तानी रुक गई...हमारी खेप पूरी होने पर उसने एक रुपया दिया । चाय दी । शाम को बगड़ी के घर ले गया । समी दरवाजे पर ही थी । रो-रोकर उसकी आंखें लाल हो गई थीं । मुझे देखते ही सारी कैकाड़ी-जाति आ गई...जाग गए सब । सारा शोरगुल मचा । बाप-मां, तात्या, आप्पा सब आये थे। सब रिश्तेदारों के घर खोजने गए थे ।

केरया ने सारा सुनाया । बगड़ी ने गोद में लिया । वश्या, लाल्या भागे । बगड़ी बोली, 'अरे, बापूदा से जाकर कहो ।'

समी ने परोसा । खाना खाया । सबने निःश्वास छोड़ा ।

'बहुत सताने लगा है...नासपिटे। मां की हालत कितनी खराब हो गई है। रात को घर छोड़कर निकल गया न इसलिए।'

तरह-तरह के लोग, तरह-तरह की बातें। कोई कहता, जाने भी दीजिए, भगवान को सब चिंता है। इसे अच्छी बुद्धि चली और केरया भगवान की तरह खड़ा रहा। नहीं तो क्या हुआ होता...सब केरया की तारीफ कर रहे थे। वैसे मुझे भीतर खुशी हो रही थी। कैसे ठंडे हो गये शादी कर रहे थे...अब कैसा ठिकाने लगाया सबको। इतने में दूसरा मन जोर से कहता, स्साला, बाप बिगड़ गया तो सब ठिकाने लग जाएगा। जान निकलने तक पीटेगा। पर इतने लोग हैं। मैं बेकार में डर रहा हूं। बाप मारेगा नहीं। सोचकर अच्छा भी लगा।

रात के आठ-नौ बजे होंगे...समी ने एक बोरा बिछा दिया था, उस पर सो गया था। तभी बाप, मां, आप्पा, तात्या, लाल्या वश्या सब आए। मां ने सुनिश्चित किया कि मैं वहां हूं। बाप को चुप बिठाया। मेरे पास आई और रोने लगी।

'लक्ष्या खून-पसीना एक कर तुझे पाल-पोस रही हूं और भगवान ने तेरी खोपड़ी में ये बात कैसे आने दी। कहकर तड़ातड़ अपने ऊपर झापड़ चलाने लगी। मैं नरम पड़ गया था। नीचे सिर झुकाए पैर से मिट्टी हटा रहा था। मां, बाप सारे रो रहे थे।

बाप बोला,

'लक्षा तुझे जो करना हे, कर। पर पागलों-सा मन में यह विचार मत ला। घर चल चुपचाप।' उस रात बगड़ी के पास रहा। समी, मां, बाप, बगड़ी सब बातें कर रहे थे। बाप कह रहा था, 'इसके कारण निरगुड़ी छोड़ी...यह कहीं भी ढंग से नहीं रहता...बगड़ी, टट्टी खाने की हालत कर दी इसने। किस मादरचोद ने बुद्धि दी और मैंने इसे स्कूल में डाला। बेकार में पढ़ाया, खैर...जाने दो। मां कालूबाई उनका भला करे। इसलिए सारी जान जलती है। इसके दो के चार हाथ देखने की इच्छा थी, तो ये ऐसा कर रहा है।' बगड़ी ने सारी रात अपने भाई को ज्ञान पढाया। मैं तो घोड़े बेच कर सो गया था। बाप अब शादी नहीं करेगा। इसी की बेहद खुशी थी। दूसरे दिन मजबूरी में मां-बाप के साथ सोमथली लौट आया...अब सोमथली के लड़कों की पहचान हो गई थी। शादी-ब्याह खत्म होते आए थे। बाप ने मावलणी में अपनी बहन को संदेशा भेजा। इस साल शादी रद्द कर दी है। बहन ने भुनभुनाकर डाक से सूचित कर दिया...बस...कम से कम इस साल के लिए शादी टल गई थी।

अब घर में कोई बात न करता। कोई न पीटता। मैं गधे संभालता। जलाऊ लकड़ियां लाता। मां के सूप बेचने जाता। लौटते में जितना संभव होता कच्ची लकड़ियां लेता आता। सबको लगता अब यह सुधर गया है। बाप ने तो उस दिन से मारना ही छोड़ दिया था। अब क्रोधित होने पर सिर्फ आंखें तरेरता।

एक रात हम स्कूल के सामने सोने के लिए गए थे। बाप खुश होकर यद्या मांग से कहता, 'अरे, यदू, निरगुड़ी छोड़ी, यह ठीक ही हुआ। नहीं तो मेरे बेटे के बहुत बुरे हाल होते। मुझे पीटा। स्साले, वे मराठों के आदमी और हम भिखारी। कहां बराबरी है? मेरे छोकरे को यह सब क्या मालूम।'



यदू कह रहा था, 'अरे क्या हुआ? क्यों मारा? कुछ न कुछ अन्याय हुआ होगा न....? बाप बोला, 'हां, बताता हूं। ये परीक्षा के लिए गया था। गांव के पाटिल की लड़की भी परीक्षा के लिए गई थी। कहते हैं, फोटो खिंचवाया गया। पर मुझे मालूम हुआ वह अलग बात है। उस पाटिल की लड़की के साथ उन्हीं की जाति का एक लड़का था। उसका और उस लड़की का नहीं बनता था। और वह लड़का उसे पकड़ने की बात कर रहा था। लड़की घास न डालती। ऐसे में वह कहता कि एक तो उसे साथ सुलाऊंगा नहीं तो बर्बाद कर देगा। सोने की बात तो नहीं जमी पर उसे बर्बाद करना है, तो कांटे से कांटा निकालना होगा। जिससे साफ बच निकलेंगे। ऐसा करते हुए मेरे बच्चे की आड़ ली कि 'कैकाड़ी के लक्ष्या ने उसे बताया कि फोटो खिंचवाते समय मैं उसके गले में हाथ डालता तो वह मेरी औरत हो गई होती और मैं उसे पा लेता।' अब तू बता यदूदा, इस लड़के को 'पाने' की बात क्या समझेगी? लड़की जवानी से लद- लद गई थी पर जो शोभा दे, वही बोलना चाहिए न? उस लड़के ने बताया और इसके-उसके मुंह से होती हुई यह बात पाटिल तक पहुंची। पाटिल हमारी जान का दुश्मन हो गया। मां कालुबाई ने बचाया, नहीं तो उसका तो खेल-तमाशा होता और हम गरीब जान गंवा बैठते। अब इस लड़के को ढंग से जीने नहीं देंगे। हमेशा कोई न कोई खुराफात निकालते हैं, कहां तक संभालेंगे? पेट की आग बुझाऊं या इसको संभालता बैठूं। समझदारी इसी में थी और गांव छोड़ दिया। यदू हामी भर रहा था मैं नींद का बहाना लेकर चुपचाप सोया पड़ा था। बाप बता रहा था।

'पांच-पचास घरों की कैकाड़ी बस्ती निरगुड़ी में थी। अब वहां दो- तीन घर रह गए हैं। अब सबने गांव-घर छोड़ दिया है और पेट जहां ले जाएगा, निकल जाते हैं। ऐसी आग में कौन रहेगा? और लक्ष्या की भी गलती है। वो क्यों ऊंट की गांड का चुंबन लेने गया? यह छोकरा बहुत शरारती है।

बातें करते-करते विषय मुझसे भगवान की ओर मुड़ा गया...उनके भीतर संचारित कालूबाई पर वे दोनों बातें करने लगे। मैं चादर तान कर सो गया। मुझे एक नयी बात मालूम होने लगी...लड़की-सोना- बांह में लेना-ऐसे, पता नहीं किन-किन खयालों के साथ नींद लग गई।

अब मन में एक बात हमेशा उठती। मैं सातवीं फेल हो गया था। पर फॉर्म परीक्षा में पास हो गया था, इसलिए आठवीं में बैठ सकता था। गांव के कुछ लड़के सांगवी के स्कूल में गये भी थे। स्कूल शुरू होकर काफी दिन हो गये थे। मैंने बाप से कहा तो बाप बोला,

'जो भी ऐसी-तैसी करना है, करो। हमें इंसानों की तरह ढंग से जीने दो। तुम और तुम्हारी तकदीर जैसा होगा, देखो।' मैं सांगवी गया। अप्पा साथ आया। हाईस्कूल में पूछताछ हुई पर दाखिला नहीं मिला। फिर निराश हो गया। अब फलटण में दाखिला करायेंगे, इसलिए फलटण के लिए रवाना हुए तो बाप बोला,

'लक्षा, अब स्कूल-विस्कूल बस हुई। अपना घर-परिवार देख। पेट भरने तक पढ़ लिया, बस हुआ।'

पर मन में हमेशा लगता कि इन लोगों की इच्छा है कि मैं न पढ़ूँ। बाप को पाटिल

ने पीटा है। कुछ भी हो गया तो भी मैं पढ़ूंगा। मराठा की लड़की के साथ रहेंगे। पर पढाई के बिना यह सब जमेगा नहीं। सांगवी का न जमने पर फलटण गए। पाटिल की लड़की और उसकी जाति का लड़का मुधोजी हाईस्कूल गए, मुझे किसी से मालूम हुआ....और कोई आफत अपने साथ न हो इसलिए मैंने श्रीराम हाईस्कूल में दाखिला लेना तय किया। साथ कोई नहीं आया। मां ने हरी मिर्च की चटनी और ज्वार की रोटी बांध दी। पैदल फलटण पहुंचा। गांव के लड़के श्रीराम हाईस्कूल में थे। उनके साथ हाईस्कूल गया। ना. मा. भोसले हेडमास्टर थे। उन्हें बताया...एक ओर रो रहा था, दूसरी ओर बता रहा था। सर सुन रहे थे। उन्होंने चष्मा निकाल कर आंखें की कोर पोंछने की घटना अब भी मुझे याद है।

उन्होंने चपरासी को बुलाकर बताया...मैं चपरासी के साथ आफिस में गया। फार्म भरकर दिया। सर ने ही फॉर्म के पैसे दिए। पीठ पर हाथ रखा और बताया,

'कल से आ। मैं पुस्तकें और कॉपियां ले दूंगा।'

मेरी खुशी का ठिकाना न था। ऐसा लगा कि मैंने आकाश छू लिया और पता ही नहीं चला कि दौड़ते हुए कब घर आ गया। मां टोकरी बुन रही थी। बाप घर में नहीं था। मां को सब कुछ बताया। पैसे नहीं लगे और पुस्तकों की भी व्यवस्था हो गई, सुनकर मां गद्‌गद् हो गई। काफी देर तक रोती रही। उसने मुझे भीतर से अनुमति दे दी थी। शाम को बाप आया।

उसे मां ने ही सब कुछ बताया। बाप चुप बैठा था। वह बोला,'लक्षा, मैं कहता हूं, तू अब आगे मत पढ़। ये सात-आठ लड़के संभालूं या तुझे पढाऊँ ? मैं तुझे कुछ नहीं दूंगा। तुझे फलटण जाना है तो यह सब नहीं निभेगा। तू अपना संभाल। और दूसरी बात भी अपशकुन-सी मन में उठती है। वहां निरगुड़ी के लोग हमेशा आते हैं...तेरा कुछ भला-बुरा हो गया तो किसे पूछूंगा ? कौन जवाब देगा ? अपना कौन है, किसे पूछूंगा ? बोल।'

बाप बोल रहा था...सब चुप थे। बाप की आंखों से धार बह चली थी। उसका कलेजा चिंता से फटा जा रहा था।

मैंने कहा, 'चिंता मत कीजिए। मैं कुछ भी ऐसा-वैसा नहीं करूंगा। कुछ भी करूंगा, पर पढूँगा...बुरा कुछ भी नहीं करूंगा।' दूसरे दिन बाप मेरे साथ फलटण आया। मास्टर से मिला। सर ने सब कुछ सुना। 'मैं देख लूंगा। आप चिंता न करें। मास्टर ने कहा। इतना बड़ा आदमी बोल रहा है। बाप झुक गया...मास्टर के पैर छुए और बोला,

'गुरुजी, मैं रोजी-रोटी के लिए इधर-उधर भटकता रहूंगा....गरीब के बेटे के, मां-बाप, दोनों आप ही है। कुछ भूल हो गई तो संभाल लीजिएगा। बहुत समझाया पर यह पढ़ने की जिद कर रहा है। मेरी ताकत नहीं है। परंतु क्या करुं पेट की आग के लिए सब करना पड़ता है। सुबह से घर में अनाज का एक दाना भी नहीं है। हमने खाना तक नहीं खाया है।'

सर ने चपरासी से कुछ कहा। ना. मा. भोसले भगवान जैसा आदमी। हमें अपने डिब्बे का खाना दिया। हम दोनों बाप-बेटे ने सीढ़ियों पर बैठकर खाना खाया। नहर में पानी पिया और बाप घर की ओर चल पड़ा।



सोमथली और फलटण के बीच पांच मील का अंतर है...रोज जा-आकर तीन महीने स्कूल गया। ऊब होने लगी। साथ ही, मराठी स्कूल की अपेक्षा यहां सब कुछ नया। गांव नया, स्कूल नई, मास्टर नये। हमारे गांव में एक ही मास्टर सब कुछ पढाता। यहां प्रत्येक विषय के लिए मास्टर और उसका अलग सत्र। कुछ जम नहीं रहा था। पहचान का कोई नहीं था। स्कूल शुरू होकर काफी दिन हो गए थे। मैं सबसे पीछे बैठता। ऐसा लगता, कब घंटी बजती है। पर लड़के अच्छे लगते यहां, कोई कैकाड़ी की औलाद, मैकाडी व्हयकाड़ी, इस तरह न चिढाता। बस इतना ही संतोष था। सब उपनाम से पुकारते। अब तक 'लक्ष्या'ही था। अब सारे 'माने' कहते। अच्छा लगता। एक नयापन, नया जन्म लेकर आने-सा लगता। तिरस्कार खत्म हो चुका था। रोज पैदल जाने-आने की ऊब होने लगी। पर गांव में व्हयकाड़ी कहलवा लेना...तिरस्कृत व्यवहार की अपेक्षा स्कूल में अच्छा लगता।

पहले चार-पांच महीने जा-आकर पढाई की। अब फलटण की जानकारी हो गई थी। गांव में समी थी। पर बाप ने कहा था,

'दामादजी को तकलीफ नहीं देना। उनके दरवाजे पर मत जाना। उनका ही चूल्हा नहीं सुलगता।'

निरगुड़ी के मेरी कक्षा के काफी लड़के मुधोजी हाईस्कूल में थे। उनकी मुलाकात फलटण में होती। अब वे भी कुछ बदला-बदला सा व्यवहार करते। एक दिन चार-पांच मिले। उन्होंने किराये का कमरा ले रखा था। फलटण का कोई पहचान का न था। एकाध दिन देर हो जाने पर उनके कमरे पर रुक जाता। अब निरगुड़ी के लड़के अच्छा व्यवहार करते। यहीं रहो, घर से रोटी मंगवा लो, न हो तो हम देते हैं, ऐसा संग्या कहता था। वैसे वह अकेला अच्छा था। पैदल चलने से मैं तंग आ गया था। बाप को रामभाऊ ने बाजार में समझाया। अब फिर निरगुड़ी का साथ मिल गया था। लड़की की बात छोड़ बाकी बातें करता। उनके साथ रहता। पर रोटी, सब्जी न छूता। सब्जी-रोटी न आने पर ऊपर से जो देते खाता। परंतु पहचान होने तक, चल रहा था इसलिए दिन काटता। कक्षा के लड़के, उनके कमरों की जानकारी ले रहा था।

इधर बाप बाजार आया कि उसे कुछ अलग बात ही मालूम होती। बाप कुछ न बोलता पर उसके लक्षण ठीक न लगते। पर एक बात थी...रास्ते की ओर की खिड़की के पास वे मुझे कभी न बैठने देते। बारी-बारी से कश लेते और खिड़की के पास बैठे लड़के को रास्ते का सब कुछ दिखता। रास्ते से डिब्बावाला आया कि वह खिड़की के पास बैठे लड़के को दिखायी देता। वह इशारा करता और सिगरेट मेरे हाथ में आ जाती। मैंने सिगरेट की एक-दो कश ली कि गांव का डिब्बेवाला दरवाजे पर होता। मैं जल्दी में सिगरेट बुझाता। पर कश लगाते समय घबराता। लेकिन नाम मेरा बदनाम होता। यह उस समय ध्यान में न आता। बाप को सारी बातें दो की चार करके मालूम होतीं।

'ये क्या पढ़ेगा। बच्चू, गधे और घोड़े की बराबरी होती है ?...हमने अपने बच्चों को इतना पढाया, फिर भी नौकरी नहीं मिलती। तू क्यों इस झंझट में पड़ता है ?'

बाप को बहकाते। बाप तंग आ जाता। रामभाऊ से कहता-रामभाऊ धीरज बंधाता।

इस तरह साल भर सिगरेट, सिनेमा, लड़कियों के कितने ही किस्से हुए। पर मैं आठवीं पास हो गया।

चैत्र आने पर कुरवली का मेला लगता। तीन भाइयों की तीन बकरियां, पांच-छह मुर्गे हर साल होते। मेला लगा कि जाति- बिरादरी के सारे लोग इकट्ठा होते। अब सारी बातें समझ में आने लगी थीं। पास होने पर मैं भगवान को पेड़ा चढ़ाता। 'हर साल पास कर, मैं अगले वर्ष भी पेड़ा चढ़ाऊंगा' कहकर मन्नतें मांगता।

अब मां पहले जैसा काम न कर पाती। उसे हमेशा लगता कि अब उसकी बहू आ जाए। वह मेरे पीछे ही पड़ गई थी। मावलणी की लड़की कितनी अच्छी है, यह वह मुझे बराबर बताती रहती। कभी- कभी मैं भी पिघल जाता। परंतु, पता नहीं क्यों शादी के लिए तैयार न होता। सारे रिश्ते के लोग कुछ-कुछ कहते। साथ के सभी लड़कों की शादियां हो चुकी थीं। वे भी चिढ़ाते। मावलन तो बहुत प्यार करती। बुआ मेले में खाने के लिए बहुत पैसे देती। अब बैंड में मैं ढोल भी तो बजाने लगा था। ढोल बजाते समय तन्मय हो जाता। वह हमारी जन्मजात कला थी। बाजे की स्पर्धा होती। पालकी निकली कि सामने पालकी से लगकर जो होता, वह सबसे बड़ा बैंड माना जाता। उसके लिए झगड़े होते। मैं बड़ा कि तू बड़ा...गुट बन जाते। कई बार खून भी बहता। भगवान के मंदिर में गोलियां की गवाही में हुए झगड़े पंचों के सामने आते...पंचायत के सामने आते...पंचायत में आकर सुलझ जाते।

बैसाख में बाजे तय होते। सुपारी लेते अर्थात बात पक्की होती। मुहूर्त के अनुसार भाव कम-ज्यादा होते। किसी मुहूर्त में सिर्फ भोजन पर बजाते। पर जिस मुहूर्त पर शादी ज्यादा होती, उस समय काफी पैसा लेते। कभी-कभी दो-दो शादियों का काम लेते। मालिक को फांसते कुछ भी बजाना न आता, ऐसे आदमी को चार रुपये देकर सिर्फ बाजा देकर खड़ा कर देते। चार अच्छे बजाने वाले और चार-पांच सिर्फ खड़े कर देते। पास-पास शादियां होतीं तो एक के हल्दी लगाते समय और दूसरे की बारात के समय का काम लेते। नहीं तो एक की शादी हो जाने के बाद दूसरे की बारात में बजाते इस तरह एक ही मुहूर्त पर दो-दो शादियों में बजाते। मालिक शौक में बैंड किराये पर लेता। मालिक चिल्लाता,'ठीक से बजाओ रे।'

एक बार तो भयंकर घटना घटी।

हम शादी में बजा रहे थे - सांगवी में शादी बड़े घर की थी। उनकी हल्दी लगाने के बाद कांबली सर गांव के पास के घोड़े पर रावसाहब खलाटा आया। जब वह आया तब हम वहीं बजा रहे थे। वह ऊंचा- पूरा, गठीले बदन का था। सिर पर हरी पगड़ी थी। नेहरू कुर्ता, सफेद धोती और गले में उत्तरीय था। पीकर धुत्त हो गया था। हाथ का चाबुक हवा में उछालता बोला, 'ऐ बंद करो मादरचोदो, तुम्हारा बाप आ गया है। इस चाबुक से चमड़ी उधेड़ दूंगा।'

बाप उठा, 'क्या हुआ ?' कहकर पूछने लगा। तभी घोड़े से ही उस खलाटी ने चाबुक जोर से चला दिया। बाप चिल्लाया। बैंड बंद हो गया। तब तक खलाटी ने दो-चार को चाबुक से मारा था। चीखना- चिल्लाना हुआ। हम भी चिल्लाने लगे। किसी ने खलाटी को पकड़



लिया था। वह निकलने की कोशिश कर रहा था। मां-बहन की गालियां बक रहा था 'इन कैकाड़ियों के घर ही फूंक दूंगा। इनकी मांओं की पेड़ से बांधकर चोदूंगा। इन्हें बताना ही पड़ेगा। लोगों का और होता है और मेरा और होता है। पहले मेरे पैसे दो। बाप के पैसे थे ? इस भड़ुए ने करार किया था। और चार छोकरे भेज दिए बजाने के लिए और यह यहां मां चुदा रहा है।'

दत्या कैकाड़ी ने सीधे पैर पकड़ लिए,

'मालिक, बच्चों की गलती हो गई। अब मत मारो। हम जा रहे हैं।' कहकर उसके पैरों पर नाक रगड़ रहा था।

खलाटी शांत हुआ। सबको आगे रखा। बोला-चलो। उधर सांगवीवालों को लगा कि उनका अपमान हो गया है, यह सोचकर उन्होंने हमारी शहनाई छीन ली। मेरे कांधे का ढोल कब का गायब हो चुका था। लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। बाप कब का भाग गया था। दत्या पैर पड़ रहा था। पैसे लौटाने की बात कह रहा था। सांगवीवालों ने खलाटी को, हमें सबको पीटा था। अब कांबलीसरवालों और सांगवीवालों के बीच संघर्ष था। खलाटी ने घोड़े को दारू पिलायी थी। वह घोड़े पर बैठा और घोड़े को एड़ी मारी। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। उसके पीछे लोग दौड़ रहे थे। और देखते-देखते वह ओझल हो गया। हममें से जिसे जैसा संभव हुआ, वहां छिप गया था। मैं, विट्ठल और आप्पा एक होटल में बैठे थे। आप्पा और हम सब आगे क्या होगा...इसकी चिंता में बैठे थे। इतने में ग्राम-पंचायत का आदमी आया।

'दिन्या, बच्चू तू यहां है ? बाकी सब कहां गए ? चलो। सरपंच पाटिल और सब लोग चौपाल पर इकट्ठा हुए हैं। वरसिंह मामा आए है। बुलाया है।'

पर अब हम सब घबरा उठे। आप्पा मुझे और विट्ठल से बोले, 'चलो रे, निकलो, तुम दोनों सोमथली जाओ। मैं पंचायत जाता हूं।' और वह उस आदमी के साथ पंचायत में गया। क्या-क्या होता है उसे देखेंगे। वैसे भी बाजे तो अब चले ही गए हैं। हम खाली ही हैं। हमें कोई नहीं पहचानेंगे। अपने बाकी लोग कहां हैं, पता नहीं। ऐसा सोचकर हम दोनों वापस लौटे। भीतर पंचायत में गए।

पंचायत के सामने लोगों की बाढ़ आ गई थी। काफी बड़े लोग सामने बैठे थे। कोई कुछ तो कोई कुछ बोल रहा था। शिरया, नाम्या, शिरप्या सिर झुकाए ऐसे बैठे यों किसी मय्यत में आए हों। बाप कहीं दिखाई न देता। उसी ने खलाटी से पेशगी ली थी। एक सौ पचीस का काम था। सात आदमी देने का तय हुआ था और चार ही आदमी खलाटी को दिए गए। इसीलिए वह आग-बबूला हो गया था। पेशगी बाप ने ली थी। वह नहीं था। कितने लोग तय हुए थे, किसी को मालूम नहीं था। पंचायत ने कैकाड़ियों को जोरदार डांटा। डेरा उठाओ, बाजे नदी में फेंक दो, बातों के साथ ये जात ही गिरी हुई है यहां तक दोष लगा रहे थे। मामा ने सारा मामला सुलझाया। दत्या को अभी, इसी वक्त बारामती या दुनिया से कहीं से भी आदमी ढूंढकर लाने के लिए और कांबलीसर को तयशुदा आदमी देने के आदेश दिए गए। यहां के आदमी यहीं रखने का हुक्म दिया और पंचायत विसर्जित

हो गई ।

दत्त्या परेशान हो चुका था । दोनों जगहों के सारे पैसे देने पर भी लोग नहीं मिल सकते, यह उसे मालूम था । आप्पा और वह फलटण के बजनियों के छोकरे देखने गए । सब शांत हो गया था ।

चार दिन बजाया । जगह का काम खराब हो गया । पांच-पचास रुपये वसूल नहीं हुए। पर फलटण के बजनियों ने दो सौ रुपये गिनवा लिए । इससे बाप का सौदा बिगड़ गया । बैंड के बाकी सारे लोग ही तू-तू मैं-मैं पर उतर आए । मां गुस्से से आई और सारी मौसम की कमाई, एक गलती की खातिर मिट्टी-मोल बांट दी ।

मेरे हिस्से आए पैसों से कर्जा उतरा । मेरे लिए कपड़े खरीदे । कापियां, किताबें, पेन, सब कुछ खरीदा । और मैं फिर से हाईस्कूल जाने लगा । अब सोमंथली के लड़के साथ होते। समझ अच्छी आ गई थी ।

हममें से ही छब्या नाम का एक लड़का था । उसी के साथ मिलकर हम फलटण जाते। चार-पांच मील का साथ होता । एक ही कक्षा में थे । उसे काफी पैसे मिलते । मुझसे वह बड़ा था । दिखने में भी बड़ा दिखता । काफी उठा-पटक करता ।

सोमंथली के दोनों ओर दो वटवृक्ष थे । करंजवट का बरोह बहुत घना था । बरोह से आदमी दिखाई न देता । ये बेटा, उस जाल में रसायन भिगोकर रखता । रविवार को स्कूल की छुट्टी होने पर स्टोव, डिब्बा, पाईप, आटा सब लेकर आता । नवसागर और हिवर पेड़ की छाल, सड़ा गुड़ बस इतनी ही उसकी पूंजी होती । पांच-पचास की पूंजी पर सौ-दो सौ कमाता । इस कारण उसकी मौज रहती । कभी- कभी मैं जाता । वह पहली धार की हाथ-भट्टी की दारू पतीली से पीता । मैं निगरानी करता बैठता । कोई आया तो मैं सीटी बजाता, सीटी की आवाज सुनते ही वह स्टोव बंदकर जाली से नौ दो ग्यारह हो जाता । यदि छापा पड़ा ही तो माल जाएगा...अपने ऊपर कुछ नहीं आएगा, यह चाल थी । इसके लिए वह मुझे फलटण जाने पर होटल में स्पेशल भेल और चाय देता । पढ़ाई के नाम पर शून्य था। उसी में उसका सारा ध्यान रहता । कक्षा में शरारत करता ।

इसकी इस आदत से एक लड़की का मज़ाक उड़ाया था, इसलिए लड़कों के झगड़े हुए थे । दोनों की जोरदार पिटाई हुई थी, पर इसकी आदत नहीं जाती ।

हिवरा की छाल नहीं मिल रही थी । छुट्टी होने पर यह मुझे हिवरा की छाल लाने को कहता । हिवरा की छाल देने पर चार-पांच रुपये मिलते । दोनों की मौज होती । पान, सिगरेट, होटल, सिनेमा ।

दिन मजे से कट रहे थे । घर में खाने की किल्लत होती । छब्या के पास खाने को मिल जाता । हाईस्कूल नियम से जा रहा था । अभी तक मेरा ध्यान घर की ओर नहीं था । बच्चा पढ़ रहा है...इसलिए घर के लोग सब देख रहे थे । मैं त्यौहार के बैलों-सा घूम-घूमकर खाता रहता । बाप चिढ़ता, परेशान हो जाता । एकाध दिन गालियां देता । पर अब मार बंद हो गया था ।

एक दिन छब्या और मैं दारू के गुब्बारे लेकर फलटण के लिए शाम के झुरमुट में निकले



थे । किसी को पता चल गया था । हमें मालूम नहीं था । रबर के गुब्बारे साइकिल में बांध दिये थे । हम तेजी से बढ़ रहे थे । मैं साइकिल के डंडे पर बैठा था । छब्या साइकिल चला रहा था । कांख के रेडिओ पर गाना लगा था, 'हंसता हुआ नूरानी चेहरा, काली जूल्फें रंग सुनहरा...' हम संगीत के साथ झूम रहे थे । मैंने दूर सामने पुलिस की गाड़ी देखी...छब्या को गाने की धुन से जगाया...बताया । छब्या ने साइकिल रोकी । मैं नीचे कूद गया और दाते के गन्ने के खेत में घुस गया । लेकिन वह हवेली की ओर भागा । तब तक पुलिस की गाड़ी आ धमकी । दो-तीन पुलिस और एक साहब था - मैंने तो चड्डी में पेशाब कर दी । गन्ने के खेत में चित्त पड़ा था । पुलिस ने साइकिल, माल और छब्या को धर-दबोचा । छब्या शान से सामने चलता आया । इधर मैं अधमरा हो गया । अब यह मेरा नाम बताएगा और मुझे जेल में जाना पडेगा । इस डर से पसीने से लथ- पथ हो गया था । पर क्या हुआ पता नहीं, गाड़ी आगे निकल गई । छब्या ने साइकिल और गुब्बारे लिए । गाड़ी दूर निकल चुकी थी । और उसने मुझे पुकारा, 'ऐ, कैकाड़ी, बेटा चूड़ियां भर चूड़ियां ।'

मैं तो बेहद घबरा गया था । मन ही मन छब्या के पराक्रम की और अपने डरपोकपन की तुलना करने लगा । मन डर गया था । अब कुछ भी हो जाए, पर इस साले के साथ यह धंधा नहीं करूंगा, ऐसा मन ही मन कह रहा था । दूसरा मन, भेल, पाव, सिनेमा, पान, सिगरेट की ओर खींच रहा था । मैं डरता-डरता छब्या के पास आया । वह खुश था ।

धत् तेरे की । बेटे, वे क्या राक्षस हैं कि आदमी खाकर जीते हैं ? अरे, वे भी आदमी हैं । उन्हें भी पेट है । एक नोट सरका दी । बस गांड में पूंछ डाल कर आगे निकल जाते हैं । मैं इन पुलिस-वुलिस से कभी नहीं डरता ।'

मैं सुन रहा था छब्या की साइकिल और बकवास चल रही थी । मैं डरा हुआ था । पहले ही बाप पढ़ाने के लिए तैयार नहीं था । किसी बहाने वह स्कूल छुड़ाना चाहता था । ऐसे में यदि पुलिस ने मुझे पकड़ लिया होता, तो मेरी स्कूल तो बंद हो जाती । मां कालूबाई ने बचा लिया था ।

साइकिल से मंगलवारी में गुब्बारे पहुंचाए और हमेशा के लिए छब्या का साथ छोड़ दिया। आगे वह नहीं पढ सका । परंतु, पत्थर फोड़ने के लिए जरूर गया । जब मुझे मालूम हुआ कि वह पत्थर फोड़ने गया । तब मैं पत्थर-सा चुप होकर कालूबाई के आभार मानने लगा। वही ज्ञान देती है । मां बताती कि जब-जब संकट जाता है तब-तब उसकी ढाल हमको संभालती है । यह सही जानकार रोज सुबह शाम उसे पूजने लगा ।

पांच छह महीने फलटण-सोमंथली आ-जाकर पढाई की । दशहरा होते ही बाप ने पेट भरने के लिए तंबू हिलाए । फिर मैं एक-एक टुकड़े के लिए मोहताज हो गया । घर जाने का कोई कारण नहीं था । जेब में एक पैसा न था । तमाकू के लिए लड़कों की चमचागीरी करता । सिर्फ पानी पीकर कई बार सावतामाली के मंदिर में नहीं तो एस. टी. स्टैंड पर सोता था । बहुत भूख लगने पर समी के घर जाने की इच्छा होती । परंतु उनका घर भी पेट भरने के लिए बाहर भटक रहा था । सारा कैकाड़ी मुहल्ला निर्जन पड़ा था ।

सावतामाली का मंदिर वैसे बहुत अच्छा था । सोने के लिए बड़ा बरामदा । मंदिर के

सामने दादा कर्णे की 'संतोष भुवन' होटल थी। इसके पड़ौस में रामदास साइकिल मार्ट, यह साइकिल की दुकान थी। इसी को लगकर मेरी हाईस्कूल। स्कूल छूटने पर यहीं भटकता। मेरी तकदीर से होटल का मालिक कर्णे दिलदार आदमी था। उसका भांजा नारायण बोड़के और रामदास साइकिल मार्ट के रास्कर का रामदास भी मेरी ही कक्षा में थे। धीरे-धीरे मैं उन लड़कों में घुलने- मिलने लगा। मित्रता बढ़ती गई। चाय, सब्जी खाकर यह लड़का पढ रहा है। कर्णे को उसके भांजा ने बताया। मामा को दया आई। वे कभी-कभी खाने के लिए उधार देने लगे। बासे भजिए साग खाते- खाते मैं वहां जम गया। मुफ्त में कप-प्लेट उठाया करता। लोगों के हाथ का काम खुद करता। शौक से काम करता। लोगों का विश्वास पाने की कला बचपन से हाड़-मांस में घुली हुई। खून में बसी लाचारी। कभी-कभी मैं भी होटल का मालिक हो गया....गल्ले पर बैठा हूं, ऐसे सपने देखता।

दीवाली की छुट्टियों में होटल की कप-प्लेट मुफ्त में धोता....सिर्फ भोजन पर। सबका विश्वास मिलता गया। अब नारायण, रामदास और मैं एक साथ पढाई करते। नौ बजने के बाद होटल के नौकर और हम होटल के मालिक बन जाते। होटल की बासी चीजें चट् कर जाते। कर्णे के घर से उनके लड़कों के लिए खाना आता। उसी में मेरा भी हो जाता। पर कुछ भी हो, मुझे मिले लोगों में नारायण पहला भला आदमी। वह मेरे बिना रात का भोजन कभी न करता। रामदास के घर का नौकर-सा कुछ काम मैं करता। उसकी मां बहुत अच्छी औरत थी। बासी बचने पर देती। हम लड़के एक कक्षा में पढ़ रहे थे। अब कर्णे और रास्कर दोनों का सहारा था। खाने का कोई समय नहीं था, पर मिल रहा था। अच्छा नहीं था पर पेट की आग बुझ रही थी। सुबह चार बजे होटल के नौकर उठ जाते। चूल्हा-भट्टी जलाते। मुझे भी आदत हो गई थी। सुबह स्कूल का समय होने तक होटल में काम करता। भेल, चाय, भजिए कुछ भी खाकर स्कूल जाता। शाम को स्कूल से आने के बाद रात दस बजे होटल में काम करते। दस के बाद पढाई की तो की नहीं तो सो जाता। रास्ता तय हो रहा था, पर दिशा तय नहीं थी। परंतु शहर में रहने की आदत हो रही थी। अब तक संडास के लिए पानी ले जाने का कारण नहीं था। पत्थर से ही काम चल जाता। अब दूसरों को देखकर पानी ले जा रहा था। संडास में बैठने की इच्छा न होती। पर टट्टी के लिए दो मील जाना तकलीफदेह लगता। धीरे-धीरे आदत हो गई।

नवीं पास हो गया। परंतु दो विषयों - गणित और अंग्रेजी में फेल हो गया था। अच्छी समझ आ गई थी। मैं पढूँ बस इतना ही लक्ष्य था। कम से कम मैट्रिक तक तो पहुंचना ही है। फिर गर्मी आई। इच्छा न होते हुए भी बाप ले गया। सीजन बजाया। पर मन न लगता। घर के हालात नारायण को मालूम थे। उसे मैं बताता, 'नारायण, जहाँ लोग टट्टी के लिए जाते हैं, वहाँ रहना पड़ता है। जहां कचरे का ढेर पड़ा हो वहाँ भोजन करना पड़ता है। और छोटे से बच्चे के कहने पर भी बजाना पड़ता है और तुम लोगों के साथ घूमना, शर्म आती है। यह धंधा करने की इच्छा न होती। अब तक कुछ न समझता। अब ऐसी लाचारी असहनीय हो जाती है। पर नारायण अत्यंत समझदार लड़का था। मैं जहाँ बजाने जाता वहाँ चार-पाँच दोस्त लेकर आता। सीना फूल जाता। अपने दोस्त मेरे लिए, जहाँ



मैं हूँ साइकिल से आते हैं। और विशेष बात यह है कि अपनी सारी हालत मालूम होने के बाद भी आते हैं। सच तो यह है कि बड़ा गर्व होता।

नारायण एक जान हो गया, उसके व्यवहार से। कक्षा में बहुत होशियार था। मित्रों में प्रिय। सबको अपना-सा लगता। उसका कोई शत्रु ही नहीं था। दरअसल वह उम्र उछल-कूद करने की थी पर वह इतना गंभीर कि मुझे कहता, 'बेटे, मान्या अपने को यदि कोरी औरत चाहिए तो हमें दूसरों की बेटियों की छेड़खानी नहीं करनी चाहिए। औरत काँच के बर्तन के तरह है...?'

कभी-कभी वेश्या देखने पर कहता, 'इन औरतों ने क्या किया होगा....इंसान ही तो हैं वे ?...'

उसके इन व्यवहारों से मन पर गहराई से संस्कार हो रहे थे। स्त्री और निचली जातियों के बारे में उसके मन में अपनापन था। शायद इसलिए उसने मेरी इतनी मदद की थी।

दसवीं कक्षा में पहुँच गया था। अब फलटण घर ही लगता। नारायण ने गाँव में पढाई के लिए कमरा ले लिया था। रामदास, नारायण, मैं और पोपट जगताप नामक एक महार जाति का लड़का था। हम अत्यंत निकट के मित्र रहते थे। मुझे किराया तो देना ही न पड़ता पर अब मैं होटल में काम करूँ ऐसा नारायण को न लगता। वह कहता था, 'बेटे, तुम अब यहाँ काम मत करो...हमें यह अच्छा नहीं लगता। कक्षा के लड़के-लड़कियाँ हँसते हैं। तेरे लिए कोई दूसरा धंधा देखेंगे। पैसे मैं दूंगा।'

बाप कभी विवाद करता तो उसे भी नारायण समझता। उसने दस रुपये की पूँजी दी। साईनाथ बेकरी से पाव-बटर खरीदा। बड़ी थैली खरीदी। पैसे उसी ने लगाये थे। दूसरे दिन भोर में ही 'पाव- बटर...' कहता सारे गाँव में मैं घूमा। सुबह सात-आठ बजे तक बटर-पाव खप जाते। डेढ-दो रुपये मिल जाते। अब अच्छा धंधा करने लगा था। किसी की चाकरी नहीं। घर से फूटी कौड़ी न मिलती। खाने की हायतौबा। घर की ओर मुड़ने की इच्छा न होती। माँ किसन्या, समी, लाली, पुष्पी बाजार आते तो मुलाकात होती अन्यथा तीज-त्यौहारों पर घर जाता। बाप ने शादी का तकाजा शुरू कर दिया था। पर मैं प्रतिसाद न देता और उसे भी आशा लगी थी कि मैं मैट्रिक हो जाऊंगा। दिन बिना झंझट के जा रहे थे। रोज सुबह से शाम तक दो तीन पैकेट सिगरेट लग रही थी। पर सारा कुछ चोरी से पीता। सुबह की ठंड होती तब सिगरेट बढ़ जाती। निरगुड़ी के लड़के फलटण में ही थे। उनकी मुलाकातें होती रहतीं। वे ट्यूशन के लिए जाते। मुझे भी लगता कि ट्यूशन लगाऊं। पर संभव नहीं था। जिस लड़की के कारण निरगुड़ी छूटी उस लड़की को भी उसके बाप ने मुधोजी हाईस्कूल में दाखिला दिया था। वह भी दसवीं में थी। दिखने में बहुत सुंदर गोरी लड़की थी। परंतु, वह सामने आने पर मैं ऐसे निकल जाता जैसे से देखा ही न हो। चोर की तरह नीची आँखें किए निकल जाता। कभी-कभी मन में विचार आता कि उसके साथ बातें करें, वह मेरी ओर देखती है...हँसती है, उसे बताने की इच्छा होती कि .... तुम्हें जो बताया गया है, जिसकी चर्चा हुई है वह सही नहीं है। वह झूठ था। मैं उसके सामने जाना चाहता था, पर कभी हिम्मत ही नहीं हुई जीभ चली ही नहीं। मन में डर होता। मैं सहज

बोल जाऊँगा, पर क्या वह सुनेगी ? वह एक तमाचा लगा देगी तो ? बाप को बताया तो..मन में आई बात पुरईन के पत्ते पर गिरी बूंद-सी फिसल जाती । और मैं चुपचाप आगे निकल जाता ।

पूरे चार वर्ष में मैं उसे, एक बार भी नही बता सका । बोल नही सका । पर मन में सतत विचार आता कि यदि मैं शादी करूंगा तो अंतरजातीय और वह भी पाटिल की लड़की के साथ । मन में तो पक्का तय कर लिया है, परंतु यदि नहीं जमा तो...वास्तविकता का ध्यान आने पर सपनों के पक्षी वास्तविकता की आग में झुलस जाते ।

पाव-बटर का धंधा ठीक चल रहा था । पढाई भी हो रही थी और पेट भी भर रहा था। पर पैसों के बारे में मेरा हाथ ढीला हो जाता । पैसे की कीमत मैं समझ चुका था । मिला तो वह चाहिए था । वैसे भी दो रुपये में दो वक्त का खाना न मिलता । नारायण का ध्यान था । शरीर पर कपड़े नहीं थे । पैसे बचाने की बात कई बार सोची पर हाथ में कैंची थी। पाव-बटर बेचने के कारखाने के साईट पर जाता । कारखाने के पास सौ-पचास झोंपड़ियां होतीं । गन्ने काटने वालों की गन्ने की ही दड़बेनुमा झोंपड़ी में लोग रहते । संडास नहीं था। मैं सुबह पाव-बटर लेकर जाता । औरतें रास्ते के किनारे ही टट्टी के लिए बैठतीं । कोई नहाती होतीं, खुले में ही । मन झुलस जाता । सच तो यह है की मैंने अपनी मां को इसी तरह नहाते हुए देखा था । ठीक मां याद आती । मैं 'पाव-बटर' कहता हुआ उन झोंपड़ियों के सामने से जाता तो नंगे-अधनंगे बच्चे मेरे इर्द-गिर्द इकट्ठा हो जाते । मजदूर गन्ना काटने निकल जाते। औरतें चूल्हे पर चार रोटियां सेंकने की जल्दी में होतीं । चाय बनती होती। मेरी पाव-बटर की खपत होती । यूं ही जांनकारी के लिए एक बार पूछ बैठा,

'क्या इतनी जल्दी जाना पड़ता है ?'

एक बोला, आज देर हो गई है । रोज भोर में ही गन्ने के खेत में जाना पड़ता है । दिन उगने के पहले एक गाड़ी गन्ना कट गया तो ठीक, नहीं तो दिन भर गन्ना तोड़ कर दस लोगों का पेट कैसे भरेगा ? शाम को लौटता हूं । बच्चे साथ ही होते हैं वे भी गन्ना जमा करने में मदद करते हैं । मेरी औरत गन्ना जमा करती है...गट्ठा बनाती है और मैं गट्ठा गाड़ी में रखता हूं । सारे खटते हैं, तब घर चलता है ।'

मैं आगे बढ़ जाता । ये परिवार सीजन आने पर छह महीने रहता है...कारखाने बंद होने पर चला जाता है...सारी भटकन...अपने जैसा ही ।

दुनिया में कुछ ही लोग क्यों गरीब हुए होंगे ? भगवान इन्हें ऐसा ही गरीब क्यों रखता है ? कई प्रश्न दिमाग में उठते, पर सभी फिर घुल जाते ।

इसका उत्तर न मिलता, मिलने पर इससे मैं सहमत न होता । दसवीं की पढाई चल रही थी । कभी-कभी सिनेमा देखने जाता । कक्षा के दोस्तों के साथ नहीं तो नारायण, रामदास के साथ-सिनेमा की भीड़ में घुसते । टिकिट के लिए धिंगामुश्ती करते । चार-पांच टिकट अधिक खरीदते । सिनेमा शुरू होने पर अधिक पैसों से बेच देते । सिनेमा मुफ्त में हो जाता ।

गणित और अंग्रेजी हमारे दुश्मन..वे और मैं एक पंगत में कभी नहीं बैठे । गणित का सत्र शुरू होने पर अपनी नींद का ही समय होता । गोले मास्टर डांटता, पर अपनी झपकी



चलती रहती । अंग्रेजी का सत्र पहला ही होता । परंतु मेरा देरी से आना तय होता इसलिए चंपत रहता । दसवीं में रहते हुए ही एक लड़की के पीछे पड़ा । कारण वह मेरे साथ बात न करती। मैं ही पीछे-पीछे घूमता । उसका सत्र न होने पर मैं अपना सत्र का नागा करके उसके पीछे जाता । चिट्ठियां तो कितनी लिखीं परंतु सारी नहर के पानी बहते हुए पहुंच गई - पंढरपुर।

दसवीं की परीक्षा करीब आ गई थी । हाईस्कूल की पिकनिक जाने वाली थी । पन्हाला, जोतिबा, कोल्हापुर देखने के लिए । ट्रिप के लिए कभी नहीं जा पाया था । कक्षा के काफी लड़के जाने के लिए नाम दे रहे थे । मन में हमेशा लगता मैं भी जाऊं । कैसी होती है पिकनिक देखना चाहिए मौज-मस्ती करनी चाहिए । परंतु पचास रुपये भरने होते । उसका क्या करें? घर का नाम लेने पर आग में जाने-सी बात होती । दोस्तों से पांच-दस मिलने की उम्मीद थी । पर इतने पैसे मिलना संभव नहीं था । कई लोगों से पैसे मांगे । पर किसी ने नहीं दिए।

संतोष इतना ही था कि नारायण इस पिकनिक में नहीं जा रहा था । कक्षा के लड़के चिढाते। आपस में पिकनिक कि बातें करते ।

दिन करीब आने लगे । मन की घुटन, पेट की घुटन, सारा ज्यों अंधेरे में दौड़ने-सा था। मन उदास हुआ तो नहर के किनारे मन शांत होने तक रोता । बिल्कुल चुप होने तक पेट भर रोकर वापस लौटता । अब एक नया रास्ता सामने आ गया था । रुद्रभट की दुकान के सामने एक बोर्ड लगा था । पेपर बेचने वाला लड़का चाहिए । बस । जाकर पेपर बांटनेवाले लड़के की नौकरी कर ली । सुबह दो घंटे काम बढ़ गया । सुबह छह तक पाव-बटर बेचता। नौ बजे पेपर की गाडी स्टैंड पर आती । पेपर लेकर दुकान में आना होता । वहां पर बांटते। और 'केसरी', 'सकाल', 'सह्याद्री' कहता हुआ रास्तों से जोर- जोर से चिल्लाते हुए घूमता। चंदेवाले ग्राहकों को अंक पहुंचता । सुबह नौ से ग्यारह तक अखबार पहुंचाना जारी रहता। ग्यारह बजे अखबार बांटने के बाद कर्वे के होटल में भेल-भजिए खाता । खाकी पैंट में कमीज खोंसता और कापियां उठाकर हाईस्कूल की ओर भागता । भागदौड़ होती । रुपिया-डेढ रुपिया मिलता। इतनी भाग-दौड़कर स्कूल पहुंचता तो वहां प्रार्थना खत्म हो चुकी होती । देर से आनेवालों के लिए प्रभो सर की सीटी के नाड़े का या रूल की मार नहीं तो ग्राउंड साफ करने का दंड दिया जाता । चुपचाप दंड सहना पड़ता । अक्सर पहला सत्र समाप्त होने पर ही हमारी स्कूल शुरू होती ।

एक बार ऐसी ही स्कूल छूटी । कर्वे के होटल में सात बजे तक कप प्लेट उठाए । चाय पी-मुफ्त की ही । बस्ता उठाया और कमरे की ओर चल पड़ा था । पास में ही एस-टी स्टैंड हैं । रास्ते के किनारे लाईट के नीचे लोगों की भीड़ इकट्ठा थी । झुंड में सब आगे बढना चाह रहे थे । भीड़ में गया । ढकेलता हुआ आगे पहुंचा तो वहां तीन-चार लोग तीन पत्ते खेल रहे थे । मेरे लिए वैसे खाली समय था । काफी देर तक खेल देखता रहा । सामने के आदमी का हाथ पूरे अभ्यास से इधर- उधर हो रहा था । तीन पत्ते फटाफट उठाकर दिखा रहा था। एक आदमी ने पत्ते पर दस रुपये लगाये । उसने पत्ता बराबर पहचान लिया था । उसे दस के बीस रुपये मिले । मैं और आगे आ गया । अब मैं भी तल्लीन हो गया था । सामने का

आदमी राजा, रानी, गुलाम बड़ी सफाई से डालता। लगाने वाला धोखा खाया कि पैसे जमा हो जाते। जीतने पर दूगुने मिल जाते। काफी देर देखता बैठा। बस्ता हाथ में ही था। मुझे यहां किसी ने देख लिया तो हो-हल्ला हो जाएगा, ऐसा एक बार लगा, परंतु इतनी भीड़ में कौन पहचानेगा सोचकर देखता बैठा रहा। पड़ोस में ही पान की दुकान थी। वहां से सिगरेट ली। पान खाया, कमीज ऊपर निकाली, टोपी जेब में रखी। किताब-कापियां पानवाले की दुकान में रखीं। आंखों के सामने नोट दिखाई देने लगे। बस भीड़ में घुस गया। जेब में दो-तीन रुपये थे। एक रुपया लगाया। पहले ही रुपया के गुलाम ने दो रुपये दिये। फिर लगाया। फिर-फिर लगाता रहा। जीतता गया। पांच-सात रुपये आ गए। अब भीड़ छंट रही थी।

जुएं का नशा चढ़ गया था। खेलते-खेलते पान की पिचकारी गटर में थूंकी। थूंक की छोटी-सी बूंद पत्ते पर गिर गई। वह आंखों से दिखाई न देती। अब तमाशबीनों की भीड़ कम हो गई थी। मैं ताश के पत्ते पर गिरी पान की बूंद का ध्यान रखकर पत्ता पहचानने लगा। करीब-करीब दो-तीन घंटों में सत्तर रुपये कमाये। ताशवाला बहुत चिढ़ गया था। फिर-फिर पत्ता निहार कर देख रहा था। उसके ध्यान में कुछ न आता। वह पैसे हार रहा था। वह तू-तड़ाक पर उतर आया। इस राजा की मां चोदूं, इस मुएं को ही कैसा फल रहा है। कहकर झल्ला रहा था। उसने बीच में ही खेल रोक दिया और नए पत्ते निकाले। नए पत्ते आने के बाद मैंने खेलना बंद कर दिया। तभी पांच-सात लोग अचानक आए। 'ए मादरचोद क्यों, ऐ भेनचोद' कहकर मवाली लड़के आगे आए। मैं डर गया। झख मारी और खेला, ऐसा लगने लगा। एक-एक आगे सरक रहा था।...मैं कहां भागूं, समझ न पड़ता। वे कहते 'खेल', और मैं मना करता। मेरे खेलने से मना करने पर जोरदार झापड़ थोबड़े पर पड़ी। दांत होंठों में घुस गए और खून की धार बह निकली। मैं प्रतिकार न कर सकता। वे दो- चार थे और मैं अकेला। पेट में, पीठ में जहां संभव था, वे घूंसे जमा रहे थे। मैं चिल्ला रहा था। लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। क्या हुआ, क्या हुआ - कहते लोग आने लगे। भीड़ बढने पर वे भीड़ में गायब हो गए। जेब के सारे पैसे तो जा ही चुके थे। ऊपर से पेट भर मार खायी थी। मुंह का खून हाथ पोंछते हुए पानवाले के दुकान से कॉपिया लेता हुआ पुलिस आने से पहले ही भाग खड़ा हुआ था। हड्डियां अच्छी सिंक गई थीं। सारा शरीर दुखता-पिटता रहा। गूंगी की इज्जत लुटी न चीख न चिल्लाहट। सब चुपचाप सहा। ऐसे में दो दिन का काम और स्कूल बर्बाद हो गए। दसवीं की परीक्षा हुई। स्कूल को छुट्टी लगी। तब बाप फलटण से घर आ गया। अब सीज़न खत्म होने तक बजाना है। गाँव में मन न लगता। दोन-चार दिन में फलटण जाना होता।

अखबार का काम छोड़ दिया। बीच में ही करवली का मेला, बकरे काटना, टांगना शरीर संचारना लोटपोट होना सब आ गया। उस साल ऐसा ही एक मामला आया था। कैकाड़ी के उफाड़े की बेटी ने वड़ारी रखा था। वह पति के घर न रहती और अब वह गर्भवती थी। पति अपने जाति के लोगों को बता रहा था यह व्याभिचारिणी है। यह बच्चा मुझसे नहीं है। इसे मैं छोड़ता हूँ। तलाक दीजिए। बस गवाह- सबूत आदि जमानतदार - सारा उसी गति



से हुआ। दोनों की ओर से सारा कुछ वसूल किया था। दारू की बोतलें खुली थीं। औरत को न्याय देना या आदमी को न्याय देना। एक बोला, 'बच्चू तुझमें पानी नहीं है तो भैंस पर दूसरे के पनघट पानी पीने गई तो क्या हो गया रे ? दूसरे तेरे पास रहेगी कैसे ?' ऐसा कहने के बाद ज्यों नाग ने उसे डसा हो, वह उछल पड़ा और उससे कहा, 'अरे तू अपनी औरत यहाँ पंचायत में ला उसे यहीं गर्भवती करता हूँ कि नहीं देख ले।'

बस। दोनों का वाद-विवाद बढ़ा। अब मार-पिटाई होगी यह सोचकर सारे लोग भाग गए। लड़के-बच्चे तितर-बितर हो गए। औरतें भाग गईं। और पंचों ने मामला समेटा। पंचों ने उस औरत को जाति से निकाल दिया। उसके पति को तलाक दिया। हर्जाना लिया और दूसरी शादी की अनुमति दे दी। वह औरत लगातार रो रही थी। उसकी आंखों का पानी बाढ़ की तरह बह रहा था। सब उसे देखकर हँस रहे थे। और वह गाभिन गाय फिर बच्चे के बाप का पता खोजने जंगल-जंगल भटक रही थी। आगे उसके दिमाग पर असर हुआ। पति ने सारा नाटक करके पंचों को दारू पिलाकर फैसला करवाया था। उसी ने वड़ार की बाई रखेली के रूप में रखी थी। उस औरत को जो पागलपन लगा वह हमेशा के लिए हो गया। वह प्रसूत हुई परंतु बच्चे का क्या हुआ भगवान जाने ?

कुरवली के मेले के बाद परिवार फलटण आ गया। शांति चित्र मंदिर के सामने डेरा जमाया। चूल्हे सुलगे। हम इस जगह रहेंगे तो स्कूल के कई लड़के देखेंगे और चिढाएंगे, अपमान होगा इस डर से मैं और दत्या कैकाड़ियों के यहां का डेरा छोड़कर गांव की ओर गए। समय रात का 9-9.30 का होगा। शांति चित्र मंदिर के सामने से ही एस. टी. स्टैंड के लिए रास्ता जाता है। एस्. टी. स्टैंड के पीछे घडसुली की झोपड़पट्टी है। हम अंधेरे में सिगरेट फूंकते जा रहे थे। मेले की घटनाएं एक-दूसरे को बताते हुए, सिगरेट का कश लेते हुए जा रहे थे। इतने में अंधेरे से एक अधेड़ उम्र की औरत सामने आई 'ए लड़को' कहकर पुकारा। हम खड़े रहे। विठ्ठल के कारण पूछने पर...मुंह पर पावडर लगायी, पान खाकर मुंह लाल भक्क हुई औरत कहती है,

'अरे छोकरो, बैठना है क्या ?'

हमें कुछ समझ में नहीं आया। मैंने कहा, 'कहां ?' वह बोली, 'मेरे पीछे आओ।'

हम दोनों ने एक-दूसरे को इशारा किया। क्या माजरा है देखेंगे। यह सोचकर हम उसके पीछे गए। चार-पांच झोंपड़ियां पार कीं।

'गटर में पैर फिसले तो सारा बिस्तर गंदा कर दोगे' कहती हुई उसने झोंपडी का दरवाजा ढकेला। भीतर मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी। नीचे बोरा बिछाया था। उस पर चादर बिछायी थी। एक कोने में चाय का खाली बर्तन, टूटा कप और छानने का कपड़ा पड़ा था। हम दरवाजे पर ही खड़े थे। क्या करें समझ न पड़ता। वह क्या कह रही थी ठीक से न समझता। पहले विठ्ठल भीतर गया। उसके पीछे मैं पीछे गया। औरत सफाई से कह रही थी। वह क्या कह रही है, यह जानने के लिए मैं आगे गया। वह उठी और दरवाजा बंद करने लगी, तब मैं घबराने लगा। स्साली। यह कोई आफत लगती है, सोचकर उठने लगा। विठ्ठल को चिकोटी काटी...चलने के लिए। उसने आराम से दरवाजा लगाया

और विट्ठल की ओर देखकर बोली, 'अरे पास में कितने पैसे हैं ? बोलोगे कि नहीं..सिर्फ देखना है कि बैठना है ?'

अब लेकिन हमें भीतर ठंड लगने जैसी कुड़कुड़ाहट महसूस होने लगी। विट्ठल बोला, 'काहे के पैसे ?'

वह बोली, 'अरे नादान, क्या मुफ्त में बैठते हैं ?'

विट्ठल एक न सुनता...मुझे तो पेशाब लगी थी। स्साला, यहां कुछ गड़बड़ लगती है। विट्ठल को मैंने इशारा किया। इतने में उसने कहा, 'ऐ, अरे बैठ नीचे, पान खा, सिगरेट पी। ऐसी पेशाब थामकर क्या आया है।' इतना कहकर पिच् से उसने थूंक दिया।

मैं चुप बैठा था। विट्ठल के पास बारह आने थे। मेरे पास पैसे नहीं थे। वह बोली, बैठने के लिए पाँच रुपये लगते हैं। बारह आने में क्या होगा ?' साथ ही बारह आने ले लिए।

औरत आदतन फालतू बातें कर रही थी। कुछ कहने की गुंजाइश नहीं थी। विट्ठल की जेब देखी और मुझसे बोली, 'छोकरे तेरे पास कितने पैसे हैं ?' मैंने जेब में हाथ डालने का नाटक किया। मेरे पास पैसे नहीं हैं। इसलिये उठ खड़ा हुआ। वह गरज पड़ी, 'भड़ुए अरे फोकट में तो सब्जी भी नहीं मिलती और तू घिसने आ गया। उठो भागो।' कहती वह दौड़ी आई।

मैं इतना चकरा गया कि मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था। सीधे भागकर स्टैंड आया। विट्ठल पाँच मिनट बाद चलता आया। मन में इसे गालियाँ दे रहा था। पर वह औरत क्या कह रही थी यह विट्ठल को मालूम होगा। इसलिए उसके आने तक खड़ा रहा। वह हँसते हुए ही आया। 'स्साला यह क्या आफत है'...ये साला हँस रहा है और मुझे तो उसने भगा दिया। जो कुछ बताना था, वह उसी को बताया होगा। मन में उत्सुकता थी।

जब वह आया तो पहले मैंने उसे दो-चार गालियाँ पिलायी। वह बहुत हँस रहा था। उसने पान लिया दोनों ने पान खाये। स्टैंड खाली हो गया था। एक बेंच पर जा बैठा मैंने उसे पूछा। वह फिद्- फिद् हँसने लगा।

'स्साला तू इतना पढ-लिख गया पर तुझे अक्ल नहीं आई। अरे आठ आने में भी जमता है। मेरी उत्सुकता और जगाता वह बोला, 'और चार आने होते तो मैं बैठकर ही आता।' पर यह बैठने वाला क्या झंझट है यह मेरी समझ में न आता। वैसे विट्ठल मुझसे छोटा था। दिखने में बहुत गरीब...उसे मालूम है और मुझे नहीं, इस बात का मुझे बुरा लगता। मेरे चुप हो जाने पर वह बोला, 'अरे तू भाग गया और उसने मुझे सर्कस दिखायी।' अरे स्साले पहेलियाँ क्यों बुझा रहा है ? उस झोपड़ी में तुझे सर्कस कैसे दिखी ? मैं पहेली न सुलझा पाता। फिर वह जानबूझकर मेरी हँसी उड़ाने के लिए कुछ न बताता। तब मैं उठ खड़ा हुआ।

'स्साला। जाने दे उधर।' कहकर मैं उठ गया।

तब वह बोला ठीक है बैठो मैं बताता हूँ, 'उसने साड़ी फेंक दी। बोली, मुझे देखो। मैंने देखा और बस हो गया। बारा आने में इतना ही मजा, रुपया हो तो आगे का...।'



अब मेरी ट्यूब जलने लगी। पलभर अपना मौका गंवाने-सा लगा। पर बार-बार वह जो वर्णन कर रहा था उससे घृणा होने लगी। रात के बारह बजने तक उसने लड़कियों के किस्से सुनाए। और पैसे देकर यह सब चलता है, यह पहली बार मालूम हुआ। मन में लगा...स्साला मैं सचमुच गधा हूँ। लड़की को ही पत्र लिखने में उलझा हुआ हूं। परंतु पास का रास्ता मुझे मालूम ही नहीं था।

अब वह कितना पैसा लेती है, यह पूछने का विचार करते हुए डेरे पर आया। पर पूरे जीवन में वह एक बार ही बोली थी। बोली तब जब उसके बाप का ट्रान्सफर कहीं और हो गया था। वह सारी कक्षा में लड़कों को बता रही थी। सबसे बिदाई ले रही थी। मैं भी उनमें से एक था। उसने कहा 'जाती हूं'। पलभर लगा कि रो पड़ूंगा। पर मन को समझाया...छीके में दही, पर अपनी तकदीर में नहीं, इसे भला मैं क्या कर सकता था।

गर्मी की सारी छुट्टियाँ बैंड बजाने में बीत गई। दसवीं का रिजल्ट आया। पास हो गया। अब ग्यारवीं में गया तो बहुत बड़े हो जाने का आभास हुआ। अब कॉलेज में जायेंगे सोचकर खुश था। सोमंथली के हनुमान को पेड़े चढ़ाए। कालूबाई को जाकर पेड़े बांट आया। घर में सब खुश थे। माँ ने तो सारा घर ही सिर पर उठा लिया था। जिससे भी मिलती उसे मेरे पास होने की बात के अलावा कोई बात ही न करती।

बारात रवाना हुई तब काफी समय हो चुका था। औरतों-बच्चों का शोरगुल चल रहा था। सारा गाँव शादी के लिए चला था। एक सौ एक गाड़ी बाराती निकले थे। बैलगाड़ियाँ सजी थीं। बैलों पर रंगबिरंगी झूल थी। गाड़ी के टट्टे पर नोटों का हार पहनाया था। बर्गे की शादी अर्थात सारे गाँव का उर्स हो गया था। बर्गे बड़ा आदमी था। गाँव में पहला ट्रेक्टर उस बर्गे ने खरीदा था। गाँव में सबसे अधिक गन्ना बर्गे का होता। पाँच-पचास लोग वहाँ काम करते। और बड़े बर्गे की लड़की की शादी थी। सारे गाँव को निमंत्रण था। लड़की की सगाई हुई तब भी सारे गाँव को लड्डुओं का भोजन था। चूड़ीवाला दो दिन तक सिर्फ चूड़ियाँ ही पहनाता रहा। सगाई के दिन शक्कर की चाय दिनभर चलती रहती थी। कितने लोगों ने खाना खाया होगा इसका कोई हिसाब नहीं था। बड़ी शान से सगाई हुई थी। गरीबों की तो उतने में चार-पाँच शादियाँ हो गई होतीं। दामाद भी उसी टक्कर का था। गाँव के लोग दूल्हे के तिलक के लिए गए थे। उस तिलक में भी गरीब की चार-पाँच शादियाँ हो गई होतीं। लड़की सुखी घर में जाने वाली है इसलिए सारा गाँव ही आनंदित था और इसलिए एक सौ एक गाड़ियों की बारात निकली थी।

हमारे गाँव का बैंड था इसलिए हमें 'सुपारी' अर्थात निमंत्रण दिया गया था। फलटण के पठान का बाजा भी था ही। और बारामती के झारे का बाजा भी था। दुल्हन के बाप ने तीन बाजे तय किये थे।

बाजे-गाजे के साथ गुलाल उड़ाती बारात निकाली। प्रवेश द्वार पर नारियल नींबू टांगा और बारात गाँव से बाहर निकलने तक बजाया। हमें एक गाड़ी में जगह दी। हम दस-बारह लोग ठूंस-ठूंस कर एक गाड़ी में बैठे। बारात कांबलीसर के लिए निकली। कांबलीसर के लगने वाले हर गांव में हम बजाते रहते। प्रवेश द्वार पर बारात से नारियल उतारकर

टाँगते । नींबू टांगते थे । सारा गाँव बारात के साथ था ।

गाड़ीवालों ने अपने-अपने बैल सजाए । जिस गाड़ी में जवान औरतें बैठी होतीं उस गाड़ीवान को बड़ा जोश होता । अपनी गाड़ी आगे जानी चाहिये इसलिए सब बैलों की पूंछ ऐंठते । कोड़े खूब बरसते और गाड़ियाँ धूल उड़ाती धड़धड़ाती हवा की तरह दौड़ती । बीच में एकाध गाड़ी का बैल बैठ जाता या तो किसी की गाड़ी की कील निकल जाती ।

ऐसा करते-करते बारात किसी तरह कांबलीसर में शाम के धुंधलके समय पहुँच गई । बाजा बजाते हुए गाँव से बारात गाँव से बारात ले जाते हुए मेले की तरह लोग एकत्र हुए थे ।

गाँव की एक बड़ी हवेली में जनवासा था । हल्दी लगने में भोर हो गई । आंखें गड़ रही थीं । ढोल बजा-बजाकर कलाई दुखने लगी थी । फिर भी हल्दी की औरतें खत्म होने का नाम ही न लेतीं । चने की घुघरी और एक-एक पैसा जमा कर बाप की धोती का पल्ला पूरा भर गया था । रोशनी होने पर नयी हल्दी हुई । दूल्हे की हल्दी उसके घर में ही लगी थी। दुल्हन की हल्दी जनवासेवालों के घर लगी थी ।

शादी का दिन आया । भागदौड़ चल ही रही थी । पांच-दस गाँव के लोग शादी के लिए आए थे । सम्मानित मेहमान आने पर अरे बैंड वाले कहाँ गये ? कह कर पुकारते । हम दौड़ते जाते ओर मेहमान को बाजे गाजे के साथ लाते । बड़े आदमी के घर शादी थी । सारे नेता लोग आये थे । शादीवाले के घर बड़ा कमानी मंडप बनाया था । मंडप इतना सजा था कि नजर लग जाती । सुबह से लाउडस्पीकर चल रहा था । दूल्हा काफी पढ़ा-लिखा था। गोरा-चिट्टा । ऊपर से शरीर पर महंगे कपड़े । राजकुमार लग रहा था । मंडप में लोग न समाते । सुबह से पंगत चल रही थी । कितने ही हजार लोग खाना खाकर गये थे । जवान लड़के परोसने का काम खुशी से कर रहे थे । बीच में अलग बैठकर हमने खाना खाया । दोपहर का समय होगा । हम दुल्हन को शादी से पहले रिश्तेदारों से मिलने की रस्म के लिये ले गये । पांच-पचास लड़के-लड़कियाँ सहित सौ-दो सौ लोग इस रस्म के लिये गये दूल्हे को भी उनके बैंड वालों ने बाजे- गाजे के साथ लाया था । दूल्हा और दूल्हन की ओर जवान लड़के- लड़कियों का हंसी मजाक चल रहा था । रस्म की जगह दूल्हे के दोस्तों ने फोटो खींचने के लिए कैमरा लाया था । दूल्हा-दूल्हन का फोटो खींचने की इच्छा उन्होंने बताई होगी । दूल्हे के भाई ने दुल्हन के भाई से कहा, "बर्गे दूल्हा फोटो खींचने के लिए कह रहा है । दुल्हन को झूले पर बैठाइये । झूले में बैठकर फोटो खींचना है । बर्गे देखता ही रह गया । वह बोला, 'अरे साहब अभी शादी लगी नहीं है । फिर फोटो की बात लेकर क्यों बैठ गये । शादी लग जाने दो फिर चाहे जितने फोटो खींचो ।'

बस्स । दूल्हे तक यह बात पहुंची और दूल्हा चिढ गया । स्साला फोटो अभी खींचना है । बस चारों ओर एक ही चर्चा होने लगी । बड़ा बर्गे थोड़ा शांत आदमी है । उसने दूल्हे को समझाने की कोशिश की ।

'जमाईजी अपने में शादी लगने से पहले दूल्हा-दुल्हन एक जगह नहीं बैठते । आप शादी लगने के बाद फोटो खिंचवाइये । यदि आप चाहें तो बाराती से फोटो खींचने वाले लोग ट्राली



भरकर ला देंगे । पर अभी जिद ना करें ।'

दूल्हा बोला, 'मामा शादी के बाद फोटो खिंचवाने के लिए आप क्यों कहते हैं । फिर तो खीचेंगे ही, शादी नहीं हुई तो क्या हुआ ? शादी तो होगी ही । शादी के पहले फोटो खींचे तो क्या बिगड़ेगा ।'

आंखें लड़ाता हुआ, चार लोगों के बीच दामाद ने मेरी बात नहीं मानी । उसकी कोई चाल है । यह ताड़कर बर्गे गरम हो गये । स्साला, क्या हल्दी लगने से ही इसकी पत्नी हो गई ? बर्गे बोला, 'देखिये जी हममें शादी के पहले फोटो उतारने की रीत नहीं है । हम फोटो नहीं उतारने देंगे । दूल्हा भी आग-बबूला हो गया, 'मामा फोटो उतारने नहीं देते तो यह शादी भी नहीं होगी । मैंने हल्दी लगाई तभी शादी हो गई है ।'

बस । ससुर-दामाद दोनों का विवाद बढ़ा । बाकी पगड़ीवाले लोग भी बोलने लगे । तूफान -सा यह फोटो का लफड़ा सारे गाँव में फैल गया । इज्जत उछालने के कारण बर्गे चिढ़ा हुआ था । उधर मेहमानों ने हमारे गाँव में आकर हमारा अपमान किया, इसलिए शादी घर के लोग आवेश में आ गए थे । सयाने-समझदार और नेता लोग यह झगड़ा मिटाने जुटे थे । परंतु मान-अपमान की चिनगारी भड़क उठी थी । सारे लोग यों नशे के आवेश में आ गए। दूल्हे के बाप का स्वभाव शांत था । वह भी आग-बबूला हो गया; इनकी ऐसी-तैसी । इस तरह के इनके संस्कार होंगे मालूम नहीं था । ये बर्गे के लोग मांग-महार ही तरह लड़ने पर उतारू हो गए । फोटो निकालने देंगे तो शादी होगी, नहीं तो कहो जाओ अपनी माँ के पास वापस। ऐसी छपन्न रांड जमा कर लाऊंगा । कहो सिर सलामत तो पगड़ी हजार । उसे क्या कमी है ।' कहने लगा । बाराती भी कुछ कम नहीं थे । जिस गाँव के बेर उसी गाँव के बबूल। अब झगड़ा होगा और सौ-पचास के सिर फूटेंगे ऐसा समय आ गया था ।

दोनों ओर के लड़के मनमानी करने लगे । देखते-देखते झगड़ा सुलग उठा । तब बाराती जागे । सारे बारात की ओर भागे । 'स्साला दूसरे की बुढ़िया के लिए क्यों कर अपनी मूंछ उतारें ?' कहकर बचावात्मक भूमिका ली और गाँव में लोगों का खून बहेगा । इसलिये भागकर जनवासा घर में जा बैठे । लड़कों और औरतों का शोरगुल चल रहा था । जो भी दिखता उसे गाड़ी में डालकर गाड़ी भगा रहे थे । ऐसा करते- करते उधर झगड़े का शोर चरमसीमा पर पहुंच रहा था । इधर बारातियों की गाड़ियां उसी तेजी के साथ पीछे जा रही थीं । दुल्हन के चचेरे भाई ने हालात का अंदाज लिया । दुल्हन के चचेरे भाई ने दुल्हन को गाड़ी में डाला और गाड़ी हवा सी तेज सांगवी की ओर दौड़ायी । मार पिटायी के डर से बाप ने मुझे और विट्ठल को पहले ही बारातियों के घर भेज दिया था । झगड़े में हमारे लोगों को न लगे इसके लिए हम डर रहे थे । देखते-देखते औरत-आदमियों को लेकर गाड़ियाँ निकल पड़ी थीं । लोगों की भाग-दौड़ इतनी बढ़ गई कि कौन किसे मार रहा है, कुछ मालूम न होता । बाप, दत्तू, आप्पा, तात्या सब बैंड के बाजे बगल में दबाये भाग रहे थे । काफी घबरा गये थे ।

'अरे मार डाला चलो-भागो..कहते हमारे सारे बजिनयाँ भागने लगे । गाँव में इतना कोलाहल मचा कि पूछिये मत । जो भी पगडंडी मिलती, हम उससे सोमंथली जाते । रात काफी हो चुकी थी । दूसरे दिन बर्गे के घर के सामने सूतकी चेहरे लटकाए लोग इकट्ठा हुए

थे । दो-चार को अस्पताल ले गए थे । उसमें बर्गे के रिश्ते के काफी लड़के थे । शादी की आग बन गई । अब लड़की का क्या करना ? बर्गे के सामने एक बड़ी समस्या थी । पैसा बहुत था । पर अब पैसे का क्या उपयोग था ? सफेद कपड़े पर दाग लग जाए वैसे ही लड़की के कलेजे पर दाग लग गया । उसे क्या करें ? उसने खाना-पीना छोड़ दिया था । लड़की टूट गई थी । दूसरा रिश्ता खोजना इतना ही पर्याय बच गया था । नहीं तो मुँह में कालिख पुत जाने की बारी आ जायगी । बर्गे बहुत चिंता में था । आँख में चोंट लगी हो और उसे मसल-मसलकर और लाल करने जैसी स्थिति थी । फोटो उतारने देता तो...पर वह संभव नहीं था । और अब लड़की के लिए दूसरा घर मिलना भी आसान नहीं था । शादी नहीं लगी यह सही है परंतु हल्दी तो लगी ही थी । सारे लोग बर्गे की हवेली के सामने मौन बैठे थे ।

दिन बीतने लगे । पर रत्ना घर के बाहर दिखाई न देती । उसने बिस्तर पकड़ लिया। जख्म बहुत गहरा था । गाँव पूर्ववत हो गया । लेकिन बर्गे के घर में भयंकर शांति थी । रोज काम निपटाकर दिन डूब जाता । पर बर्गे की रत्ना की शादी न जमती । दहेज में सोने और नोटों का लालच भी दिखाया पर कोई उपयोग न होता । बर्गे दिनोंदिन टूटता गया । इज्जत का तमाशा अपनी आँखों से देख रहा था । इधर बेटी सूखने लगी थी । मनहूस कहकर उसे न जाने क्या-क्या कहते । शादी के बाद विधवा हो जाती, तब भी चलता । कम से कम उसके नाम से दिन तो निकाल लेती, पर यह कुंआरी विधवा कैसी होगी । इसलिये औरतें तरह-तरह की बातें करतीं । कभी बीच में ही बाप कहता, 'पाटिल की रत्ना चिल्लाती उठती है ।'

बीच में ही बताता, 'वह देखो, उसकी ओर देख कर हँस रही है । शरीर पर कपड़े नहीं रखती, उसे झटके आते हैं । पाटिलन भी बहुत टूट चुकी है । वह खाना नहीं खाती और पहले की तरह बेखटके बात भी नहीं करती । अन्यथा पाटिल की हवेली ठहाकों से गूंजती रहती । परंतु इस लड़की की शादी की झंझट के बाद सिर्फ सुतक ही रह गया है वहाँ ।

मैं हाईस्कूल के लिए फलटण जाता । हर साल मेहमान देखने आते और जाते । शादी न जमती । पाटिल के घर का रौब-दाब भी कम हो गया । और गाड़ियाँ भी कम हो गईं। एक बार रविवार के बाजार के लिए मां गई थी । उसका चेहरा उदास था । मैं जहाँ रहता, उस कमरे में वह आई थी । मैं इधर-उधर की बातें करता । जाते-जाते विषय निकला ।

माँ बता रही थी, 'पाटिल की रत्ना पर बहुत ज्यादती हुई ।'

शुक्रवार को पूना लेकर गए थे, स्पेशल टैक्सी में, पर उपयोग नहीं हुआ। कल उसकी लाश वैसी स्पेशल टैक्सी में वापस ले आए । सिर्फ हड्डियों का ढांचा मात्र रह गई थी । सारा गाँव इकट्ठा हुआ था । काफी लोग रोये । लड़की बहुत गुणवान थी । माँ देखते-देखते रोने लगी । उसकी परोसी गई बासी रोटियाँ और मिर्च और साग और पता नहीं क्या-क्या यादकर बता रही थी । यों घर का कोई व्यक्ति चला गया । इस तरह उसकी आँखें भर आई थीं। मैं भी रूआँसा हो गया । हमने भी दूर-दूर से, पर खेलते हुए देखा था । परंतु उसके साथ किसी ने शादी क्यों नहीं की ? हमारे में तो एक-एक औरत कितनी शादियाँ करती हैं । एक



पति के छोड़ देने के बाद औरत दूसरे पति के साथ गृहस्थी सजाती है, यह कैसे ? माँ बता रही थी,

'हम तो कंगाल । हममें चलता है । उनमें नहीं चलता । बाबा लड़की यानी कांच का बर्तन ।'

एक मुहूर्त पर शादी की काफी भीड़ थी । परंतु बाप ने एक का ही काम लिया था।

स्पर्धा में सुखड़ी का बाजा था । रिहर्सल लगातार चलती रहती । साखरवाड़ी में शादी थी । शहर में गाने के लिए कम से कम चार-पाँच गानों की धुन बैठनी चाहिए । इसलिए रात-दिन रिहर्सल चलती रहती । गाँव के लोग टोकते रहते, 'अरे लोगों को सोने तो दो । लगातार भों-भों लगा रखा है । खोपड़ी खराब कर दी है ।'

कोई-कोई आकर सुनता बैठता ।

साखरवाड़ी बजाने के लिए गए । सारी बारात बजाने लाए । मैं ठेके में ढोल पीट रहा था । तल्लीन हो जाता । सिनेमा के गाने बजाता । दूल्हे को लेकर गाँव आए । बजाते-बजाते मेरी नजर सामने के छज्जे पर पड़ी और ताल का ठेका गलत हो गया । छज्जे पर था। वही लडकी थी, जो अपने पिता के ट्रांसफर के कारण फलटण छोड़ आई थी । बजाने से मेरा सारा ध्यान उचट गया । ठेका गलत होने लगा । सामने दूसरी पार्टी थी । मैं गलत हो गया। बाप बगल में ढोलकी बजा रहा था । इतने लोगों के बीच बाप ने कमर पर लात मारी और 'क्या बजा रहा है' कहकर दूसरी भी जमा दी । मेरी हालत खराब हो गई थी । वह छज्जे पर फिद् से हँस रही थी । इधर मैं होश में आकर बजा रहा था । गाना खत्म हुआ । बाप गुस्से से लाल-पीला हो रहा था । ध्यान कहाँ होता है । अब बारात में कम से कम 'ठीक बजाओ' कह रहा था । मैं शर्मिंदा हो रहा था ।

और बारात लेकर आँखें झुकाए दूल्हा मंडप में लाया गया । शाम को बारात में बहुत अच्छा बजाया । सामने के दूसरे बैंडवाले ने पीठ थपथपायी । बाप के शरीर पर मुट्ठी भर माँस चढ़ गया । आँखें तलाश रही थीं । पर मेरा अपना कोई दिखाई नहीं देता ।

ग्यारहवीं की कक्षा में कोई परेशानी नहीं थी । दसवीं में गणित और अंग्रेजी को छोड़ दिया था । और अंग्रेजी के बिना मैट्रिक को कौन पूछेगा ? अब काफी अच्छी समझ आ गई थी । अब माँ-बाप को आप जैसे सम्मानजनक संबोधनों से पुकारने लगा । भाषा में काफी फर्क आ गया था । अंग्रेजी लेकर ग्यारवीं में बैठा । वैसे सरल विषय लेने का झुकाव पहले से रहा है । गणित ने चुनौती दी थी । उसे छोड़ दिया । अखबार बेचते, कर्णे के होटल में कप-प्लेट धोते, बटर बेचते और खास बात अर्थात नारायण के साथ, रामदास के साथ मैट्रिक का साल खत्म हो रहा था । मैट्रिक की परीक्षा खत्म हुई । बैंड फिर चालू था ही । जून महीने में रिजल्ट लगा और सिर्फ नारायण पास हुआ बाकी मित्र कंपनी में कोई पास नहीं हो सका। हमेशा की तरह अंग्रेजी ने बहिष्कार किया था । बाकी विषय छूट गए थे, पर अंग्रेजी का क्या ? पिता ने घर में कहा,

'इतने छह महीने निकाल...अंग्रेजी का जो भी जरूरी है ध्यान देकर ठीक से पढ़ो और शादी कर सही रास्ते लग जाओ...बस हुआ इतना सत्यानाश ।' चुपचाप सुन रहा था । अब

तक जिस प्रकार ढकेलता आ रहा हूं, वैसा ही आगे जाना होगा मन में तय कर लिया। अंग्रेजी की ट्यूशन लगायी।

अब नारायण को कोल्हापुर में कृषि कॉलेज में दाखिला मिल गया था। वैसे हम सब दुख-तकलीफ में ही थे। परंतु नारायण को दाखिला मिल गया। सब खुश थे। नारायण बोला, 'तुम सबको छोड़कर जाने की इच्छा नहीं होती, पर जाना होगा। घर के लोगों की ज्यादा इच्छा है। तुम सब लोग अक्तूबर में पास हो जाओ। कोल्हापुर आओ। फिर हम एक कॉलेज में भले न रहें, एक कमरे में तो रहेंगे।

मेरी मदद का हाथ खिंच गया। इसलिए मुझे तो कुछ ज्यादा ही बुरा लग रहा था। जाने से एक दिन पहले वह सोमंथली आया था। भोजन किया और पिताजी से बोला, 'चाचा, आप चिंता न करें। चार साल हमने उसे संभाला है। उसे पढ़ने दीजिए। मैं कोल्हापुर गया, तब भी बाकी सब लड़के यहाँ हैं। मैं उन्हें बताऊंगा। और इसे अगले वर्ष कोल्हापुर ले आऊंगा।

माँ-पिता उसे बहुत मानते थे। पिता ने सिर हिलाया...उसे अलग ले गए और बताया...'उसे पढ़ने दो, मैंने उसे मना नहीं किया पर उसकी शादी कर लेने दो। जाति-बिरादरी की प्रथा के अनुसार उसकी सगाई हो चुकी है। मेरी बहन ने अपनी बेटी वैसी ही रखी है। वह लड़की और कितने दिन रुकेगी ? ये लड़का है, इसका क्या, पर लड़की का क्या करें? तू उसे बता दे, दीवाली में शादी करनी होगी। नहीं तो नाते-रिश्तेदारों में मुंह दिखाना मुश्किल हो जाएगा।'

नारायण ने उन्हें काफी कुछ बताया और वह दूसरे दिन कोल्हापुर चला गया।

मैं, रामदास, सुभाष, नाना, पोपट सारे फिर एक साथ रहने लगे। नारायण भले कोल्हापुर चला गया है पर उसके पत्र साल भर आते रहे। उस साल सुभाष और रामदास की अच्छी मदद हुई। किराया कभी देना न पड़ता। पेट भरने तक कमाता। अंग्रेजी की ट्यूशन लगा ली थी। पढ़ाई कर रहा था। माँ-पिता कोकण में पेट भरने निकल गए थे।

अक्तूबर की परीक्षा का परिणाम आ गया था। मैंने सारे मित्रों के साथ दीवाली घर में मनाई। बहुत खुशी हुई। मैं पास हो गया था। मैट्रिक हो गया अब कम से कम मास्टर तो हो ही सकता था। अंग्रेजी में ठीक 35 अंक मिले। कॉलेज जाऊँ या नहीं इसी सोच में पड़ा था। नारायण कोल्हापुर जाने के कारण वह जोर देता कि कॉलेज में दाखिला ले लो। छह महीने सिर्फ घर बैठा रहा। पेट तक काम करता रहा। फसल कटाई पर माँ-बाप आए। उनके साथ काम करते हुए दो-तीन महीने बिताए। मन में कोल्हापुर जाना पक्का कर लिया था। पिताजी को शादी के लिए हां कर दी। इस कारण वे खुश थे। मां की बहू आनेवाली थी इसलिए वह खुश थी। और मैं पास भी हो गया था। इस कारण घर का वातावरण बहुत अच्छा हो गया था। मैंने मन में तय कर लिया था। ...शादी करनी नहीं है। अब फलटण और घर छोड़ना है। और घर का वातावरण अच्छा रखना है। काम करना है। वह साल आखिरी होने के कारण मग्न होकर बजाया करता। आज तक जितना पैसा नहीं मिला था। इस वर्ष मिला। पिता खुश थे।

बरसात शुरू हो गयी थी। कैकाड़ियों के शादी-ब्याह शुरू होने वाले हैं...पिता पैसे जमा



करने लगे थे। शादी का अंतिम निर्णय बता, कहकर पीछे पड़ गए थे। मैं पिता को छंकाता रहता। नारायण पास हो गया था। मैं, रामदास, पोपट बनकर, मारुति कालोखे चारों कोल्हापुर जानेवाले थे। मेरे सहारे तो दोस्त ही थे। एक दिन माँ से दस रुपये लिये। किसी को कुछ नहीं बताया। मन भर आ रहा था। इन सबको यह बताने की इच्छा होती पर बात जँचती नहीं थी। यह बताने के बाद मुझे कभी नहीं जाने देंगे।...शादी एकमेव जरूरी काम इनको लगता है। 'फलटण जा रहा हूं' कहकर बाहर गया।

दूसरे दिन सुबह सात बजे बस से चारों कोल्हापुर गए। घर के लिए विस्तार से पत्र लिखा था। कोल्हापुर पहुँचते ही पत्र पोस्ट में डाल दिया था। चारों नारायण के कमरे पर गए। उस रात हम चार और नारायण, पाँचों रात भर बातें करते रहे। अनेक विषय थे। लड़कियों से लेकर नौकरी तक....

जीवन में पहली बार इतने बड़े शहर में गया था। दूसरे पूरे दिन शहर की बड़ी-बड़ी इमारतें और चौड़ी सड़कें देखने में बीता। उसी दिन कीर्ति कॉलेज में दाखिला लिया। अब नौकरी वगैरह कुछ नहीं कर रहा था। काफी समय होता। पहले दस-पंद्रह दिन खूब घूमा। रंकाला झील से विश्वविद्यालय तक सब कुछ देखा। घर, घर के हालात जैसे सब भूल गया। पहले रहने और खाने की बड़ी समस्या होती। अब नारायण, रामदास, मारुति इन मित्रों ने मेरी जिम्मेदारी उठा ली थी। सिर्फ कॉलेज की पढ़ाई करता। कॉलेज खत्म होने पर घूमता। सोता। सब कुछ कैसा शांत-सा था। वही दो-चार महीने जीवन के आराम के दिन थे।

दो-चार महीनों के बाद मैं मुफ्त का खा रहा हूँ, दूसरे पर जी रहा हूँ, यह टीस भीतर उठी और नौकरी करने की बात तय कर ली। 'पुढारी' अर्थात 'नेता' अखबार के 'वान्टेड' के विज्ञापन पढ़कर आवेदन भेजता रहता। इंटरव्यू देता। ऐसे नए काम मैंने लगा लिए। नौकरी तो मिलनी नहीं थी।

कॉलेज के दिन बहुत मजे से कट रहे थे। बीच-बीच में घर की याद आती। मन न लगता बस स्टैंड पर यूं ही चक्कर लगाता... अपने इलाके का आदमी भी मिल पाता तो अच्छा लगता। कॉलेज का स्टाफ अच्छा था। कक्षा यानी सौ दो सौ लड़के एक कक्षा में होते। प्राध्यापक लेक्चर देते। लड़के-लड़कियाँ एक साथ बैठते। इस कारण कक्षा में पढ़ने की बजाय गोरी-गोरी लड़कियां देखने में अधिक मन लगता। ऐसी सुंदर लड़कियाँ कक्षा में होतीं परंतु हम सिर्फ चार हाथ दूर नहीं, पाच-पचास हाथ दूर रहते। शहर की लड़कियाँ लड़कों के साथ इतनी खुलकर बातें करतीं कि देखते रह जाते। सिनेमा की नायक-नायिका जैसे बातें करते हैं वैसे ही ये लोग हैं। और हम दोनों जगह दर्शक ही रहे। कभी-कभी अकल्पनीय सपना लगता। मुंह में तमाकू का गला भरा होता। कहीं भी पिच् से थूकते खड़े रहते। दूसरे का जितना संभव था, अनुकरण करना चल रहा था। कमीज और पायजामा था, वह भी दस जगह से पैबंद लगा। स्वयं अपनी ओर देखने से ही किसी के साथ बात करने की इच्छा न होती। सौभाग्य से एक बात अच्छी थी। कॉलेज रयत शिक्षण संस्था का था और प्राचार्य से प्राध्यापक तक प्रत्येक व्यक्ति देहात का था। हम लड़कों से खुलकर बातें करते। मिल-जुलकर रहते। इस कारण कॉलेज का यह गुलाबी वातावरण हमें पराया न लगता। धीरे-

धीरे आदत होती जा रही थी । बातचीत में परिवर्तन मालूम हो रहा था । रहन-सहन में सुधार हो चला था। पिछले छह महीनों में घर से सिर्फ एक ही पत्र आया था । उसमें काफी नाराजी लिखी थी। वैसे पढ़ाई कर रहा हूँ इसकी खुशी थी । पर शादी नहीं की । माँ-पिता का सुना नहीं, इसकी नाराजी थी । अब इतनी दूर आने के लिए पिता के पास पैसे न होते। इसलिये हाथ मलने के अलावा उनके पास पर्याय नहीं था ।

कॉलेज का पहला दिन जीवन का अविस्मरणीय दिन था । आज भी यादें ताजा लगती। इतना नयापन था । कॉलेज में इतनी लड़कियाँ थीं पर...कभी भी किसी से बात करने का कोई कारण नहीं था । एक बार ऐसा ही प्रसंग आया । हिन्दी का पिरीयड चल रहा था ।...लड़के तल्लीन हो गए थे । इतने में कॉलेज के बाहर का लच्छेदार बालोंवाला, शरीर से पहलवान लगनेवाला एक युवक दरवाजे से भीतर आया और सीधे एक लड़की की बेंच पर बैठ गया। सर ने कई बार कहा पर वह बाहर न जाता । अंत में सर ने सत्र बंद किया और बाहर चले गये । उनके बाहर जाते ही वह पट्ठा उस लड़की को छेड़ने लगा । कक्षा में इतने लड़के थे । पर उसे कोई न टोकता, कोई न बोलता । सारी कक्षा शांत थी । वह इतनी अश्लीलता से पेश आ रहा था कि बताना मुश्किल है । अंत में, प्राचार्य ऊपर आए । वे उसे बाहर आने के लिए कह रहे थे । फिर भी वह न जाता । इतनी देर शांत रहने के बाद हम गांव से आए लड़कों का पारा चढ़ गया । 'स्साला ये किसी सर के कहने पर बाहर नहीं जा रहा है, इसे हाथ दिखाना चाहिए ।' कहते हुए उसे घेर लिया । प्राचार्य नीचे फोन करने गये । तब तक हम चार-पाँच लड़कों ने उसे पीटा । हमारी छीना-झपटी देखकर कक्षा के सारे लड़के टूट पड़े । यहाँ तक कि लड़कियाँ भी टूट पड़ीं । जिसे जो चीज हाथ लग जाती उससे उसे पीटता। सारा कॉलेज इकट्ठा हो गया । वह आदमी काफी जख्मी हो गया था । कुत्ते-सा गुर्राता हुआ निकल गया । परंतु ये शहर के लड़के बड़े संगठित रहते हैं । मुझे मार पड़ेगी, ऐसा मुझे हमेशा लगता । और मार-पिटाई में मैं पहली बार सफल हो गया था । वैसे इसमें मेरा कितना और कक्षा के लड़कों का कितना हिस्सा...यह बात तो थी ही । मैं केवल निमित्त मात्र था । पर इस घटना के कारण शहर के लड़के मुझे भाव देने लगे । प्राचार्य का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ, इतना तो हुआ । क्योंकि प्राचार्य ने तुरंत अपने कमरे में बुलाकर मेरा नाम, गाँव पूछ लिया । प्राचार्य भी मेरे ही इलाके के थे । प्रा. राम गायकवाड़, रयत शिक्षण संस्था के लेबर से पले-बढ़े, अत्यंत गरीबी में पढ़ाई कर आगे बढ़े हुए । अपने और इस आदमी के आँकड़े जमेंगे, ऐसा इसी कारण लगता रहा था । कुछ मदद लगने पर प्राचार्य के पास जाने लगा।

पी. डी. की परीक्षा पास आई थी । कॉलेज में घुल-मिल गया था । सारे वर्ष भर कमरे के मित्रों का सहारा ही एक मात्र पूंजी थी । कपड़े भी अदल-बदलकर उन्हीं के पहनता । कॉपी किताबें सब उन्हीं की होती । मुझे सिर्फ पढ़ाई करनी होती और पहली बार पी.डी. के सारे विषयों में पचास के आस-पास अंक मिले और अंग्रेजी जैसे शत्रु-विषय ने भी जीवन में पहली बार साथ दे दिया । अंग्रेजी में पास हुआ और इसी साल अच्छे-खासे अंक मिले। कॉलेज पूरा करने कर विचार था । आगे क्या ? यह सवाल तो था ही । पर अब आदत हो गई थी । अंधेरे में काफी आगे चलने के बाद कदम अपने आप ठीक पड़ने लगते हैं, ऐसा



ही हुआ ।

पी. डी. का साल पूरा हुआ । परंतु कोल्हापुर छोड़कर घर जाने की इच्छा नहीं हुई । गर्मी में वहीं रहा । कमरे के सभी सहपाठियों के घर से पत्र आते....पैसे आते । अपना ऐसा कभी नहीं था । नारायण का एग्रिकल्चर कॉलेज गर्मी में भी - छुट्टियाँ लगने पर चालू ही था । और इसी समय एक नया नाटक शुरू हुआ । एक दिन मैं और नारायण खाना पका रहे थे । इतने में पोस्टमन आया । नारायण के नाम से एक पत्र था । अधीरता से पत्र खोला और पढ़ने लगा । पत्र पढ़ने के बाद एक बड़ी समस्या खड़ी हो गयी । नारायण ने पत्र पढ़ा और यह भी गंभीर हो गया...पत्र फलटण से आया था, वह भी लड़की का था ।

बात यह थी कि हाईस्कूल में पढ़ते समय शिंदे नामक मित्र के घर हमारा जाना-आना था । वैसे शिंदे परिवार गरीब था । नाम मात्र जमीन थी उनके पास । बाकी सब कमाने-खाने वाली हालत थी । उसके माँ-बाप कोई धंधा करते । माँ बीड़ी बनाने का काम करती। बाप मजदूरी करता । हम सब घर की तरह उनके घर में जाते-आते । शिंदे की दो विवाह योग्य बहनें थीं । सच तो यह था कि वे हमसे कुछ बड़ी थी, कम से कम बराबरी की थीं। दोनों विवाह योग्य थीं । दहेज के अभाव में लड़की देखने का तमाशा होता पर विवाह तय न हो पाता । लड़कियां स्वभाव से, दिखने में औसत लड़कियों-सी थीं, पर शादी की दाल न गलती । उन्हीं में से एक का पत्र था । टी. बी. से ग्रस्त लड़के को ये लड़कियाँ दिखाई थीं। लड़की को लड़का पसंद नहीं था । इधर बाप के पास पैसा नहीं था । शादी न होती, ऐसे में जान देकर गरीब बाप को इस संकट से उबारने के आशय का यह पत्र लड़की ने लिखा था ।

पत्र पढ़ने पर हमने काफी विचार किया...क्या करना चाहिए समझ न पड़ता । सिर्फ ऐसा नहीं करना चाहिए, यह कोरा आशीर्वाद देने की इच्छा नहीं थी । पर कोई लड़का सुझाया जाए, ऐसा लगता पर लड़के ध्यान में न आते । और मिल भी जाते तो काफी कठिनाई थी। सबसे बड़ी बात थी कि लड़कियों को अपनी ही जाति का चाहिये था । और जाति के लड़के दहेज के बिना राजी होना असंभव था । दो चार दिन पहले हमने इस विषय पर काफी चर्चा की । फिर वह विषय ऐसा ही पड़ा रहा । पत्र का जवाब नहीं भेजा था । तभी जल्दी में उसका दूसरा पत्र मिला । एक लड़का देखने के लिए आया था, उसने प्रश्न भी क्या पूछा ? 'पायथागोरस का सिद्धांत बताओ' ऐसे काफी प्रश्न पूछकर पुरुष जाति लड़कियों को बाजार का कसाई जिस प्रकार से बकरे का बच्चा ठोंक-बजाकर खरीदता है, वैसे ही देखते हैं, ऐसा उसने लिखा था।

हम दोनों फिर चर्चा करने लगे । यह हमें ही क्यों लिखा होगा ? यह समझ में न आता। शायद हम समझ लेंगे इसलिए लिखा होगा, ऐसा लगता । फिर विषय छूट गया । पर चार दिन में फिर पत्र आया । उसमें हमें फलटण बुलाया था । क्या झंझट है, यह देखने हम फलटण गए । एक निर्जन स्थान पर संकेतानुसार उनमें से एक लड़की आई...हमने खूब बातें कीं। बिचारी सारी स्थितियों से तंग आ गई थी । उसने नारायण से सीधा सवाल किया, इतने अच्छे विचार तुम्हारे हैं, तू ही क्यों तैयार नहीं होता ?

नारायण ने उसे काफी समझाया...प्रेम आदि भी जताया, पर वह उठती हुई बोली तू

अकेला कोल्हापुर गया तो मैं जीवित नहीं रहूंगी । अब हम चौंक गए थे । क्या करें, समझ न पड़ता । अंत में घर में बात करके बताने को कहा । इससे वह सहमत थी । आठ दिन उसी सोच-विचार में था । घर जाने की इच्छा नहीं थी । पास हुआ, यह समाचार सिर्फ पत्र से लिख भेजा था । नारायण के माँ-बाप, मामा सबसे बात की...बिल्कुल अप्रत्यक्ष कोई संकेत न देते हुए । परंतु एक जाति के होने बावजूद, लड़की के चाल-चलन ठीक नहीं, यहाँ से तो पढ़-लिख कर अपने पैरों पर पहले खड़े हो, यहाँ तक बातें हुई और अंत में चार आकड़ेवाला दहेज देंगे क्या ? यहाँ तक सब कुछ कह सुन लिया गया । कोई मार्ग दिखाई न देता। अंत में नारायण ने सारे दोस्तों को इकट्ठा किया । सारे दोस्तों ने मदद का आश्वासन दिया। लड़की को कोल्हापुर लाकर वहीं शादी की जाए और मारुति कालोखे सबको संभाले । कम से कम नौकरी लगने तक मदद करें । कोल्हापुर के सारे दोस्त कम से कम खर्च में रहें और नारायण और उसकी पत्नी की मदद करें । नौकरी लगने पर वे अलग रहें ऐसा तय हुआ । और हम उस लड़की को लेकर रात ट्रक से लोनंद से कोल्हापुर पहुंचे । लोनंद से कोल्हापुर रेलवे से यात्रा की । लड़की सयानी हो चुकी थी । जन्म तारीख का प्रमाणपत्र लेने का समय नहीं मिला। कोल्हापुर आने के बाद सबसे पहले यह सब प्रा. चंद्रकांत पाटणगांवकर को बताया । उन्होंने आर्य समाज के दयानंद हाईस्कूल में विवाह की व्यवस्था करना स्वीकार किया । मैं फिर चुपचाप फलटण गया । स्कूल में उस लड़की का भाई बना, झूठ बोला और जन्म-तारीख का प्रमाण-पत्र लिया और बिना किसी को कानोकान खबर लगे फलटण से तुरंत रवाना हो गया ।

मेरे कोल्हापुर पहुंचने तक नारायण ने बाकी सारे काम पूरे कर लिए थे । अप्रैल या मई का महीना था । ठीक से याद नहीं । कोल्हापुर के नारायण के कॉलेज के दो दोस्त, कुंभार और बनकर, हम जिस कमरे में रहते थे; उस भोसले के दो आदमी, पाटणगांवकर सर और दो-तीन और लोग नारायण के विवाह में उपस्थित थे । एक प्रचंड क्रांति करने का अनुभव हुआ ।

विवाह हो गया, अब आगे क्या ? ...पाटणगाँवकर सर का आशीर्वाद था । प्राचार्य गायकवाड़ का समर्थन था । नारायण को माने के मित्र के रूप में वे पहचानते थे । प्रारंभ में दोनों ने ही मदद की परंतु पत्नी और गृहस्थी क्या होती है, यह अब तक किसी को मालूम नहीं था । सपने में भी किसी ने बताया होता तो सही न लगता...इतनी तेजी से हम इसमें उलझते चले जा रहे थे । अब पीछे मुड़ना संभव नहीं था । 'पुढारी' के विज्ञापन देखते और पैर कोल्हापुर की गलियों में भटकने लगते । इस तरह आठ-पंद्रह दिन बिताए । परंतु नौकरी दोनों में से किसी को नहीं मिली । इधर फलटण में नारायण और उस लड़की के घरवालों ने हो-हल्ला मचा रखा था । नारायण के घर के लोगों ने मेरे और उसके नाम काफी गालियां दी थीं । इतना अच्छा लड़का बिगड़ गया...अब रिश्ते-नाते खत्म होने की जानकारी दी । उधर लड़की के बाप ने भी वही किया था । ज्यों साला, हमने ही पाप किया था ।

सात-आठ दिन बाद स्थिति और भी खराब हो चली थी । मारुति कालोखे, रामदास रासकर और सुभाष कर्णे इन मित्रों ने कुछ पैसे भेजे थे । उससे किसी तरह गाड़ी चल रही थी । नारायण तो पूरी तरह आवाक् हो रहा था । कुछ न बोलता था । क्या करें बस यही



सोचता रहता । दिमाग में कई-कई विचार आते पर स्थिति पर कोई काबू न होता । निराश होना पड़ता । सिफारिश नहीं, डिग्री नहीं...नौकरी कैसे मिलेगी । बस यही एक सवाल था। नारायण की पत्नी साथ दे रही थी । अततः स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि अब कल क्या होगा ? कॉलेज फिर से शुरू होने में अभी समय था । कॉलेज के लिए लड़के आने पर पैसों का प्रश्न सुलझने वाला था । पर तब तक क्या होगा ?

फिर मेरे दिमाग में एक बात सूझी । नारायण को एक ओर ले जाकर बताया...'यार, नारायण एक बात तो पूरी तरह भूल गया था । मैं अच्छा बैंड बजाता हूँ । सीजन शुरू हो गया है, मैं कोशिश करता हूँ ।

मैं अब बजाऊंगा नहीं यह मैंने तय किया था । परंतु स्थितियां मुझे उधर खींच रही थीं। उसे बताकर मैंने उसकी विदा ली । और पाप के टिकट पर आगे बढ़ा । वहाँ बैंडवाले लोग बैठे थे । उनके पास जाकर निराश होकर खड़ा था । वे कैकाड़ी भाषा बोल रहे थे । पर वे दो ही थे । बाकी सब घडशी थे । मैंने ही अपनी भाषा में अपना परिचय करा दिया । इधर-उधर की बातें हुईं । उन्हें बताया कि मैं अच्छा ढोल बजा सकता हूँ । परंतु उन्हें विश्वास न होता । बोले, देखेंगे । फिर उनके बैंड के दुकान-सी शेड में गए । वहाँ पहले से रिहर्सल चल रही थी । ढोल कांधे पर लिया । दो-तीन सिनेमा की धुनों और दो-तीन दूसरी चीजें बजायीं । लोग खुश लगे हमारे साथ बजाओ कहने लगे । बैंड के दो-तीन दल थे । यहाँ जाति ने सहारा दिया । रोज बीस रुपये देने का वादा किया । मैंने भी बिना शर्त मान लिया । और शुरुवात हो गई । ...बाहर का निमंत्रण आने पर मैं जाने लगा, यूँ ही कोल्हापुर में कोई देखेगा तो इज्जत का पंचनामा न हो इसलिए । मुहूर्त होने पर बीस रुपये मिलने लगते ।

कॉलेज शुरू होने तक तीनों का भोजन मैं चला रहा था । फलटण से मित्र पैसे भेज रहे थे । हम जहाँ रह रहे थे उन्हें इस सब कुछ भी मालूम नहीं था । भोसले के घर के लोग लेही और घुलने-मिलने वाले थे । किराये की शिकायत नहीं थी । इस महीने का किराया अगले महीने दिया जा सकता था । नारायण माली है यह उन्हें पता चल गया था पर माने कौन ? कैसे पूछें, यह सोचकर मुझसे न पूछते । परंतु, शायद मराठा होगा, ऐसा उनका अंदाज था । उन्होंने नारायण से पूछा और मैं कैकाड़ी हूं.....यह मालूम हो गया । परंतु कैकाड़ी यह कौन-सी जाति है, यह उनकी समझ में नहीं आया । क्योंकि कोल्हापुर की ओर कैकाड़ियों को 'कोरवी' कहते हैं । मैं कोरवी हूं, बताने पर वे समझ जाते । परंतु उनके ध्यान में वह नहीं आया ।

कॉलेज शुरू हो गया था । पी. डी. की कक्षाएँ शुरू हो गई थीं । ऐसे में चार के साथ पाँचवां समा जाता । परंतु अब वह संभव नहीं था । नारायण का परिवार था । उसका घर का पैसा बंद हो गया था । रामदास और मारुति कालोखे इन दोनों के घर से पैसा आता। नारायण और मैं नौकरी खोज ही रहे थे । परंतु खर्चा नहीं चल पा रहा था । अंत में, प्रा. पाटणगाँवकर को सब कुछ बताया । उन्होंने प्राचार्य से अनुरोध किया और मुझे कॉलेज में पार्ट टाइम नौकरी मिल गई । उतनी मदद हो गई । मैंने स्वीकार लिया ।

नौकरी मिली, वह भी अपने ही कॉलेज में । खुशी हुई । नब्बे रुपये पगार मिलती ।

वह सारा नारायण को देता। कुंभार और बनकर इन दो अन्य सदस्यों को भोजन दिया जाएगा और उसके ऐवज में वे पैसे देंगे, ऐसा तय हुआ। इस प्रकार यह शुरू हुआ। अब नारायण का अधिकतम समय घर में ही बीतता। वह सेमीस्टर में सम्मिलित नहीं हुआ और कॉलेज का नाम लेना छोड़ चुका था।

एफ. वाई, का कॉलेज शुरू हुआ। और नौकरी भी चल रही थी। प्रारंभ में कॉलेज की लाइब्रेरी में काम करने लगा। लड़के किताबें मांगते, मुझे किताबें देनी पड़ती। लाइब्रेरियन के रूप में एम्. ए. पास एक सज्जन थे। नाम और मन से ये सज्जन पाटिल ही थे। इतना मुँहफट आदमी कि पूछिये मत। कक्षा और कॉलेज के लड़के के सामने किसी का अपमान हुआ तो उसे बुरा तो लगेगा ही। इस पाटिल महोदय की आदत ऐसी थी कि सामने जवान लड़की दिखी कि उन्हें करंट लगता। फिर चपरासी और मुझ पर अकारण बिगड़ता। यूं ही भाव खाने की उसकी आदत थी। मैं काउंटर पर किताबें देता होता कि उसी समय 'यह पुस्तक रखो' कहता। उसके अपने टेबल पर लोटा गिलास होने पर भी पानी स्वयं कभी न लेता। फिर कहता, 'अरे माने, बच्चू, कब से घंटी बजा रहा हूँ। सुनाई नहीं पड़ता या बहरा है ? उस बर्तन से पानी दे।'

पानी देने पर कुछ और माँगता और उसे करने लगा तो पहला काम क्यों नहीं किया इस पर गालियाँ। तो क्या...मैं नया था सब करता। लाइब्रेरी में कदम रखने से लेकर आफिस बंद होने तक इसका यही हाल होता। कभी-कभी बहुत बुरा लगता। परंतु गरजमंद अक्लमंद नहीं होता, इसलिये खटता रहा। बीच में ही कॉलेज की जगह बदल गई। कॉलेज की नई इमारत की नींव खोदने से इमारत बनने तक मैंने और मेरे जैसे और भी दो पार्ट-टाईम क्लर्क ने इमारत के निर्माण में बहुत काम किया। पत्थर तोड़े। जहाँ से मजदूर भाग जाते वहाँ हम काम करते। प्राचार्य नियमित रूप से आते रहते। स्वयं भी हथौड़ा लेकर पत्थर तोड़ते थे। प्राचार्य इस तरह पत्थर तोड़ते तो मन भर आता। अत्यंत आदरयुक्त डर होता उनके बारे में। कॉलेज चल रहा था... । परंतु पीरियड न मिलते।

ट्यूशन लायक स्थिति नहीं थी। और तब तक अपनी ये जाति पिछड़ी जातियों में आती है या नहीं इसकी पूछताछ भी नहीं की थी। इस कारण पहली बार बी. सी. स्कॉलरशिप मिलने लगी थी। परंतु जितना भी पैसा मिलता; चाहिए था। कारण, नारायण अब तक बेकार था। उसे मदद मिलना अत्यंत आवश्यक था। बीच में एक बार उसकी सास ने यहाँ आकर झमेला खड़ा किया था। उसकी शिकायत थी कि मेरी लड़की उड़ाकर लाई है। परंतु लड़की ने मुँह-तोड़ जवाब दिया और उसका मुँह बंद कर दिया।

घर से कभी-कभी पत्र आते। ऐसे ही एक पत्र आया....उसमें लिखा था...मैं शादी नहीं कर सकता और मालवण लड़की नहीं रख सकती। ऐसे में सगाई तोड़कर उसकी शादी कर रहे हैं। तू शादी के लिए आ। पलभर, पत्र पढ़कर खुशी भी हुई और दुख भी हुआ। दुख इसका था कि मैंने शादी नहीं की, जिससे पिताजी को बहुत तकलीफ हुई। ठीक भी लगता। क्योंकि अब वह लड़की सही दिशा में लग गई थी। परंतु, उसकी शादी में जाना संभव नहीं था। क्योंकि कोल्हापुर से इंदापुर के लिए टिकट के लिए भी मेरे पास पैसे नहीं थे।



इस साल कॉलेज में काफी घुलमिल गया था। घर से किसी की याद न आती। पत्र आने पर या जवाब लिखते समय रोना आता। ऐसी कोई बात नहीं थी, पर अब अकेले रहने की आदत हो गई थी। बीच में कहीं बंजारों के तंबू दिखने पर या रास्ते के किनारे लोग कुछ डलिया बुनते नजर आते तो बिना कारण यूं ही उनके साथ बातें करता बैठता। इधर-उधर की बातें करता। पर मैं कैकाड़ी हूं...यह न बताते हुए बातें करता। शरीर पर कपड़े पहने और कॉलेज के वातावरण के कारण जाति बताने की शर्म आती।

कॉलेज में वेरायटी शो होते। आवाज अच्छी होने के कारण ऐसे शो में अवश्य गाता। उन दिनों कॉलेज की एक लड़की अच्छी लगती। उसके साथ कोई काम निकालकर बातें करता। फिर लाइब्रेरी में लगने के बाद लड़कियों से लगातार संबंध आने लगा। वे अपनी ओर से भी बोलतीं। पर मैं अपने भीतर मन ही मन चित्र बनाता रहता। बात करने की हिम्मत न पड़ती।

अंत में, उस लड़की ने पुस्तक में पत्र भेजा। घबराते हुए संडास में पत्र पढ़ा। उसने काफी कुछ लिखा था। मैं धीरे-धीरे उसी के बारे में पूछने लगा। इतनी सुंदर लड़की...और ऊपर से ब्राह्मण। कुछ दिन के लिए मेरी तो खोपड़ी काम ही न करती। कुछ भी हो, मन में उसी लड़की के विचार होते। उसे प्रतिसाद देता रहता। प्रेम का रंग काफी गहराने लगा था।

एक बार रहा नहीं गया और सारा किस्सा नारायण को सुनाया। उसे नहीं तो किसे सुनाता? उसने सारा सुन लिया और खूब डाँटा वास्तविकता की याद दिलाई। वह शादी के लिए तैयार है क्या, यह पूछने के लिए कहा। मैंने उससे पूछा, निःसंदेह पत्र से ही। उसका उत्तर बड़ा भयंकर था, 'मैंने शादी के बारे में कुछ भी नहीं सोचा है। हम विस्तार से बातें करेंगे।' बस। उससे बातें कीं। वह बोली, 'कम से कम मराठा होगा, ऐसा लगा था। तेरी जाति देखकर मेरे लिए संभव होगा ऐसा नहीं लगता।' और इतनी बात पर ही अपना प्रेम खत्म हो गया। जाति का तीव्र अनुभव हुआ, इस प्रेम- प्रसंग में। अन्य सारी बातें ठीक कर लेने वाली लड़की जाति का मुद्दा आने पर हद पार कर गई। मैं अपनी ओर से उसकी ओर नहीं झुका था। उसी ने शुरू किया था और उसी ने समाप्त कर दिया था।

बीच-बीच में कॉलेज की वाद-विवाद स्पर्धा में पाटणकर सर के कारण भाग लेता रहता। सर के साथ सेवा-दल के कार्यक्रमों के लिये जाता। कोई सार्वजनिक काम करने की इच्छा होती। कहीं शिबिर, चर्चा अध्ययन सत्र हो तो पाटणकर सर मुझे भेजते थे। खर्च उन्हीं का होता। उनके घर में भी मुक्त प्रवेश था। उनकी एक लड़की मेरी सहपाठी थी। परंतु वातावरण अच्छा और खुला होने के कारण सही अर्थों में मध्यमवर्गीय परिवार कैसा होता है, यह देख रहा था। अनजाने ही भावी जीवन की रेखाएं खिंच जाती। अध्ययन भी चल रहा था। एफ. वाइ. की परीक्षा हो गई थी और किसी तरह पास हो सका था, बाउंड्री पर। अंग्रेजी में भी 'पास' था। अब पूरा कॉलेज पढ़ सकूंगा, ऐसा विश्वास जगा।

एस. वाइ. में आया तब फिर एक बार अलग मोड़ पर खड़ा था। जिस घर में रहता था, उस मकान मालिक की एक लड़की थी। पढ़ाकू थी वह। इसलिए मैं लाइब्रेरी से किताबें

लाकर देता । वह पढ़ती हम साथ रहने के कारण खुलकर बातें करते । तारुण्य सुलभ आकर्षण तो होगा ही । पर समझदारी आने के बाद से मुझे जितना समझ पड़ता मैं उसे समझाता था । वि. स. खांडेकर की सारी किताबें पढ़कर चकरा गया था । सार्वजनिक कामों में रुचि निर्माण हो गई थी । वह भी इसी तरह आकार ले रही थी । थोड़े-बहुत प्रगतिशील विचार मालूम होने लगे थे । मित्रता अच्छी जम गई थी । परंतु विचार और पढ़ाई के अतिरिक्त हम किसी बात का विचार न करते । परंतु धीरे-धीरे करीबी बढ़ रही थी । मैं सोच-समझ कर कदम उठाता । शादी का विचार भी मन में न आता । अपनी योग्यता नहीं, इस विचार से परेशान हो उठता ।

इसी बीच जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य कोल्हापुर आनेवाले थे । किसी मंदिर का आधारशिला समारोह था । गाँव में, अखबार में यह चर्चा का विषय था । डॉ. कुमार सप्तर्षि ने सार्वजनिक विवाद का मुद्दा बनाया था । डॉ. बाबा आढ़ाव और कुमार सप्तर्षि के इंटरव्यू, भाषण अखबारों में पढ़ रहा था । धर्म-जाति के बारे में उनके विचार मुझे सही लगते । ऐसी ही एक बैठक में बापूसाहब पाटिल की पहचान हुई । दलितों की समस्याओं के लिए सहानुभूति से, इस व्यक्ति ने मुझे मंत्र-मुग्ध कर दिया । शंकराचार्य चतुर्वर्ण के समर्थक हैं । जाति व्यवस्था टिकी रहे इस विचार के हैं । इसलिए उनसे चिढ़ होती । मित्रों से विवाद करता । यह किस तरह गलत है...इसका अध्ययन करने लगा । फिर शंकराचार्य के जुलूस का विरोध करने के लिए स्वयं होकर शामिल हुआ । मैं बचपन से देख रहा था कि आदमी के कांधे पालकी होती है और उसमें भगवान छतरी ताने बैठा होता । परंतु चांदी की पालकी में आदमी बैठा है और ऐसा जुलूस निकलता है, यह कभी नहीं देखा । बस...जुलूस खासबाग के पास आया था । पुलिस व्यवस्था जोरदार थी । भीड़ भी जोरदार थी । शंकराचार्य के समर्थकों और विरोधकों के बीच नारों का युद्ध शुरू हो गया । खूब नारे लगा रहे थे । धक्का-मुक्का शुरू हो गई । पुलिस ने घेरा बंदी कर ली थी । इस घेराबंदी को बापूसाहब, रवीन्द्र सबनीस, सुरेश शिपुरकर आदि मंडली ने तोड़ दिया और चप्पलों की वर्षा शुरू हो गई । शंकराचार्य पर चप्पलों की वर्षा होने लगी। अपने भी एक दो लगे होंगे । पुलिस ने पकड़कर गाड़ी में बैठाया। काफी लोग बैठाए और दूर ले जाकर छोड़ दिये । बापूसाहब और कुछ लोगों को जेल ले गए ।

इस तरह सामाजिक आंदोलनों का परिचय होता गया । प्रा. धामणगाँवकर, बाबूराव परितेकर, नानासाहेब माने इन लोगों की पहचान इसी प्रकार हुई और बढ़ती गई । दलित युवक संगठन चालू थे, उसका सदस्य बना था । परंतु दलित युवक संगठन का प्रज्ञावंत गौतम और मंडली के बौद्ध कल्ट के कारण इतनी तकलीफ हुई कि दलितों के बीच विवादों से तंग आकर हम कुछ मित्रों ने 'डॉ. आंबेडकर स्कूल ऑफ थॉटस्' नामक संगठन शुरू किया । इसकी ओर से अनुसूचित जनजातियों की बस्ती में एक शिशुमंदिर शुरू किया । परंतु वह अधिक दिन नहीं चल पाया । व्यापक आंदोलनों में अपने आप खिंचता चला गया । नौकरी चल रही थी ।

हमारी इन गतिविधियों के कुछ परिणाम तो हो रहे थे । एक ओर मकान मालिक की



लड़की के मन में परिवर्तन हो रहा था; दूसरी ओर जिनके साथ हाईस्कूल और कॉलेज पढ रहा था, उन मित्रों में भी कुल मिलाकर परिवर्तन दिखाई दे रहा था । अधिकांश लोगों का कहना था कि मैं यह सब न करूँ । इसी बीच मकान मालिक की बेटी से मेरे कुछ संबंध हैं, ऐसी गंध भी कुछ लोगों को आने लगी थी । फिर मैंने जब उसके साथ शादी का विचार व्यक्त किया तो हमारे कुछ मराठा मित्रों को ठीक नहीं लगा । तू और जगह ऐसा कर ले, यहाँ मत कर यह उचित नहीं है, ऐसा बताने लगे । मतभेद बढते गए और वर्षों के संबंध टूट गए । नारायण मुझे बेसहारा नहीं छोड़ना चाहता था । पर मुझे छोड़कर कोई घाटा भी नहीं था । उल्टे दूसरे मित्रों को छोड़कर उसका न चल पाता । वह, रामदास, मारुति कालोखे, बनकर, कुंभार सब कमरा छोड़कर चले गये । मैं अकेला ही रह गया । पिछले पाँच-सात वर्षों के संबंध...सब याद आता ।

मैं देर तक उस रात रोता बैठा था । होटल या हाथ से पकाने का विचार करना ही था। इसी बीच मतकर नामक एक लड़के से दोस्ती हुई । यह मराठा जाति का था । गरीब घर का था । जेब में पैसा न होता । अंग्रेजी अच्छी थी । बी. ए. कर रहा था । मुझे स्कॉलरशिप मिल रही थी । और नब्बे रुपये वेतन भी । इस मित्र की सारी सहायता की । होटल और कमरे का खर्च मैं ही दे रहा था । गरीबी क्या है, यह किसी और से जानने की आवश्यकता नहीं थी । इसलिए उसे मदद कर रहा था । मानसिक दृष्टि से बहुत दुखी था । जो मित्र एक थाली में खाते थे, वे फिर जाति का मुद्दा उठाकर अलग हो गए । इस कारण सारा कुछ बिगड़ गया था । सिर्फ अपवाद के लिए नारायण बोलता था ।

इसे पैरों पर खड़ा करना चाहिए, ऐसा हमेशा लगता, पर रास्ता नजर न आता । एस. वाइ. की कक्षा शुरू हुई । कॉलेज नई इमारत में आ गया था । कॉलेज में छात्रावास भी शुरू हो गया था । अब मुझे छात्रावास का काम देखना पड़ता । कॉलेज परिसर में ही कैंटीन भी शुरू करने वाले थे । मैं प्राचार्य से मिला । कैंटिन शुरू करने वाले होगे तो इसे नारायण को दीजिए । प्राचार्य मान गए । अपने खाते से पैसे दिए । पूँजी खड़ी की । नारायण को जीने का साधन मिल गया । मैं एक नये प्रवृत्ति के आदमी के साथ काम करने लगा । छात्रावास में सारे लड़के बी. सी. होते और रेक्टर थे ज. रा. दाभाले । वे दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे। परंतु काफी खुले दिल के थे । रसिक थे, गाने-बजाने, नाटक में काफी गहरी रुचि थी। छात्रावास के काम के कारण निरंतर संबंध आते रहे । अभी तक काफी लोग देखे थे । पर भगवान को मानने वाले...उस पर अपना सारा न्यौछावर करने वाले...पूर्व जन्म के पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक करते-करते जाति के लिए सब कुछ छोड़ना और धर्म के लिए पत्नी देना, कहने वाले लोग मैंने देखे थे । सब एक सांचे में ढले हुए । मैं भी उनमें से अलग नहीं था। शरीर में मंत्र संचरने का नाटक कर कॉलेज के कितने ही लड़कों को कई बार भभूति लगाता था । संकट के समय कालूबाई पर भार डालकर मुक्त हो जाता । प्रत्येक बात का विचार करने की झंझट मालूम ही नहीं थी । जाति की तकलीफ होती, पर अपनी जाति इतनी निचली क्यों समझी जाती है, ये बात समझ में न आती । ऐसे प्रश्नों की गठरी बांधकर मैं निकला था । इसे प्रा. दाभोले के कारण धक्का पहुंचने लगा । कक्षा में वे तर्कशास्त्र पढ़ाते । पर काम

के कारण मैं उसके सत्र में न बैठ पाता । प्रा. पाटणगांवकर पूरे आस्तिक आदमी थे...घर में गूलर को नमस्कार कर बाहर निकलने के बाद कॉलेज से रास्ते भर वाले सभी भगवानों को नमस्कार करते कॉलेज आते । कॉलेज की पहली सीढ़ी को नमस्कार करनेवाले और जहाँ गणेश का चित्र होता वहाँ नमस्कार करने वाले भगवान दिखने पर नीचे झुकने वाले । साथ में कोई भी हो, पर वे नमस्कार करेंगे ।

इसके उल्टे भगवान का अस्तित्व नकारनेवाले, प्रत्येक सवाल का वैज्ञानिक विचार करनेवाले, भूत-पिशाच न माननेवाले, आत्मा नकारनेवाले, जड़वादी विचार किसे कहेंगे, इसका विचार करनेवाले प्रा. दाभोले इतनी जोरदार चढ़ाई करते कि भगवान नहीं है । जाति-व्यवस्था का ढोंग क्यों बढ़ा, किसने बढ़ाया और यह नाटक कैसा है...इसे उदाहरण के साथ समझानेवाले वे विद्यार्थियों को अपने लगते । ऐसे दो-तीन व्यक्ति जीवन में आए । अब संघर्ष स्वतः से ही शुरू हुआ । इसमें प्रा. दाभोले का सान्निध्य अधिक मिलता । लड़कियों से लेकर सिनेमा तक मिल-जुलकर बातें करनेवाले । इस कारण संबंध मित्रवत् हो गए थे । प्रत्येक प्रश्न के ज्यों वे जनरेटर हों, ऐसा लगता था ।

छात्रावास की मेस और कॉलेज की लेबर स्कीम दोनों का काम मैं देखता । नाम पार्ट टाइम सेवक, पर धंधा पूरे समय का करता । सुबह कॉलेज शुरू होने से पहले छात्रावास की रसोई बनानेवाली को सुबह का सामान निकाल देता । फिर जितने सत्र जमते कर लेता। टीन की शेड में मेस शुरु की थी । मेस की टीन टपकती । कई बार सारे लड़के हाथ में थाली लेकर बूंदें बचाते, खाना खाते...सारे लड़कों के भोजन निपटने तक दोपहर का एक बज जाता, बाद में मैं खाना खाता। खाने के समय एक बात होती । सारे लड़के गांवों से आए थे । सबकी भाषा एक । नौकरानी सालन और मटेरियल निकालकर रखती । मैं और दीक्षा पतीली में ही रोटी का चूरा करते और खड़े-खड़े खाते । दोपहर में प्रा. दाभोले के साथ बाजार जाते। खरीदारी के बाद दोपहर तीन बजे कॉलेज में आना पड़ता । दोपहर तीन बजे लेबर स्कीम के लड़के आते उन्हें कोई काम निकालकर देना पड़ता । यह सब करते हुए दोपहर के भोजन की व्यवस्था देखनी पड़ती और लेबर के साथ ही काम करता । लेबर काम से लगने के बाद छात्रावास का हिसाब लिखता । शाम को सात बजे भोजन की बेल देनी होती और लड़कों का खाना शुरू होने के बाद परोसने वाले परोसने की शुरुवात करते । छात्रावास में पहली पंगत में बैठने की सबको जल्दी होती । परंतु, यदि नंबर नहीं लगा तो झगड़े होते, क्योंकि सालन और मटेरियल पहली पंगत में ज्यादा अच्छा मिलता । बाद में खाने पर सालन में पानी ही मिलता और दाल के लिए 'कांटा' डालकर बैठना पड़ता । कितना भी न्यायपूर्ण बंटवारा करने का सोचते पर न जमता और झगड़े होते । रात नौ बजे तक भोजन चलता रहता। कुछ भटकने वाले नौ के बाद । उन्हें भी खाना देना पड़ता । नहीं तो वे खाली पेट सो जाते। यह भी देखा न जाता । और खास बात यह थी कि लड़के तुरंत शिकायत करते जाते । शिकायत जाने पर प्राचार्य डाँटते । कई बार रोटियाँ न बचतीं । फिर चूल्हा जलाते। मैं रोटी बनाने में इतना निपुण हो गया था कि रसोई बनानेवाली को मुझ जैसी रोटी बनानी न आती । इतना सारा करके कमरे पर आने के लिये रात को ग्यारह तो बज ही जाते । पढाई के लिए



समय ही न होता । परंतु कितनी भी देर होती, कमरे पर ही आता । क्योंकि सुबह मकान मालिक की बेटी शशि से मिलना होता । दूसरा समय ही न होता । वह रोज भोर में उठती थी । बाकी सारी दुनिया सोयी होती । तब हम बोलते बैठते । सिर्फ पंद्रह-बीस मिनट समय मिलता पर उतना ही चान्स होता । वैसे बातें करते, पर सारी सामान्य बातें होतीं । निजी खास बातचीत, मुलाकात का समय सुबह ही होता । उसके मन की तैयारी कर रहा था । परंतु उस समय शादी का कुछ भी निश्चित न हो पाता ।

एक बार पिताजी कोल्हापुर आए । वहां जाने के बाद कभी नहीं आए थे । इधर-उधर की बातें कहीं । पूरे छह वर्ष में वे पहली बार कोल्हापुर आए क्योंकि पूरे छह वर्षों से घर पीछे छूटे गया था । भाई-बहन बड़े हो गए थे । पोपट अब सातवीं में आ गया था । परंतु उसके कालूबाई संचरती । इसलिए उसे स्कूल से निकाल दिया था । मैंने काफी समझाया कि उसकी स्कूल बंद मत कीजिए । पर कहते कि वह कक्षा में बैठ ही नहीं पाता, वहीं वह झूमने लगता है । इतना कहने पर कोई उपाय ही नहीं था । उसके स्कूल छोड़ने के बाद पिताजी ने प्राचार्य गायकवाड़, प्रा. पाटणगांवकर दाभोले इन सबकी मुलाकात की । उन्होंने कहा, 'हमारा पूरा ध्यान है...लड़का अच्छा है ।' पिताजी प्राचार्य के सामने कुर्सी पर बैठते हुए काफी असुविधा अनुभव कर रहे थे । हम आफिस में गए । मैंने पिताजी का परिचय कराया । सर ने उन्हें बैठने के लिए कहा, पर वे न बैठते। खड़े-खड़े ही बातें कर रहे थे । परंतु प्राचार्य के बहुत कहने पर किसी तरह बैठ पाए । अब बात क्या करें ? पढ़ाई करता है क्या ? आदि। पाँच-दस मिनट वहाँ बैठे होंगे । उनका विश्वास हो गया कि अपना बेटा सही राह पर चल रहा है । मेरी बात पर उनका विश्वास कम था। और अब बातों में काफी परिवर्तन आ गया था न । हम सड़कों पर घूम रहे थे । उन्होंने एक लड़की पसंद की है । अब मैं शादी कर लूं । इधर मैं सिर्फ कोरी हामी भरता रहा । मेरी स्थिति की थाह न लगने देता । उन्हें बताने की इच्छा होती कि शादी मेरी व्यक्तिगत समस्या है और मैं जाति की लड़की से शादी नहीं करूंगा...और जाति के बाहर की लड़की नहीं मिली तो ? फालतू बकवास होगी और मैं यदि यह कहता कि जाति के बाहर की लड़की से शादी करूंगा तो नाहक विवाद होता, इसलिए कुछ नहीं बोला ।

पिताजी को मोटर स्टैंड पर बिदा करने गया, तब वे बोले, 'बेटा जाति के लिए माटी भी खानी पड़े तो तैयार रहना चाहिए इसे अच्छी तरह ध्यान में रखो । जाति के बिना सब बेकार है । और कुछ बुरे-बेकार ख्याल छोड़ दो । मैं शादी तय करता हूँ । इस साल कर डालेंगे । हम अब बूढ़े हो चले हैं...' और कुछ इसी तरह की बातें कर रहे थे...।

एस. वाई. का साल समाप्त होने आया था । परीक्षा पास आ गई थी । पढ़ाई चल रही थी । परंतु लॉजिक और अंग्रेजी विषय में पास हो जाऊंगा, ऐसा न लगता । एक तो पीरियड न मिलते और अंग्रेजी से मेरी पुरानी अनबन थी । शशि हाईस्कूल में जा रही थी । कबड्डी उसका पसंदीदा खेल । बहुत बढ़िया खेल रही थी । वह ग्यारवीं में गई थी । उसकी परीक्षायें पास आ गई थीं । परंतु पता नहीं क्यों लड़की को पढ़ाकर क्या करना है, कहकर परीक्षा के समय ही उसे घर बैठा दिया । उसके बारे में घर में शंका का माहौल बन गया था । गाँव

में जाते समय भी किसी को घर से साथ लिए बिना बाहर जाना बंद था। अब आगे मुझसे बात बंद, यहाँ तक रोक लग गई थी। परंतु हमने कोई गलत बात नहीं की या संदेह के लिए कोई अवसर नहीं दिया था। इसलिए वे मुझसे कुछ न कह पाते। परीक्षा करीब आ गई थी। जिस दिन पहला पेपर था, उसी दिन अचानक शशि का भाई मेरे पास आया और बोला, 'दीदी का कल ऑपरेशन हुआ है। वह बहुत बीमार है।' सच न लगता...मैं शशि से मिलने गया। मैं उससे मिलने भी न जा पाता। उसकी चाची और माँ वहाँ थीं। अंत में साहस कर भीतर गया। उसे गैस पर रखा था। बहुत दुख हुआ। मन की बात उसे बताने की इच्छा हो रही थी। पर यह संभव नहीं था। कुछ देर बैठकर लौट आया। मन बहुत उदास हो गया था। पढ़ाई का सत्यानाश हो चुका था। परीक्षा हुई। एस. वाई. के लॉजिक और अंग्रेजी विषय रह गए थे। परंतु बी.ए. की कक्षा में दाखिला हो गया, साल बेकार नहीं गया।

इसी समय एक और घटना हुई, जिसके कारण मैं सामाजिक कार्यों में सक्रिय हो उठा। वैसे तो चर्चाएं और पढाई चल रही थी। 'साधना' मराठी पत्रिका के स्वाधीनता दिवस विशेषांक में राजा ढाले का लेख था। उसमें उन्होंने लिखा था...और इसी कारण अखबारों में ढाले संबंधी मामला निरंतर चर्चा में था। लेख मैंने पढ़ा था, प्रतिक्रियाएं भी पढ़ रहा था। दोस्तों से इस बारे में चर्चा करता। बापूसाहब पाटिल, सुरेश शिरपुरकर के साथ बातचीत हुई। और यह तय हुआ कि 'साधना' के समर्थन में एक विशाल मोर्चा निकाला जाए। बाबूराव परितेकर, प्रा. माणगाँवकर, डॉ. सुदाम चौगुले, शिरपुरकर ये सब काम में जुट गये। कोल्हापुर छात्रावास की नगरी। प्रत्येक जाति के लिए छात्रावास। प्रत्येक कॉलेज और हाईस्कूल के लिए छात्रावास फिलहाल छात्रावास में बी. सी. लड़के अधिक थे, इसलिए बैठकें आयोजित करते रहते। सनातनी विरुद्ध दलितों की कैफियत स्थापित करते रहते। राजा ढाले और 'साधना' के लिए रात में दो-दो बजे तक मैं और माणगांवकर घूमने लगे। अब तक वाद-विवाद में हिस्सा लेने लगा था। परंतु, यह सब प्राध्यापक द्वारा दिया गया याद कर बोलता। अब नए सिरे से आत्मविश्वास बढ रहा था। लड़के कहते कि मैं काफी अच्छा बोल लेता हूँ। लड़के मुझे भड़काने का काम काफी अच्छी तरह करते। दलित जाति के सभी लड़के एक मंच पर एकत्र हो रहे थे। कई संस्थाएं थीं। उनका सहयोग था। राजनैतिक दलों को भी उसमें शामिल होने का आवाहन किया था। फिर एक घटना घटी...हमने एक पर्चा निकाला था। उस पर शहर के प्रतिष्ठित लोगों के हस्ताक्षर लेने थे। कई नेताओं ने हस्ताक्षर कर दिए थे। उस पर हस्ताक्षर के लिए एक वृद्ध नेता के पास गए थे। उनके बारे में अत्यंत आदर था। शाहू महाराज से जिनके संबंध थे। सत्याशोधक की उनकी प्रकृति थी, वे बोले, 'पर्चा रहने दो, हस्ताक्षर करके मैं अखबारों को दे दूँगा। तुम बच्चों का वे नहीं छापेंगे।'

हमने वह पर्चा उन्हें दे दिया। वह दूसरे दिन छपकर भी आ गया। मजे की बात यह थी कि इस वृद्ध नेता ने उसे इस तरह छपवाया कि वह उसका अपना पर्चा हो। उनकी दांभिकता से हमें ठेस लगी। परंतु उनकी तपस्या काफी लंबी थी। क्या करते ? मोर्चे की काफी तैयारी हुई। शहर के कॉलेज और हाईस्कूल के दलित छात्र-छात्राएं लगभग दस हजार



होंगे। हम युवा मोर्चे का नेतृत्व कर रहे थे। बापूसाहब, सुरेश आदि मोर्चे के लिये आए थे। उनसे हमने अनुरोध किया कि वे मोर्चे को आगे ले जाएं। पर वे बोले, 'हम मोर्चे के पीछे रहेंगे।

लड़के खूब नाच रहे थे। 'साधना' के यदुनाथ, एस्. एम्, राजा ढोले के समर्थन में यह मोर्चा निकाला था। यह पूरे कोल्हापुर में चर्चा का विषय था। मोर्चे बहुत निकालते हैं पर इतने युवक अनुशासनबद्ध होकर गए, यह एक चर्चा का विषय था।

वाचन की आदत लग चुकी थी। सार्वजनिक कामों की भी रुचि पैदा हो गई थी। नौकरी, पढाई और सार्वजनिक कार्यों के कारण प्राचार्य हमेशा नाराज होते। साथ ही, कुछ क्लर्क लोग कान फूंकते। इधर मेरी भी कुछ गलतियां होती थीं। परंतु विवाद बहुत बढ़ने का मुख्य कारण छात्रावास के दलित छात्र और लेबर के छात्र का संदर्भ था। मतभेद बढ़ते गए। और प्राचार्य को सही गलत बताया जाता रहा। तब प्राचार्य एक बार बोले, 'तुम्हारी बहुत शिकायतें आ रही हैं।'

मैंने चुपचाप सुन लिया। बाद में, मालूम हुआ कि हेडक्लर्क ने प्राचार्य को बताया कि मैं पैसे खाता हूँ। इसलिये वे मुझे नौकरी से हटा देंगे। फिर मैं भी प्राचार्य, हेडक्लर्क और लाइब्रेरियन के बारे में बुरा-भला कहने लगा। त्यागपत्र की तैयारी कर ली थी। पर आर्थिक संशय मेरे लिये अपमानजनक था। उसे ठीक करना चाहिये। इसके लिए ऑडिट होना आवश्यक था। ऑडिट करवा लिया और त्यागपत्र दे दिया। उल्टे कॉलेज की ओर से ही मुझे लेना था। और किसी तरह का गलत आर्थिक व्यवहार नहीं किया, इसके प्रत्यक्ष गवाह प्रा. दाभोले सर थे। वे प्राचार्य को सतत इस बारे में बता भी रहे थे। मेरे त्यागपत्र देने के बाद वे काफी क्रोधित हुए। वे वापस लेने के लिये कहने लगे पर मैंने इंकार कर दिया क्योंकि अविश्वास के वातावरण में काम करना संभव नहीं था। और सबने ज्यों 'साजिश' ही की हो, ऐसा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। कारण क्या था ? बस मैं मोर्चे में गया था। इधर राजा ढाले गलत बयानबाजी कर रहे हैं, ऐसा समझने वाले प्रतिगामी लोगों की कॉलेज में कमी नहीं थी। इसके अलावा भी दूसरी झंझटें कम नहीं थीं।

त्यागपत्र देकर खाली हो गया था। कॉलेज की छात्रवृत्ति मिल रही थी। परंतु उतने में एक समय का ठीक से भोजन भी न होता। मेस के कितने ही लड़के छह महीने के बाद घर लौट जाते। फिर वे ही टिक पाते जिनके घर से पैसे आते। अब मेस भी बंद हो गई। क्या किया जाय, यही सोच रहा था। प्रा. पाटणगांवकर सब जानते थे। सच-झूठ भी मालूम होगा। मैं गांव जाने की तैयारी करने लगा। परंतु नौकरी मिल गई तो अच्छा होगा...कम से कम पेट भरने तक मिल जाए तो अच्छा होगा...इस विचार से विज्ञापन देखकर शहर में घूम रहा था। नौकरी न मिलती। पिता कहते, 'जल्दी शादी कर ले। नौकरी पा ले...मैं थक गया हूँ। ...थक तो मैं भी गया था।...अपना सारा काम तूफान के दीये-सा। मैं क्या करूँ ?

इसी तरह एक विज्ञापन का पता ढूंढते घूम रहा था। एस. टी. स्टैंड पर एक चक्कर लगाने के इरादे से गया। वहाँ विजय सावंत नामक मित्र मिला।...छात्रावास में रहता था। बड़ा

सुंदर छबीला था । रुतबे में रहता । घर की हालत बहुत अच्छी है । ऐसा बताता था । उसी ने चाय पिलायी । मैंने कॉलेज नौकरी छोड़ने की बात बतायी । शायद उसे बुरा लगा होगा। उसने जेब से पाँच की नोट निकाली और मेरी हथेली पर रख दी । मैंने मना किया । वह बोला, 'रहने दे, नौकरी लगने पर लौटा देना ।'

अनचाहे ही ले लिया । भीतर घुटन-सी महसूस हो रही थी । पल भर लगा कि सब कुछ आग में झोंक दूं । और दूर खड़े रहकर हंसता रहूं । घर जाने की इच्छा न होती । ऐसा लगता कि ऐसा मुँह पिताजी को दिखाने से अच्छा है, मर जाऊँ । कुछ भी हो पर कॉलेज समाप्ति के बाद ही जाऊंगा । मन में निश्चित कर लिया और भटकता रहा । लोग मिलते और सहानुभूति जताते । अफसोस व्यक्त करते पर सब बांझ होता । सहारे का हाथ कोई न बढ़ाता । ...बीच में ही लगता कि कोई धंधा करूं पर पूंजी कहाँ से आएगी ? उसी तरह, चिलचिलाती धूप में पाटणगांवकर के घर गया । वे घर में नहीं थे । उनकी पत्नी थी । मेरा चेहरा मुरझा गया था । चाय भी नहीं पी थी । भोजन की तो दो-तीन दिन से छुट्टी ही चल रही थी । भाजी-पाव या भेल-पाव खा रहा था । ऐसा लगता बेकार में नौकरी छोड़ दी । यह भी मंजूर नहीं था कि नौकरी फिर से मांगूं । पाटणगांवकर की पत्नी के साथ इधर-उधर की बातें चल रही थीं । अखबार सामने रखा था । परंतु पेट में चूहे दौड़ रहे थे । शायद उन्होंने यह ताड़ लिया होगा । उन्होंने सीधे कहा, 'माने, अरे खाने का क्या इंतजाम है ?' मैंने खाना खाया, ऐसा कहा पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने बहुत आग्रह किया । मैं खाना खाने बैठ गया । सिर झुकाए खाना खा रहा था । और आंखों का पानी कटोरी में जम रहा था । वे पूछ रही थीं कि और क्या दूं...मैं सिर हिला कर मना कर देता । परंतु घर छोड़ने के बाद यह पहली घटना थी कि कोई इतनी ममता से पूछ रहा था... भीतर से आवेग उछल रहा था । मां की याद आ रही थी । घर में जो खाना आता वह भीख मांगकर लाया होता । पर मां परोसती। यादों के आवेग से गला भर आता । किसी तरह भोजन किया और अखबार पढ़ने लगा ।

शाम को सर बाहर से आए । उन्होंने जान लिया होगा । कुछ नाराज होकर ही पर बिल्कुल धीमे स्वर में बोले, 'गवाँ दी नौकरी ? अब दूसरी ढूंढो । नौकरी क्या पेड़ में लगती है ?' इसी तरह कुछ बोले । मुझे गुस्सा नहीं आया । स्वयं को दो चार गालियां दीं । वे बोले, 'पड़ोस में भाऊ का बंगला है । भाऊ घर में हैं क्या देख आ ।'

मैं तुरंत उठा और सर के बंगले के सामने खड़ा था । दरवाजा बंद था । दरवाजे पर तख्ती टंगी थी..वि. स. खांडेकर । दरवाजे की बेल बजी । कुछ क्षणों के बाद एक मध्यम आयु की महिला दरवाजा खोलने आई । मैंने पूछा, 'भाऊ हैं क्या?' बैठिये, और भीतर चली गई । मैं तुरंत उठा और सर को आकर बताया - भाऊ हैं । वापस आया तो दरवाजा बंद। फिर बेल बजायी । फिर वही महिला आई । दरवाजा खोलते ही बोली, 'क्या काम है, भई। और इस तरह चोरों की तरह बाहर क्यों चले गए ? कौन चाहिये ?' इस तरह पूछ डाला। उन्हें जब वास्तविक कारण बताया तो वे 'सादे मैनर्स भी नहीं हैं ।' इस तरह भुनभुनाती हुई भीतर गई । मैं एक कुर्सी पर बैठा रहा । थोड़ी देर में सर आए। चौखट को नमस्कार किया । सामने के फोटो को देखकर नमस्कार किया । जेब में गणेश का फोटो था, उसे नमस्कार



किया और कुर्सी में बैठ गये । सर आने की जानकारी मिलने पर भाऊ आए । सर ने इधर-उधर की बातें कीं और मेरे बारे में बताया । भाऊ ने पूछा कि मैं क्या काम करूंगा । 'कुछ भी' मैंने कहा । 'कुछ भी यानी चपरासी का भी' मैंने सिर हिलाकर हामी भर दी । सर ने मेरे लिए कॉलेज की नौकरी के लिए पहले ही अच्छी सिफारश की थी । भाऊ बोले, 'कल आओ...शाम को ।'

दूसरे दिन शाम को गया । दरवाजा खुला था । भाऊ का हाथ थामकर एक मेरी ही उम्र का लड़का उन्हें इधर-उधर चलने में मदद कर रहा था । मैं यूं ही बैठा रहा । इधर-उधर ताकता रहा । मुझे काम मिलेगा और मैं यहाँ टिक सकूंगा या नहीं, मैं इसी बात पर सोच रहा था। भाऊसाहब का नाम तो बहुत बड़ा था । मन में सोचता, यह आदमी यदि जूते पोंछने के लिए भी रख लेंगे तो भी काफी है । भाऊ का घूमना पूरा हुआ...उन्होंने आवाज दी, 'मंदा, अनंतराव आए थे ?' मंदा बाहर आई उसने दरवाजा खोला । लगा अब वह कुछ बोलेगी...वह बोली, 'अनंतराव नहीं आए पर उनके आने का संदेशा आया है ।'

कुछ देर बाद खादी धारी एक ऊँचा सा आदमी आया । वह पाटणगांवकर जैसा ही था। मैं उन्हें नहीं पहचानता था । परंतु खादी की पैंट, खादी की कमीज के कारण और सहजता से मंदाताई कहकर पुकारते भीतर गया...इससे वह इसी घर का ही होगा, ऐसा लगा । थोड़ी देर बाद भाऊ बाहर आए । वह आदमी भी आया । अब मेरे बारे में भाऊ ने उस आदमी को बताया ।

'अनंतराव, चंद्रकांत ने यह लड़का मेरे पास भेजा है । तुम्हारे पास कोई काम हो तो उसे दे दो ।' अनंतराव ने नकार दिया; 'भाऊ, मेरे पास कोई जगह खाली नहीं है ।' भाऊ बोले, ' तुम काम दे सकते हो, तुम तय करो । वह पढ़ाई कर सके, बस ।'

अनंतराव इस पर बोले, 'देखूंगा ।'

मुझे दूसरे दिन आंतरभारती विद्यालय में बुलाया गया । दूसरे दिन 'आंतरभारती' विद्यालय में गया । स्कूल सादी और पुरानी इमारत में थी । अनंतराव देशपांडे, प्रधानाध्यापक की तख्ती लगी थी । मैंने पूछा, 'भीतर आ सकता हूं' । उन्होंने 'आओ' कहकर कुर्सी में बैठने के लिए कहा । आंखों का चष्मा हाथ में उतार कर आँखें पोंछी और बोले, 'देखो हमारे पास नौकरी नहीं है । और तुम्हें नौकरी देने के लिए तो भाऊ ने कहा है । ऐसे में मैं जहाँ कहूं तुम्हें वहां नौकरी करनी पड़ेगी । हमारे पास वेतन बहुत नहीं मिलेगा । हमारी मराठी स्कूल है । वहाँ तुम्हें शिक्षक के रूप में काम करना होगा ।'

मैंने हामी भर दी । वे कब हां कहेंगे मुझे इसी की चिंता थी । बहुत खुशी हुई । उन्होंने घर की जानकारी पूछी । मैंने बता दी । यहीं कमरा किराये पर लेकर रहता हूं आदि बताने पर वे बोले, 'तुम्हारा स्कूल का काम हो जाने पर तुम्हें भाऊ के बंगले पर जाना होगा । भाऊ को दिखाई नहीं देता...उन्हें टहलाना, उन्हें अखबार पढ़कर सुनाना और वे जो भी काम कहेंगे करना होगा...'

यह भी मैंने स्वीकार कर लिया । कॉलेज का आखरी साल था । नौकरी भी चल रही थी । होटल में भोजन करता । प्रेम कहानी जोर पकड़ रही थी । गांव में शशि अपनी सहेलियों

के साथ आती । हमारी मुलाकातें होतीं । वैसे करीब आ रहे थे । रंकाला की साक्षी में यह सब चल रहा था । स्कूल में छोटे बच्चों को मन लगाकर पढ़ा रहा था । बाकी शिक्षक ट्यूशन करते...मेरा सारा समय मीटिंग, चर्चाएं और पढ़ने-लिखने में बीतता । कभी बापूसाहब के साथ तो कभी सुरेश शिरपुरकर के साथ काम करता था । शाम को बिना भूले भाऊसाहब के पास जाता । उनके पास बहुत बड़े लोग आते थे । वे बोलना प्रारंभ करते तो मैं सिर्फ सुनने का काम करता । परंतु मुश्किल से पंद्रह दिन से महीना भर ही टिक पाया । भाऊ के अनुशासनबद्ध जीवन में अपना अस्त-व्यस्त जीवन नहीं जोड़ सका । मंदाताई की मातहत काम करते समय सब कुछ व्यवस्थित और समय पर आवश्यक था । एकाध गलती होने पर मंदाताई के कोर्ट में क्षमा मांगनी पड़ती । बातें सुननी पड़तीं । यानी यह सब मुझसे नहीं जम पाया और भाऊसाहब के पास शिदनोल नामक एक शिक्षक मित्र जाने लगे । अब भाऊ के घर जाता तो किसी चर्चा के लिए या दूसरे कामों के लिए ।

प्रा. दाभोले को मेरी कॉलेज की नौकरी छोड़ने का बुरा लगा होगा । जब भी मुलाकात होती वे उस बारे में बोलते । शशि के साथ शादी के बारे में पक्की बात सोच रखी थी । उसकी मन की तैयारी हो चुकी थी । परंतु कॉलेज खत्म करने के बाद ही शादी करनी तय थी । एस. वाइ. के दो पेपर रह गए थे । और बी. ए. का पूरा साल खत्म होना था । पढ़ाई कर रहा था । खास बात यह थी कि शादी के बारे में शब्द भी उसके घर के लोगों को मालूम होना खतरनाक था । अन्यथा कुछ भी हो सकता था । बहुत संभल कर चल रहा था । सारी बातें पत्रों में ही होती और जब मौका मिलता तब मिलते रहते ।

कॉलेज की परीक्षा समाप्त हो चुकी थी । स्कूल में अब परीक्षा, पेपर जांचना आदि काम चल रहा था । शशि ने एक खलीता भेजा था । उसे पढ़कर अवाक् रह गया था । उनके घर के लोगों ने उसकी सगाई दूसरी जगह करने की योजना बना ली थी । एक लड़का देख भी गया था । यदि मैं इस मौसम में उससे शादी न करूँ तो उसकी शादी दूसरे के साथ कर दी जाएगी ।

मैं रातभर सोचता रहा । सोच यही कि मैं शादी करूँ ? यह इतनी सुख-संपन्न परिवार की लड़की अपनी तूफानी जिंदगी के साथ निभा सकेगी ? इसे संभाल भी सकूंगा ? मेरे कारण उसका नुकसान होगा, यह सोचकर मैंने शादी से इंकार करने की ठान ली...रात भर पत्र लिखता रहा । क्या लिखूं ? इंकार करने पर उसकी गलतफहमी हो जाएगी, ऐसे ही विचारों में सो गया । औरों से बात करने का कोई मतलब नहीं था । अंततः मैं किस प्रकार पला-बढ़ा भविष्य में क्या है ? यह नौकरी छोड़ने के बाद फुटपाथ पर भी जगह नहीं मिलेगी । तुम्हें दो वक्त का भी खाना नहीं दे सकूंगा यह तय है । और भी कई बातें लिखकर भेज दी । कारण तुम अन्यत्र शादी कर सको इसलिये यह बता दिया...उसे उसने उत्तर दिया, 'हम दोनों मरते समय भी साथ ही मरेंगे । जो भी होगा, देखेंगे । मैंने फुटपाथ की तैयारी कर ली है । तुम ना मत कहना । तुम्हारे ना कहने पर...आदि...आदि । अब उसे दर्शन पढ़ाने का कोई मतलब नहीं था । मेरी ओर से रोकने की कोशिश की । परंतु इसका कोई उपयोग नहीं हुआ ।



प्रा. पाटणगांवकर, प्रा. दाभोले, सुरेश, बापूसाहब, देशपांडे सर सभी को बताया । 'वाह वाह बहुत अच्छा है'...तुम अंतरजातीय विवाह कर रहे हो, अच्छी बात है । हमारी ओर से जो भी सहायता लगेगी करेंगे आदि बातें उन्होंने कहीं । धीरज बंध रहा था । पर सुरेश अंत तक बता रहा था...तुम्हारे विवाह के लिए मेरा विरोध होने का कोई कारण नहीं है..यह अत्यंत अच्छी बात है । पर तुम्हें कोल्हापुर छोड़ना होगा । अन्यत्र तुम्हें मदद और नौकरी की उम्मीद नहीं है । इसलिए तू एक बार फिर सोच ले । इस तरह की बातें वह कहता । आंखों पर एक अजीब तरह का नशा था । मैं एक क्रांति करने जा रहा हूं...और यह यूं ही कुछ बातें कह रहा है, ऐसा लगता । सुरेश ने शिरुभाऊ लिमये को फोन करके पुणे में क्या किया जा सकेगा, इसकी पूछताछ की । परंतु सुरेश ने बताया कि वे अभी- अभी एक ऐसे ही दम्पति को संभाल रहे हैं । शादी तो करनी ही थी क्या करूँ न सूझता । यह सब तो पैसों का मामला था । कुछ तो किया जाना ही था । सोच रहा था । डॉ. सुदाम चौगुले, प्रा. माणगांवकर व परतेकर सब मदद करने को तैयार थे, 'स्साला, शादी के लिए चंदा करना पड़ेगा, ऐसा लगता है, ऐसा कहकर हम सब हँसते ।

शादी का दिन तय हुआ - 11 मई 1973

'आंतरभारती' के देशपांडे सर ने मई महीने का वेतन और अपने तीन चार सौ रुपये दिये । शादी माहुली में करना तय हुआ । बापूसाहब का एक लंबा अनुभव था, आंदोलनों का बृहद् अनुभव । पुलिस के साथ उसके ससुर-दामाद के संबंध थे । इस कारण उस विभाग की उनकी जानकारी थी । विशेष बात यह थी कि उनका विवाह भी अंतरजातीय ही था । उनके घर बैठक हुई । कानूनी तैयारी सारी हो गई थी । शशि जन्मतारीख का प्रमाणपत्र लेकर आई थी । उम्र से वह सयानी थी । बापूसाहब बोले, 'वह सच है रे । पर मान लो शादी के लिए माहुली जाएंगे और उसके घर के लोग चुपचाप बैठेंगे ऐसा क्यों समझते हो? मामला पुलिस के पास गया, तो पुलिस तो क्रांति के देवदूत है नहीं...उसकी खोपड़ी में 'हिंदू' दिमाग है । वे उसे और तुम्हें तंग करेंगे । खासकर शशि को । यह सब इस तरह से करेंगे कि वे तुम्हें भी तकलीफ में नहीं डालेंगे, इसका क्या भरोसा । उसका बयान पहले ही लिखकर उससे हस्ताक्षर करवा लेंगे और लड़की भगाकर ले गए हैं । इसलिए तुम्हें पत्थर फोड़ने जाना पड़ेगा । उसके घर के लोगों के बारे में मुझे कोई और बताए यह जरूरत नहीं थी ।

ऐसे में यह तय हुआ कि यहीं एफिडेविट करवा कर यहाँ से जाएं । मैं शशि के ही घर में रहने के कारण यह तय हुआ कि मैं पहले दिन ही घर छोड़ दूँ । शशि को सारा कुछ पत्र द्वारा बता दिया । मैं उसके घर बंबई जा रहा हूँ, पी. एस. आइ. के लिए, इस तरह झांसा दिया । नौ तारीख को मैं उसका घर छोड़नेवाला था । उस दिन मैं पैसे जमा कर रहा था। जैसा कि तय हुआ था उसके घर में ताला नहीं लगाया था । दोपहर में कोई नहीं है, यह देखकर उसने कपड़े मेरी बैग में रख दिये थे । पर अधिक लालच ठीक नहीं होता फिर दूसरी साड़ी मेरे बैग में रखते हुए उसके भाई ने उसे देख लिया और सारी पोल खुल गई । शशि बेतरह रो रही थी । उसकी मां और चाची ने उससे पूछा, 'तुम्हें माने ने रखने के लिए कहा क्या ?' उसने अक्ल से उत्तर दिया, 'नहीं, मैं ही रख रही थी । उसे इसमें से कुछ भी मालूम

नहीं है ।' उसे काफी मार पड़ी थी । मैं उसी शहर में था । घर में क्या हुआ मुझे मालूम नहीं था । मार खाने के बाद भी उसने तीन पंक्ति का पत्र अपनी छोटी बहन के पास रखा था । माने को दे, इस सूचना के साथ । उसे छोटी बच्ची ने घर से काफी दूरी पर मुझे दिया। शशि पर सारा घर आग बरसा रहा था । 'वासना की भिखारिन हो गई' से लेकर 'नाक कटवायेगी क्या ?' तक लोग पहुंच गए । कोलाहल किए बिना घर के लोग उसे सुना रहे थे । कड़ा पहरा दिया गया था ।

पत्र में लिखा था कि मैं क्या कहूं । मैं घर आया । दरवाजे की सांकल खोली और भीतर गया इतने में...उसकी मां आई, दोनों की आंखें आग उगल रही थीं ।

'क्या किया रे ? हमने विश्वास किया और आस्तीन का सांप निकला...' कहकर रोने लगी ।

'मैंने क्या किया । क्या हुआ', मैंने ऐसे पूछा, जैसे मुझे कुछ मालूम ही न हो । उस पर उन्होंने बैग खोलने के लिए कहा...उसमें शशि की साड़ी थी । मैंने अवाक् होने का नाटक किया, 'यह सब क्या है, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है' मेरी बात पर उन्हें विश्वास हुआ या नहीं पता नहीं पर उन्होंने मुझे ज्यादा कुछ नहीं कहा ।

मुझे तुरंत घर छोड़ना आवश्यक था । मैंने बैग भरी । मुझे भी चार वर्ष के रिश्ते इस तरह छोड़ने की इच्छा नहीं थी । सच तो यह है कि इन लोगों ने मुझसे बहुत अच्छा व्यवहार किया था । परंतु अब कोई पर्याय नहीं था । मैंने बैग उठायी, सबसे विदा ली और निकल पड़ा । मुझे छोड़ने शशि की चाची और बहन आई । शशि से न तो बात हो सकी न ही मुलाकात इतने विचित्र ढंग से यह सब घटा और अव्यवस्थित हो गया था । मैं तो कोल्हापुर में ही रुकनेवाला था । और मुझे पहुंचाने यानी वहाँ से छोड़ने के लिए पुलिस भी आई थी। उन्हें मैंने बताया था कि मैं बंबई जा रहा हूँ । इस कारण मेरे बंबई के टिकट निकालने से ट्रेन में बैठने तक वे दोनों वहीं रुकीं ।

रेलगाड़ी शुरू होते ही जीवन का दूसरा अध्याय आरंभ होने वाला था । उसकी चाची के चेहरे पर खुशी झलक रही थी । मुक्ति मिलने-सा उसके चेहरे पर आभास था । औपचारिकता वश मैंने हाथ ऊपर उठाया । गाड़ी शुरू हो चुकी थी । कोल्हापुर धीरे-धीरे आंखों से ओझल हो रहा था । मैं क्या कर रहा हूँ, पल भर समझ न पड़ता । सुंदर संजोए सपने छिन्न-भिन्न हो रहे थे । पल भर के लिए लगा कि चलती गाड़ी से कूद पड़ूं । देर आए दुरुस्त आए, दिमाग ने काम किया । बंबई का टिकट लेने के बाद भी बंबई जाना आवश्यक नहीं है, यह काफी देर बाद ध्यान में आया । फिर तेजी से कल्पनाएं सूझी । संकट-समय दिमाग चल गया था । रुड़की स्टेशन पर गाड़ी रुकी, तब अंधेरा उतर चुका था । गाड़ी रुकते ही कूद पड़ा। रात के कारण रास्ता न सूझता । कोल्हापुर किस तरफ, यह सोच रहा था । ससुर रेलवे में ठेकेदार होने के कारण उनकी पहचान होगी, इस डर से रेल की पटरियों से वापसी यात्रा शुरू की । चारों ओर घुप्प अंधेरा था । रेल की पटरियों से चल रहा था । दिखाई न देता। हाथ में सिर्फ बैग थी । पैर गतिशील हो गए थे । और दिमाग में विचारों का कोलाहल था। मैं कहाँ से आया, यहाँ से इस व्यवस्था पर पेशाब करें, यहाँ तक विचार आते; जो व्यवस्था



मुझे आदमी मानने को तैयार नहीं है । लड़की की इच्छा होते हुए और कानूनी व्यवस्था होते हुए भी ये लोग शादी नहीं करने दे रहे है । जाति ! जाति !! सारा जीवन ज्यों कांजीहाउस हो गया । मैं सुलग उठा था । एक बार लगा कि सीधे उसके घर जाकर उसे ले जाएं । जान भी चली जाए तो परवाह नहीं । यहाँ तक सोच गया था, परंतु असहाय होकर आंसू ढुलकाने के अलावा कुछ भी संभव नहीं था ।

कदम तेजी से बढ़ रहे थे । कोल्हापुर की रोशनी दिखने लगी और ठीक लगा । इतने अंधेरे से मैं अकेला ही पैदल निकल आया । मन में यूं ही डर उठा । पर पल भर के लिए डर कहाँ रह गया था । अब कोल्हापुर जाना उचित नहीं था । रिक्शा की और सीधा नारायण के घर चला गया । तकदीर से और कोई नहीं था । वह और उसकी पत्नी ही थे । उन्हें सारी घटनाएं सुनाई । वह भी गंभीर हो गया । दोनों ने रात भर सोचा । संभावनाएं और कठिनाइयों पर सोच-विचार किया । अब सारे पत्ते शशि के हाथ में थे, वह यदि कुछ हिम्मत कर ले, तभी कुछ हो सकता था । रात में उसी के घर पर सोया । खाना किसी ने नहीं खाया।

दूसरे दिन सुबह उठा और बापूसाहब के पास गया । उन्होंने सारा सुना । विचार किया और उन्होंने नारायण को एक युक्ति सुझायी । मेरा पत्र किसी तरह शशि को मिलना चाहिए। मैं कहता हूँ वैसा करो, तू नाम बता और मैंने पत्र शशि को दिया है.... ऐसा गाड़ी के ड्रायवर से कहो । शशि का पत्र है ऐसा कहने पर ड्राइवर पत्र शशि को देगा ।

मैंने पत्र लिखा । नारायण ने यह काम ठीक ढंग से किया । बापूसाहब ने सारे काम एक ओर रख दिये । शहर में तीन-चार फोन किए । एक की गाड़ी मंगवा ली । सुरेश, उर्मिलाबाई सबनीस, रवींद्र सबनीस, अनंतराव पाटणगांवकर सबको फोन पर बात बता दी । पत्र में यह लिखा था कि शशि कहां आए, गाड़ी वहाँ भेज दी थी । परंतु वह जिसे पहचान सके, उसे भेजना चाहिए । ऐसा आदमी नारायण । बापूसाहब, सुरेश में से कोई चाहिए । नारायण गया । उसे उर्मिला चाची को घर लाने के लिए कहा था ।

बापूसाहब और मैं एफिडेविट का स्टांप लाने गए थे । दोपहर का समय था । काफी जगह भटके पर तीन रुपये का स्टांप न मिलता । अंततः स्टांप मिल गया । हम उर्मिला चाची के घर लौट आए । आश्चर्य यह था कि शशि भी झांसा देकर सकुशल वहाँ आ गई थी । मुझे देखते ही रोने लगी । पर रोने के लिए भी समय नहीं था । उसे एक कमरे में रखा और मुझे दूसरी ओर । सारी स्थितियां सुरेश और बापूसाहब ने अपने हाथों में ले ली ।

हम दोनों अलग-अलग कमरों में थे । वह कैसे आई कैसा सब हुआ यह नारायण ने बताया । मेरा पत्र मिल गया था । समय और स्थान मालूम हो गया था । पर निकलें कैसे? चाची एक दरवाजे पर और मां दूसरे दरवाजे पर तकिया रखकर सोयी थी । उनकी दृष्टि से संकट टल गया था । बस इसने लाभ उठाया । पैरों में चप्पल न डालते हुए ही वह घर से निकली । साथ में एक छोटी लड़की ली । गाड़ी होगी तो जाना है, नहीं तो सहेली के घर गई थी, साथ में लड़की भी लेकर गई थी । ऐसा झांसा देने की सुविधा की थी । सौभाग्य से किसी ने नहीं देखा था । गाड़ी में नारायण दिखते ही वह गाड़ी में बैठ गई और गाड़ी निकल पड़ी...आदि...शशि का एफिडेविट हो चुका था । बापूसाहब ने मैजिस्ट्रेट को ही घर

बुला लिया था। तब तक सुरेश ने मंगलसूत्र, अक्षत, ब्राह्मण, हार, फोटो सारी व्यवस्था कर रखी थी। मुझे कुछ भी मालूम नहीं था। लोग भागदौड़ कर रहे हैं। इतना ही मालूम था। मजे की बात यह है यह सब दो-ढाई घंटे में हो गया था। विशेष बात यह थी कि हम इधर ब्राह्मण की साक्षी से विवाहबद्ध हो रहे थे। उसी समय उर्मिलाबाई के घर के सामने शशि के पिता पान की दुकान में पान ले रहे थे। अब तक उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। ब्राह्मण जो कहता, मैं कह रहा था। अक्षत डाले जा रहे थे। देखते- देखते मेजर निंबालकर से लेकर प्रा. दाभोले तक पांच-पचास लोग सुरेश और बापूसाहब ने इकठ्ठा कर लिये थे। इसका श्रेय इन्हें और मेरे अभिन्न मित्र नारायण को था। किसी तरह विवाह कार्यक्रम संपन्न हुआ। अत्यंत सादा। हम दम्पति के शरीर पर कपड़े भी क्या थें। उसके शरीर पर उसी की पहनी हुई साड़ी और मेरी पैंट कुछ ठीक नहीं थी। पर सबने बहुत सराहा। विवाह के लिए सिर्फ इक्कीस रुपये खर्च हुये। बापूसाहब कह रहे थे, 'अब दुनिया में कोई भी तुम दोनों का बाल बांका नहीं कर सकता। एक लड़ाई हम जीत गए हैं।'

फिर भी पूछताछ होगी इसलिये हम फिर अंडरग्राउंड हो गए।

लोग चले गए। शशि को हमारे स्नेही राष्ट्र सेवादल के श्याम पटवर्धन अपने घर ले गए। मैं, नारायण, विश्वविद्यालय की छत पर रात भर बातें करते रहे। तब तक सारा कुछ पुलिस तक पहुंच गया था। पूछताछ तलाश शुरू हो गई थी। बस स्टैंड, रेल्वे स्टेशन और चारों ओर पुलिसवाले बैठे होंगे इसलिये चार दिनों तक कोल्हापुर में ही रुका रहा। उर्मिला चाची, पाटणगांवकर, श्यामराव पटवर्धन, सुरेश शिरपुरकर सबने कुछ न कुछ दिया। शशि एक ही कपड़े में बाहर आई थी। उर्मिला चाची ने उसे कपड़े, आईना, कंघी, सिंदूर, सब दिया। पाटणगांवकर सर ने कपड़े बनवाये।

सबसे अधिक धूमधाम श्यामराव के घर हुई। उन्हीं के घर हम चार दिन रुके। परंतु पहले ही दिन उन्होंने बड़ा अच्छा कार्यक्रम बनाया। रंगोली सजायी और संपूर्ण भोजन परोसा। बहुत अजीब लग रहा था। पूरे जीवन में इतनी खुशनुमा जगह में पहली बार खाना खा रहा था। क्या कमी है, वे स्वयं देखभाल कर रहे थे। चार दिन अर्थात जीवन के उत्सव का हीरो मैं ही। ऐसा कभी नहीं हुआ था। आज तक कचरे के ढेर के किनारे मुझे खाना मिलता। इतना सम्मान कभी नहीं मिला था। जीवन में पहली बार गद्दी पर सोने से कैसा लगता होगा उसका अनुभव ले रहा था। नहीं तो अपनी दरी, बोरा, गुदड़ी कुछ भी चलते।

चौथे दिन रात में रिक्शा बुलाया...उसमें मैं, शशि और नारायण तीनों बैठे। सामान कुछ नहीं था। ...इकलौती बैग, बस। इतना ही सामान। सबसे विदा ली और निकला। अब शशि साथ थी। भविष्य के सपने आंखों के आगे नाच रहे थे। नारायण साथ था। बस या रेल से जाना व्यर्थ था। रिक्शा शिरवली नाके से आगे लायी और हाईवे पर उतर गए। तीनों अंधेरे में खोकर खड़े हो गए। वहाँ शशि के पिता के ट्रक भी हो सकते थे। इसलिए जो भी ट्रक आता उसका नंबर दूर से शशि देखती और हाथ उठाने को कहती। ऐसे कई ट्रक निकल गए। अंत में एक सरदारजी ने ट्रक रोका। तीनों ड्राइवर के पास बैठे। गाड़ी में ड्राइवर के अलावा और दो लोग बैठे थे। मन घबरा रहा था। रात काफी थी और



साथ में शशि थी। पर नारायण का सहारा था। ट्रक शुरू हुआ और कोल्हापुर से विदा ली भूतकाल पीछे छूट रहा था। भविष्य की ओर बढ़ रहा था। आगे क्या होगा ?

समस्या वही थी। ट्रक तेजी से चल रहा था। तीनों मौन बैठे थे। किसी गांव के पास ट्रक अचानक रुक गया। पुलिस सामने खड़ा था। पुलिस को देखते ही मैं घबरा गया। परंतु सरदारजी ने दस की नोट सरेआम बढ़ा दी और ट्रक आगे बढ़ गया। निःश्वास छोड़ा, ट्रक ने गति ले ली थी।

जब सातारा पहुंचे, तब सुबह हो चुकी थी। उठते ही चाय पी और तरोताज़ा हो गए। रात भर जगा था। शरीर अकड़ गया था। पर जीवन नए सिरे से शुरू हो गया था। जिससे बातें करने के लिए मन बेचैन रहता, वह साथ थी। अभिन्न मित्र साथ था। आज तक घटनाएँ घट रही थीं और बुरी घटना घटित होने पर सोच-विचार करता था। भीड़ का आदमी - भीड़ जिस दिशा में झुकती है, उधर ढकेल दिया जाता है। उसी तरह मेरा जीवन हालातों के दबाव में जिस दिशा में झुकता आगे-पीछे झूलता रहता। पर आज पहली बार अलग तरह से सोच रहा था।

नारायण के परिचित के घर बैग रखी और सातारा की गलियाँ घूमने लगा। गर्मी के दिन थे धूप चुभने लगी। 'कमरा किराए से देना है', की तख्ती देखकर पूछताछ करता। पहला सवाल होता, 'नौकरी कहां करते हैं। उपनाम क्या है ?' उपनाम बताने पर कमरा खाली न होता। यदि उपनाम से स्पष्ट न हुआ तो पूछते आप किन लोगों में से हैं, यूं ही जानकारी के लिए। इस तरह जाति की पूछताछ की जाती। साफ था, कमरा न मिलता।

इससे पहले सातारा से मेरा संबंध यात्रा करते हुए वहां के बस स्टैंड से था। सातारा कभी नहीं देखा था। 'अजिंक्यतारा' शक्कर उद्योग के सहारे बसा यह शहर हमें सहारा नहीं दे रहा था। घूम कर मुँह फेनिल हो गया। दोपहर भी हो आई, बेचैन हो गया। कमरा नहीं मिला तो ? फिर उस दिन कमरा मिला ही नहीं। बहुत पैदल चलने के कारण शशि थक चुकी थी। उसे कहीं आराम करने के लिए पहचान का कोई घर न था। बैग को किसी तरह आश्रय मिला था। रात हुई और तीनों ने होटल में खाना खाया और स्टैंड पर गए। हम दोनों सोच-विचार कर रहे थे। शशि पैसेंजर बेंच पर सो गई थी। हम पास ही बैठे थे। रात काफी हो गई थी। पिछली रात भी नींद नहीं मिली। उस कारण आंखें चरपराने लगी थी। हम पास बैठे थे। रात के यात्री आ जा रहे थे। बसें आतीं। लोग उतर रहे थे चढ़ रहे थे और हम बतियाते बैठे रहे। तमाकू खा रहे थे। थूंक रहे थे। गला सूखने पर पानी पी जाते। काफी शांत हो गया था सब कुछ।

उतने में एक पुलिस आया। पड़ोस की बेंच पर एक देहाती सोया था। उसके मुंह की चादर झट से खींचकर 'उठ !' कहकर उसके बालों को पकड़कर उसे उठाया। उसके कुछ कहने से पहले उसकी कनपटी पर तड़ाक से एक झापड़ पड़ी। उसके जागने के पहले ही कान लाल हो गए थे। तत्-पप् करने के पहले ही इस सरकारी हवलदार ने डाँटते हुए उसे एक-दो और रसीद दिए। बेचारा कह रहा था, 'गाड़ी छूट जाने के कारण यहाँ सोया हूं' पर पुलिस कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थी। तेरे बाप की जगह है या तेरा घर है, उठो,

उठो। कहता हुआ उसे बस स्टैंड से बाहर भगा दिया और हमारी ओर मुड़ा। आते ही उसने पूछा कि हम कहाँ से आए हैं। हमने बताया...। कहाँ जानेवाले हैं, पूछने पर क्या बताएँ, इसका विचार कर रहे थे, इतने में उसने शशि पर डाली चादर, उस पहले यात्री-सी खींच डाली। मैं दौड़ा, यह मेरी पत्नी है, मैंने बताया। परंतु उसे विश्वास न होता। वह उसे डांटने लगा। वह जाग चुकी थी। आंचल संवारा और उसे स्पष्ट शब्दों में बताया, 'मैं इनकी पत्नी हूं।' पर कहाँ जाएंगे इसका उत्तर उसने कुछ अलग ही दिया और पुलिसवाला भड़क गया, 'चलो पुलिस स्टेशन, कहने लगा। 'ये सिपाहिया की तो...।' मन में गालियां दीं, पर क्या करता? चलो कहा, साथ में बास्केट के सिवा कुछ नहीं था।

पुलिस स्टेशन आने पर वह अपने आप ठंडा पड़ गया। रास्ते में उसने कई तरह से पैसे मांगे परंतु न मिलते देखकर एक कागज पर नाम लिखकर हमें छोड़ दिया। अब स्टैंड पर जाने का मतलब नहीं था। पर इतनी रात गए कहाँ जाएँ। एक पुलिस को स्थिति बताने पर उसने पुलिस स्टेशन के बाहर ही रुकने की अनुमति दे दी। और इस तरह शादी के बाद की पहली रात पुलिस स्टेशन पर बितायी।

दूसरे दिन फिर कमरे की तलाशी शुरू हुई। मुझे और नारायण को यह मालूम ही था। परंतु जिसे जीवन में कभी कोई कमी न थी, उसे क्या लगता होगा...? यही विचार बार-बार आता। सच तो यह है कि अब सोचने लगा था। नहीं तो अब तक का सारा जीवन आवारा-निठल्ले-सा ही था। होटल में खाना और मस्जिद में सोना। ऐसा ही चल रहा था। अंततः बुधवार पेठ में एक मुस्लिम सज्जन ने कमरा किराए पर दिया। प्रत्येक एक तारीख को किराया चाहिए अन्यथा दो तारीख को सामान सड़क पर होगा - इस शर्त पर कमरा मिला। तब स्वर्ग पाने-सा सुख मिला। बैग ले आया। हाथ-पैर धोये। शशि को कमरे में बिठाकर बाजार गया। थाली, लोटा, कटोरी, स्टोव, तवा आदि कम से कम खाना पकाने का सामान खरीदा और उस रात शशि के हाथ का पका भोजन पहली बार खाया। नारायण का कोल्हापुर में सब ठीक चल रहा था। कैंटिन पर घर चल रहा था। नौकरी लगने तक जितना संभव होगा, कमरे के किराए के लिए पैसे देने का उसने आश्वासन दिया था। दूसरे दिन सुबह वह चला गया। पत्र लिखने को कह गया और जरूरत होने पर निःसंकोच लिखने को भी कह गया। नारायण गया तब मुझे काफी दुःख हुआ।

अब हम दो ही बच गये थे। सुख-दुःख के भागीदार। कम खर्च कर पैसे अधिक दिन कैसे चलेंगे, यह देखना था। पहले दिन से ही नौकरी की खोज में था। कोल्हापुर के 'पुढारी' में कम से कम विज्ञापन तो आते। सातारा में यह भी नहीं। नौकरी कहाँ ढूँढें यह एक बिकट समस्या थी। फिर भी लगन से कोशिश शुरू कर दी। घर में शादी की सूचना विस्तार से भेज दी थी। शशि के घर भी विस्तार से लिखा था। मन में लगता नौकरी लगेगी। अपने लिए आरक्षित जगहें होती हैं...

पर दो महीने बीत गए, नौकरी नहीं मिली।

इस बीच गांव से मां-पिताजी, आप्पा, तात्या सब आए। पत्र में पता लिखा था। वे जब आए, तब दोपहर के चार बजे थे। मैं बाहर गया था और वे रास्ते पर ही बैठे थे। एक



मकान की छांव में। मेरे आते ही सारी पलटन मेरे पीछे आई। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो सारी पलटन मेरे पीछे खड़ी थी। मैंने 'आइये' कहा तब पिताजी, आप्पा, तात्या भीतर आए। ज्यों मय्यत में आए हों। मां को भीतर बुलाया। शशि चुपचाप बैठी थी। इनमें से किसी को उसने नहीं देखा था। और इन्होंने भी उसे नहीं देखा था। गुर्राते सब उसे देख रहे थे। सब चुप थे। कोई कुछ न बोलता। फिर ज्यों बिजली गिरी हो, मां हाथ-पैर मसलती भड़भड़ाकर रो पड़ी,

'हमारा सत्यानाश किया रे, बाबा, तुझे पैदा करने से ईंट-पत्थर को जन्म देती तो अच्छा होता रे।'

वह सुर लगाकर रोने लगी। मैंने तुरंत दरवाजा बंद किया। फोकट तमाशा न खड़ा हो आए। मैं चुप बैठा था।

'अरे, पैदा होते ही क्यों नहीं मर गया ? हमारी नाक काट डाली...हमें जाति-बिरादरी से उठा दिया। तुम्हें जलाने के लिए मैं तुझे सुअर का मूत पिलाऊंगी।'

मां चुन-चुनकर गालियाँ दे रही थी। मेरी तबियत पहले से ही खराब थी। अब मां ने परेशान कर दिया था।

भाऊ आप्पा, तात्या उसे बैठने के लिए कह रहे थे, परंतु उसका मुँह कुछ बंद न होता।

'तुम्हें छोटे का बड़ा किया...कितने संकटों में सुविधाएं दीं...भीख मांग कर पढाया और तू हमारे मुँह पर मूत गया ?'

मैं और शशि पत्थर की तरह चुपचाप बैठे रहे। शशि ने चाय रखी थी। चाय बनाने के लिए कहते ही मां...अरी अभागन हमारे घर में सुरंग लगा दी। समाज से हटा दिया और अब क्या बना रही है ? अरी दुश्मन के हाथों की चाय पीयूंगी, पर तुम्हारे हाथ का कतई नहीं। मैंने शशि को मना कर दिया। उसने स्टोव बंद कर दिया। मां- पिताजी, मुझे पढाने के लिए कितना खर्च आया...इसका हिसाब लगा रहे थे। इतना दो, कह रहे थे। अब तक मैं चुपचाप बैठा था। पर गुस्सा नहीं संभला और मां से बोला, 'मां अब गालियां-शाप देकर कोई फायदा नहीं। तुम्हारे सारे पैसे लौटा दूंगा।'

'हाँ रे बाबा। तूने नहीं दिया तो हम सब भूखों मर जायेंगे क्या ? तूने कुछ खरीदा नहीं तो नंगे रह जाएंगे क्या ?' पिता ने माँ को डाँटा, तब मां का बड़बड़ाना बंद हुआ। पिताजी ने पूछा, 'किसकी लड़की है ?'

मैंने कहा, मैंने पत्र में सब लिख दिया था।

'अरे पत्तर कौन पढ़ सकता है ?'..पिताजी बोले। मैंने 'मराठा' कहा तभी अप्पा बोले, वह मराठा है, इसका क्या सबूत ? महार की नहीं होगी, इसका क्या भरोसा ? किसने देखा है ? तूने देखा है ? और तेरी अपनी जाति क्या मर गई थी ? मां-बाप जिंदा थे या मर गये थे ?'

'हमें बताता...खैर, जाने दे। तू अपना कुछ भी कर। एक बार गट्ठे का छोर छूट गया तो क्या फिर बंधता है ? और तू किस जाति का है, उसे मालूम है ?'

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी।

'अरे, यही नीच जाति की होगी। इसलिए तुम्हारे साथ आई। नहीं तो ऊपर की जाति की औरतें ऐसा करती हैं क्या ?'

काफी समय हो गया था। पिता बोले, 'अब सारे मुहल्ले में बात फैलेगी। बिरादरी से बहिष्कृत करेंगे, दुनिया हमारे मुंह पर टट्टी मारेगी, इसे क्या कहें ? किस मुंह से पंचों में बैठूं? अब सारी पंचायत अंगुली उठायेगी और लक्ष्या, मैं आंखें नीची किए जमीन खोदता रहूंगा। मेरी चार लड़कियां हैं, किनके साथ ब्याहूँ उन्हें ? अब इन्हें संभालनेवाला कौन है ?' कहते-कहते पिता भी रोने लगे। सच तो यह है कि मैं ही भीतर से टूट चुका था। तबियत भी ठीक नहीं थी। तात्या को छोड़ दें तो आप्पा, मां, पिता, मैं स्वयं और शशि सभी रो रहे थे। पर कारण अलग-अलग थे। मैं जाति नहीं मानता ऐसा कहने पर तात्या बोला, 'तू मत मान। हम क्या करें ? तेरे बच्चों को कौन लड़की देगा ? तेरी मय्यत पर कौन आयेगा ? बाप को कौन उठायेगा ? यह जब थोड़े में नहीं निपटेगा तो लक्ष्या...यह तात्या जीवित रहा और तेरा बाप मर गया, तो उसे छूकर मैं अपनी जाति नहीं डुबाऊंगा ? अरे, क्या कर डाला रे? पगले...सारे कुल को बट्टा लगा दिया।'

पहला दौर समाप्त हुआ। काफी रात बीत चुकी थी। शशि को रोटियाँ पकाने के लिए कहते ही सारे लोग उठ खड़े हुये - मां-बाप बोले, 'हम जाते हैं। तेरी महेमाननवाजी के लिए नहीं आए हैं। सातारा में कहीं भी भीख मांगकर खाएंगे, पर तेरे घर में पानी की बूंद तक न लेंगे।'

मैंने बहुत बिनती की, पर कोई नहीं रुका। सारे लोग कैकाड़ी मुहल्ले में चले गए। अब तक दबा कर रखा था। गला हल्का होने तक रोया।

शशि काफी अनमनी हो गई थी। वह कह रही थी, 'मुझे लगा कि हम ही खास खानदानी हैं, पर यहाँ तो और भी भयंकर है।'

रात में पता नहीं कब खाना खाया।

दूसरा दिन उगाने के लिए फिर घर की मंडली और उसमें कैकाड़ी मुहल्ले के लोगों की अतिरिक्त भर्ती हो गई। सब तमाशा देखने आए थे।

'ऐसा अभी तक नहीं हुआ। यह विपरीत हो गया है। अपने में ऐसा कभी नहीं था।'

सब चर्चा कर रहे थे। मैं उठा नहीं था। शरीर इतना दुख रहा था कि क्या बताऊं। मां-बाप सिरहाने-पैताने बैठकर चूना लगा रहे थे। मैं बीमार हूं ऐसा बताया। सबको लगा कि मैं ढोंग कर रहा हूं। सच तो यह था बुखार से जल रहा था। बहुत मानसिक तकलीफ हो गई थी। सिर दुख रहा था। इधर सारे कैकाड़ी नाते-रिश्तेदार घर में थे। न चाय न पानी। भोजन भी नहीं। सही अर्थों में बहिष्कृत तो इन्होंने किया था। सब देख चुके थे। आ रहे थे, जा रहे थे। शशि के प्राण बेचैन हो उठे थे। क्योंकि औरतें जो कुछ भी कह रही थीं, वह न तो बताने जैसा है और न ही लिखने जैसा। मेरी तकदीर अच्छी थी, वे मेरी भाषा में बोलते, न शशि को समझ पड़ता और न बाहर के किसी व्यक्ति को। उदाहरणार्थ- एक औरत कह रही थी, 'अल सुन्नी पात्य बांदीर। आतनक मिगा पाकाका' (अर्थात, अरे लवड़ा देखकर आई है...उसे क्या देखती है ?) मेरी जान जल रही थी। ऐसा लगता कि



चिल्ला-चिल्ला कर बताऊँ और सबको यहाँ से भगा दूँ। पर क्या करता, या हाथ मलकर रह गया था। किसी को कुछ भी कहने के मतलब नहीं था।

धूप काफी ऊपर उठ चुकी थी। चाय नहीं थी। क्योंकि इनमें से कोई भी चाय न पीता था। और उन्हें बिठाकर चाय पीना आग में चाय डालने-सा था। चुपचाप पड़ा रहा। जिसने जन्म दिया था... उसे मैं पाप का लोंदा लग रहा था। जाति जब तक अनुमति नहीं देती तब तक ये सब मुझसे इसी प्रकार व्यवहार करने वाले थे।

अंततः पिता उठे। धोती ली और बोले, 'हम चलते हैं। देशभर में मुंह काला लेकर घूम पर मेरे मरने पर भी अपना मुंह न दिखाना और आया तो भी मेरी मय्यत को कोई तुझे छूने भी नहीं देगा। झांठ उखाड़कर रख दिया। तेरे समय बांझ टुकड़ा खाया होगा।'

मां, बाप, आप्पा, तात्या - जिन्होंने मुझे बड़ा किया...जन्म दिया, जिस मां ने मुँह में निवाला रखा, आंखों की पुतलियों की तरह संभाला, वे सब मुझे ठुकराकर चले गये। बुखार और चढ़ रहा था। सारा कुछ शांत होने में दोपहर चली गई। शशि तो भौंचक्क रह गई। उसका धीरज बंधा रहा था। 'घबराओ मत' कहकर हिम्मत बंधा रहा था। बुखार में पता नहीं क्या बड़बड़ा रहा था। उसकी आंखों में धारा दिखाई देती। निरंतर डर लगा रहता। इतनी अवहेलना...इतना अपमान पहली बार मेरे हिस्से आया। विशेष बात यह थी कि जेब में पैसा न था। और घर में भी कुछ नहीं था। मेरे कुछ ज्यादा ही बड़बड़ाने पर शशि ने सब संभाल लिया। मुझे अकेला छोड़ वह शहर में निकल गई। कुत्ता भी पहचान का न था। सब कुछ पराया...उसने अपनी घड़ी एक वाचमेकर के पास सिर्फ पचीस रुपये में बेच डाली। रिक्षा लायी और अस्पताल लेकर गई। जिन्होंने जन्म दिया वे नाटक समझकर फेंक गए और जिसका वैसे रक्त-संबंध तो नहीं था, उसने पास जो कुछ था उसे बेच कर उपचार किया। डॉक्टर की लिखी दवाइयां खरीदनी संभव नहीं थी। पास पैसा न था, शरीर पर गहना नहीं...कहीं पैसा नहीं...

दिन बीत रहे थे। दिन-दिन भूखों रहना पड़ता। सिर्फ पानी, सिर्फ मुर्रा, बस ऐसे ही चल रहा था। नारायण हर माह पैसे भेज रहा था। परंतु वे किराए के लिए देता। कम से कम सिर पर छत तो थी। इतना तंग आ चुका कि जिंदगी से शर्म आती।

फिर एक रात निर्णय लिया...संभव ही नहीं हुआ, बिल्कुल हमाली भी नहीं मिली तो टिक् ट्वेंटी पीकर सब समाप्त कर दूंगा - निश्चित ही दोनों मिलकर।

अब मैं कुछ ठीक हो गया था। एक पेंटर के पास जाकर बैठता। वह बोर्ड रंगने जाता तब मैं उसके ग्राहक बिठाकर रखता। अंततः हमाली मिली नहीं, पर इस कलाकार ने सहारा दिया। पचास रुपये महीना मिलने लगा था। पचास में क्या होगा ? जहाँ मैं रह रहा था वहां एक सरकारी मुलाजिम सत्ती रहते थे। उन्हें सब कुछ सही- सही बताया...उन्होंने एक राशनिंग के दुकानदार को बताया...इन्हें जो अनाज लगेगा, दे देना। दूसरों के कार्ड पर मिलो, ज्वार और बाजरा शशि पहली बार खा रही थी। जिसने जिद में आकर पांच पचास उड़ा दिये होंगे, उसे खाने के लिए भी नहीं दे पा रहा था। दिन बहुत ही बुरे आ गए थे। कॉलेज में रहते हुए जिस मराठा लड़के को सभी तरह की मदद की थी, उस मतकर को अब हाईस्कूल

में नौकरी मिल रही थी। उसे विश्वास के साथ पत्र लिखा, पर उसका कोरा जवाब तक नहीं आया। अपने दिन बुरे...कोई क्या करेगा ? पर एक ही सहारा नारायण और पेंटर। बीच-बीच में बनकर, कुंभार भी मदद करते बस इतना ही था।

एक बार ऐसी ही एक घटना घटी। मुस्लिम गली में रहता था। पड़ोस में लड़की की शादी थी। उन्होंने खाने और शादी के लिए बुलाया था। उतना ही दिन अपना बचा इसलिये हम खुश थे। हमें लगा, शादी दोपहर में है, इसलिये सुबह रसोई की जरूरत नहीं इसलिये सबेरे खाना नहीं खाया। सारा ध्यान इसी में रहता था कि खाने के लिए कब बुलाते हैं। घर में तो अनाज का दाना न था। रात के आठ बजे थे। तब भी किसी ने नहीं बुलाया। यूं ही मंडप में घूम रहा था। पर कुत्ता न पूछता...

सुबह खाने के लिए बुलाया था, उसे खोज रहा था। वह जल्दी में होता। बिर्यानी की जोरदार सुगंध आ रही थी। पर मेरी तकदीर में नहीं थी। जीभ को ही नहीं तो छोटी जीभ को कहाँ ? सिर्फ नाक से सूंघ रहा था। अब नहीं तो तब बुलायेगा यह सोचकर राह देखता रहा। जेब में चार आने थे। कम से कम दो केले तो आ जाते पर अब वह सभी बंद हो चुका था। मन से सालों को खूब गालियाँ दीं...हम दोनों ने दरवाजा बंद किया और शनिवार चौक में आए। सब बंद हो गया था। आखिर सिनेमा थिएटर के पास आधी-आधी चाय पी और घर लौट आए।

दरवाजा खोलते ही बचपन आंखों के सामने घूम गया, लोग खाकर उठते तब हम पतलों पर टूट पड़ते। मन में आया कि उसमें क्या बुरा है। पर शशि को कैसे बताएँ ? उसे बिना बताए ही मैं बाहर गया। जल्दी से शादी के मंडप तक पहुंचा तो सब एक दूसरे से कह रहे थे। 'आओ भाई, खाना खाओ' और एक ही थाल में, वे जितने समा सकते थे, बैठ रहे थे, मेरे दिमाग में एक कल्पना सूझी...स्साला, ये मुसलमान हम जैसे पतलों में नहीं खाते। घर आया, लोटा भर पानी पिया। जिसके लिए शादी की...वह शरीर सुख भूखे पेट में उलझ गया था, यह कहने की भी सुविधा नहीं थी। छटपटाता पड़ा रहा। सारी दुनिया को गालियां देता। व्यवस्था पर अकेला ही बिस्तर पर मूत रहा था।

एक बार एक शानदार आइडिया दिमाग में कौंधा...इस देश की व्यवस्था चलानेवाली सरकार रहती कहाँ है? बंबई और दिल्ली में न ? बाई की 'गरीबी हटाओ' का नारा था। बस। पार्लियामेंट पर बम फेंकना और साली यह खुजली हमेशा के लिए मिटा देना। फिर सचमुच एक सपना दिखा...उसमें पार्लियामेंट पर मैं बम फेंकता हूँ और यह काल्पनिक जनता का अधिराज्य गरीबों के, दलितों के और मेरे जैसे जो इस देश के कुछ लगते हैं उनके टुकड़े-टुकड़े होते देखता। जमीन में गाड़ दिये आग-सा घुट रहा था। रिजर्वेशन के बारे में कोई कहता, तो इच्छा होती कि उसका टेटुंआ दबा दूं। साला सब फालतू लगता। ऐसा लगता कि सबके नकाब नोंच डालूँ।

मन में आता कि अपनी सरकार अंतर्जातीय विवाह करने पर सत्कार कर सहायता देती है। मैं भी आजमाऊँ। सातारा जिला परिषद को आवेदन भेजा। उनकी प्राप्ति रसीद मिली, एक महीने बाद। नेता भाषणों और नारे के उस पार कुछ झांठ हाथ लगने न देते। इधर



हम हाथ मलते रह गये थे। जिला परिषद का पत्र था - फार्म भर भेजिए। बस, अब जिला परिषद गया। वहां अधिकारी गायब और क्लर्क मुंह लगा। कोई ध्यान न देता। उन्हें पत्र दिखाया तब कोरा-सा 'बैठिए' कहा...यह समाज कल्याण विभाग था। अध्यक्ष से मिलने की इच्छा थी तो वे तोंद पर हाथ फेरते हुए फोन पर बात कर रहे थे। डॉ. आंबेडकर के नाम पर जिंदाबाद..सिर्फ फालतू बातें। अंततः संबंधित क्लर्क आए। उन्हें फार्म दिया।

इसे ले जाइये और टाइप कर चार प्रतियों में फोटो समेत लाइए। मन में आया कि स्साला। इन्हें भीख मांगने की बारी लगती है सरकार की ? अब इसे टाइप करवाना...फोटो खिंचवाना अर्थात दस पंद्रह का खर्च लगेगा।

पैर पटकते अर्जी वापस ले आया। शशि को बड़ा कुतूहल था...आते ही उसने पूछा क्या हुआ ? बिचारी पर सारा गुस्सा उतर गया। अध्यक्ष से क्लर्क तक की मां चोद डाली, बस। घर में नहीं दाना और मुझे कहो नाना, ऐसी स्थिति थी। पेंटर को बताया...वह हँसा। फार्म ले गया। टाईप कर लाया। फोटो उतारने के लिए पैसे दिये। जे. के. आर्टस् से आया हूँ कहने पर फोटो कम पैसे में खींचा। हाथ और मुंह का संतुलन न बन पाता अर्थात् एक समय का किसी तरह चल रहा था। सारे फार्म पहुंचा दिये बोले, 'पंद्रह दिन में सूचित करूंगा। अध्यक्ष से मिला, सब बताया, पर अध्यक्ष तो कोई डॉ. आंबेडकर न थे जो उनका मन पसीज जाता। यूं ही आश्वासन दे दिया, 'देखूंगा।'

कई चक्कर लगाए। कभी साहब नहीं, कभी मामला पुणे गया है, कभी अध्यक्ष नहीं, इस तरह दो-तीन महीने निकले और मैंने इसका पीछा छोड़ दिया। बाद में छः महीने बाद उत्तर मिला। 'यदि दो में से एक अस्पृश्य हो तभी मदद दी जा सकती है।' मुझे यह मालूम नहीं था कि अस्पृश्य किसे कहते हैं ? अरे बेवकूफों, महार को कम से कम महारियत होती है। गांव से कुछ न कुछ मिलता रहता है। सिर पर जैसी भी हो एक छत होती है। इधर मुझे 'घर की मां रहने नहीं देती और आकाश तक हाथ न पहुंचते। निरंतर भटकते रहनेवाला। दिसा-मैदान के आदमी अस्पृश्य नहीं मानते। फिर क्या कहते हैं ? पेट के लिए पांवों में घिर्री बांधनेवाला आपका कौन ?' इसी तरह के सवाल दिमाग में चक्कर लगा रहे थे।

दूसरा कॉलम था, 'पर तुम्हारे बच्चे को तुममें से किसी एक की जाति लगायी जा सकेगी।' यानी जिस जाति-व्यवस्था पर प्रहार करने के लिए भूख सह रहा हूं उसे और मजबूत करना है ? और यदि मेरे बेटे ने किसी की जाति नहीं लगाई तो क्या वह इस देश का नागरिक बनेगा। ऐसा विवाद किया और सरकार, सुविधाएं, 'गरीबी हटाओ' कोई कहता तो गिनकर जूते मारने की इच्छा होती।

दिन भयंकर थे। अब तक अकेला था..कुछ भी कर सकता। अब संभव नहीं था। पर ज्यों शशि ने सारा कुछ निभा लेने का प्रण कर लिया हो। सच तो यह था कि हिजड़ा करार देकर मुझे भगा देना चाहिए था। पर वैसा नहीं हुआ। गुस्सा, कोफ्त और आदमी की दुनिया के स्वार्थी, निर्दयी, संवेदनहीन और शैतानों के बीच मैं जी रहा हूं, ऐसा लगता। धीरे-धीरे पर निश्चित आपराधिक वृत्ति पैदा हो रही थी।

चोरी, चोर क्यों करता है ? लोग अनैतिक क्यों हो जाते हैं ? वे मूलतः वैसे ही होते

है क्या ? बिना तकलीफ के लाखों रुपये कमानेवाले नीतिवान कैसे ? केवल पूंजी लगाकर ब्याज खानेवाले भड़ुए...नहीं हैं क्या ?

अनेक सवाल सामने खड़े हो जाते और उनके स्वप्निल उत्तर तलाश रहा था। ऐसा लगता कि पाप-पुण्य पूर्वजन्म के फल, तकदीर सबों की मां की ऐसी-तैसी कर दे। पर विधवा की छटपटाहट-सा हाथ मलने के अलावा कुछ न कर पाता।

पेंटर की दुकान पर एक कार्यकर्ता आये थे। मेरी उम्र के थे। गड़ेरिया जाति के...काले उनका नाम था। उनकी एक छोटी-सी संस्था थी...उसका बोर्ड रंगवाने आए थे। पेंटर नहीं था। इसलिए बातें करता बैठा, तब भी राजनीति, महंगाई, भ्रष्टाचार आदि पर ही जाते। साथ में, जाति-व्यवस्था भी आ ही जाती। मैं बहुत चिढ़कर सारे राजनैतिक दल एक-जात, कितने हरामखोर हैं, यह बता रहा था। जाति-व्यवस्था, धर्मसंस्था पर जब बोलना शुरू करता तब या तो पागल करार देते या बेशर्म होकर जाति-व्यवस्था का समर्थन करते। तब इस कालिया से दोस्ती हो गई थी। वह युवक संगठन में काम कर रहा था। उसे मैं नौकरी के लिए बहुत कहता रहा, वह सिर्फ आश्वासन देता। परंतु वह गांव से आया था, उत्साही था। वह बोला, 'बाबा रे जाति, पैसा, सिफारिश में से तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। और हम सत्ताधारी दल के साथ जाकर, बाप को सलाम करते हैं। इससे अच्छा एक काम कर, मैं तुम्हें एक आदमी के पास ले जाता हूं। वह तेरे जैसा ही बड़बड़ाता रहता है। ब्राह्मण ही है पर जनेऊ के चक्कर में नहीं है। बातचीत में बहुत अच्छा है पर अधिकतर चर्चा ही होती है। तेरा भी अच्छा समय बीतेगा और आदमी भी भला है। कुछ न कुछ मदद करेगा।

सच तो यह था कि इंसान और इंसानियत से मेरा विश्वास उठ गया था। जन्मदाताओं ने ही संबंध तोड़ लिये थे। ऐसे में अपना भी कोई हो सकता है, इस पर विश्वास ही न होता। परंतु, उसने आग्रह किया तो एक कोशिश करके देखेंगे, कहता मैं काले के साथ सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गया तो दरवाजा बंद था। उसने दरवाजे की सांकल बजायी।

एक युवा गोरे व्यक्ति ने हँसते-हँसते दरवाजा खोला। हम भीतर गए तब एक सज्जन बाहर निकल रहे थे। पर रुक गए। रावसाहब काले ने उनसे परिचय कराया।

'ये हैं नरेंद्र दाभोलकर....यहाँ समाजवादी युवक दल का काम करते हैं और ये हैं लक्ष्मण माने।'

'आंतरजातीय विवाह' वगैरह मामूली औपचारिक बातें हुईं। डॉ. दाभोलकर ने हाथ की बैग नीचे रखी। कहाँ से आया, फिलहाल क्या करते हो आदि निजी बातें पूछीं। आंखों में सहानुभूति छलक रही थी। परंतु मैं अपनी ओर देखता तो दाढ़ी की खूंटियां बढ़ गई थीं। शरीर पर गंदे कपड़े...मुझे अपनी ही शर्म आने लगी। अत्यंत अस्पष्ट जानकारी दी...वास्तविक स्थिति बताने के लिए जीभ तैयार न होती। इधर-उधर की गप्पें हाँकने के बाद दाभोलकर बोले, 'मैं परली में नौकरी पर हूं...आप ऐसा करें, छः बजे आएं, हम फिर बातें करेंगे।'

आदमी समाजवादी है। कम से कम अपना सहयात्री है। कुछ करेगा यह विश्वास मन में लेकर उठा। पर अब आस्था नहीं बची थी। ऐसे, स्वयं को समाजवादी कहलानेवाले सैकड़ों हरि के लाल देखे थे। मन में नहीं प्रेम तो दिखाने से क्या होगा, ऐसी ही स्थितियाँ थीं।



हाथ हिलाते लौटा। परंतु आशा की डोर कुछ मजबूत हो गई थी।

फिर कोशिश करके देखने के लिए सात साढ़े-सात बजे सीढ़ियां चढ़ा। डॉ. दाभोलकर मरीज की जांच कर रहे थे। पेशंट देख रहा हूँ, जरा रुकिए। कहकर गए। मैं अंदाज ले रहा था। पर उतने बड़े घर में स्त्री दिखाई न पड़ती। रसोई स्त्री बनाती, पर वह पत्नी न लगती। वह रसोई बनानेवाली होगी। मुझसे बड़ी उम्र के आदमी ने शादी नहीं की है और मैं...ऐसा ही कुछ सोच रहा था। इतने में डॉक्टर आए। दरवाजा बंद किया और कुर्सी में बैठते हुए बोले 'फरमाइए'....

मैंने ज्यों सा रे ग म याद ही कर लिया था....सब गा गया। बापूसाहब, सुरेश शिरपुरकर, अनंतराव इन लोगों की ओर से आया हूँ, बताने पर बात कुछ जम गई। मुझे लगा अब ये चाय पिलाकर भगा देंगे। वे भीतर उस महिला से कुछ बातें कर रहे थे। मुझे लगा चाय के लिए कह रहे होंगे, मैं फोटो की ओर देखता रहा। वे बाहर आए, उनके हाथों में पांच थैलियां थीं। गेहूं, चावल, ज्वार, दाल सब डिब्बों से निकालकर थैलियों में भरा था। मिट्टी के तेल की कैन और मीठे तेल की केतली। दस मिनट पहले यदि किसी ने बताया होता तो मैंने निश्चित ही गालियां दी होतीं। घर का सारा अनाज भले ही न दिया हो पर थैलियां भर दी थीं। जेब में हाथ डाला और बीस रुपये की नोट दी। मैं पुतले-सा खड़ा रहा। मैं सपना तो नहीं देख रहा ? ऐसा भी लगता, इतने में वे बोले, 'देखो, यह ले जाओ। कुछ भी कम पड़े, निःसंकोच मांग लेना। यह पराया घर नहीं।'

मेरी स्थिति बहुत अजीब हो गई, उपकार का बोझ लगने लगा। वे बोले, 'यह दे रहा हूँ, इसे उपकार मत समझना। तूने जो काम किया है, वह तुझसे लाख गुना बड़ा है। उसकी यह कीमत है। ध्यान रखना, हम हर रविवार को यहीं गप्पें-बातचीत के लिए बैठते हैं, आते रहना।'

सामान लेकर मैं घर कैसे आ गया, मुझे भी नहीं मालूम। पर शशि को निश्चित क्या हुआ, यह नहीं बता सका। कितनी देर तक रोता रहा। और शशि को भी सारा हाल रोते-रोते ही सुनाया। ईश्वर-भगवान का 'फैड' दिमाग से सीमापार हो चुका था। और यदि होगा ही तो इन थैलियों में है ऐसा लगने लगा। सब राक्षस नहीं हैं। अभी भी आदमी कहीं जिंदा है, इसकी रसीद मिल चुकी थी। अन्यथा जिसे देखा भी नहीं था, वह इतना विश्वास कर सकता है ? ये विचार मन में घूमते रहते। गला भर आता। गला फाड़कर जोर से रोने की इच्छा होती। बहुत बुरे हाल हो गए थे। उपेक्षा और तिरस्कार यों घुट्टी में मिलाकर पिलाया गया था।

अब दल की बैठकों में नियमित जाने लगा था। दाभोलकर से परिचय काफी बढ़ गया था। परंतु दल का स्वरुप ब्राह्मणमय लगता। सिर्फ चर्चाएं बाँझ लगतीं। नौकरी की कोशिशें चल रही थीं। कोकाकोला की बोतलों बेचकर अकालग्रस्त लोगों के बच्चों की मदद करना, कहीं सब्जी बाजार में आंदोलन करता हुआ दल आगे बढ़ रहा था। लेकिन नौकरी ने मुझे ठंडा कर दिया था। पर अब एक समर्थ सहयोगी मिल गया था, यही एक संतोष था।

घर में क्या खत्म हो गया है। इसकी चिंता अब अकेले को नहीं थी। दल भी देखा

करता था । दल अर्थात दाभोलकर ही देखा करते । नये लड़के आ रहे थे...चर्चाएं हो रही थीं । शशि सिलाई काम जानती थी । पर मशीन नहीं थी । एक मुसलमान सज्जन ने अपनी सिलाई मशीन मुफ्त उपयोग करने के लिए दे दी । रास्ता जरूर कांटों भरा था, पर अब दिशा मिल गई थी । धुंधली ही सही पर दिशा थी । उपकार की भावना की जगह कर्तव्य करने वाले लोग थे ।

डॉ. दाभोलकर की पहचान से सिलाई का काम मिला । चार आने दर्जन चड्डियाँ और आठ आने दर्जन थैलियां । शशि सुबह से शाम तक सिलाई करती । दोनों समय का खाना मैं पकाता । उसे मदद कर रहा था । पर पत्नी कमा रही है और मैं खा रहा हूं यह मन स्वीकार न करता । नौकरी की तलाश चल रही थी । शशि की कड़ी मेहनत से हफ्ते में 15 से 20 रुपये मिलते । बचे पैसे दाभोलकर देते । अब कम से कम भूखों न सोते । दवाइयों के लिए पैसे न गिनने पड़ते । घर के लोगों ने रिश्ता समाप्त कर दिया था । बीच-बीच में पोपट आता रहता । कुछ मदद भी करता । परंतु मां-बाप को कुछ पता न होता ।

चार-पांच महीने इसी तरह तंगी में गुजर गए । एक बार 'साधना' के संपादक यदुनाथ थत्ते आए हुए थे । मेरी पहचान नहीं थी । जिस व्यक्ति के समर्थन में मोर्चा निकाला था, वह आदमी सामने खड़ा था । भाषण दे रहा था । परिचय हुआ था । परंतु 'साधना' का संपादक इतना सीधा और सरल होगा, मन न मानता । दाभोलकर ने मेरी सारेगम फिर दुहरायी। यदुनाथ ने 'देखता हूं' कहा और मैं हमेशा की तरह दल और थैलियां-सिलाई के दोहरे काम करने लगा । पर अब जीने की चाह बढ़ती गई ।

फिर अचानक तार आया । भरी दोपहर में, 'तुरंत पहुंचो, कारहाटी व्हाया बारामती-' यदुनाथ । बस इतना ही तार था ।

दाभोलकर के पास गया । वे घर पर नहीं थे । गांव गये थे । उनकी पत्नी सौ. डॉ. शैला दाभोलकर से बातें कीं । उन्होंने सलाह दी अकेला ही जाऊं । तुरंत बस ली । स्पष्ट है टिकट के लिए पैसे शैला भाभी ने ही दिये थे । अब संबंध पूरे घरेलू हो गए थे ।

वैसे बारामती इलाके की जानकारी थी । बैंड बजाने के दिनों में गांव- गांव घूमा था । कारहाटी पहुंचने तक काफी रात हो चुकी थी । बस ने रास्ते पर ही उतार दिया था । वहां पिकअप शेड वगैरह कुछ नहीं था । गांव भी पास नजर न आता । ऊपर से रात घुप्प अंधेरी। हाईस्कूल कैसे पहुंचूंगा इसी सोच में खड़ा था । इतने में दो-तीन साइकिलवाले आए । उनके साथ गांव गया । हाईस्कूल की पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि हाईस्कूल वहां से दो मील पर है। सब दिशाएं बताते परंतु कोई भी साथ आने को तैयार न था । अंत में एक विद्यार्थी आया। गांव से काफी दो-तीन चालनुमा इमारतें दिखाई दीं । रास्ते में, विद्यार्थी ने काफी जानकारी दी थी । महीने दो महीने में शिक्षक बदल जाते हैं, कोई टिकता नहीं है । भीतर से मैं भी डर गया था । परंतु यदुनाथजी ने भेजा था । शायद जम जाऊंगा, इसी विचार से एक दो मंजिले इमारत के सामने खड़ा था । रात के नौ बज रहे थे । दरवाजा खोला गया। भीतर से मध्यम उम्र की एक महिला ने दरवाजा खोला । कहां से आया आदि बताने पर पहचान हो पायी । उस महिला ने कहा, 'बाबाजी से मिलिए,...ऊपर हैं।'



सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गया वहाँ एक सज्जन बैठे थे । सफेद शुभ्र लंबी दाढ़ी सहलाते, गोद में बिल्ली को सहलाते, भगवे ढीले ढाले कुरते में वे बैठे थे । ये ही बाबाजी हैं । जिन्होंने दरवाजे पर स्वागत किया वे माताजी । बाबाजी को परिचय दिया कि मैं कहाँ से आया हूँ उन्होंने नौकर को पुकारकर खाना लगाने के लिए कहा । लोंढे नामक ये सज्जन थे । उन्होंने सोने के लिए छात्रावास में भेजा ।

दूसरे दिन आर्डर ली । रिपोर्ट किया । उन्हें बताया कि जल्दी ही परिवार लेकर आ रहा हूं । इतना कहकर सातारा के लिए चल पड़ा । सातारा आकर शशि को सारा कुछ बताया। वह खुश थी । ऐसा लगा अब गाड़ी पटरी पर आ गई है । सामान बांधा...सबसे विदा ली फिर घर हिलाया - सातारा से कारहाटी । डॉ. दाभोलकर ने पत्र लिखने के लिए कहा था। सातारा में काफी कठिनाइयां थीं ।

कारहाटी पहुंचे । छात्रावास की जिम्मेदारी मुझ पर थी । इसी कारण छात्रावास में ही मुझे दो कमरे मिल गए ।

कारहाटी गांव बारामती और जेजुरी के बीच था । आठ नौ घर थे । बिल्कुल भारतीय गांव काराठी नदी के किनारे बसा था ।

गांव और हाईस्कूल के बीच अधिक नहीं बनती थी । आसपास के लड़के पढ़ने आया करते । नदी के एक किनारे हाईस्कूल और दूसरे किनारे छात्रावास था । दोनों निर्जन, सुनसान टीले पर थे । बरसात के दो महीने छोड़ दें तो बाकी समय नदी सूखी ही रहती । सुबह अच्छा लगता परंतु दोपहर में घर, स्कूल में रुकने की इच्छा न होती । मेरा अच्छा था, सुबह ग्यारह बजे आता तो सारा समय पढ़ाने निकल जाता । परंतु, शशि की हालत बहुत बुरी थी भूतों-सा रहना पड़ता । पर उपाय न था ।

स्कूल में बाबाजी और माताजी की हुकूमत चलती । स्कूल की जमीन थी । कृषि-स्कूल थी यह । ग्रामीण विभाग में शिक्षा का किस तरह सत्यानाश हो जाता है, यह मैं पहले ही देख चुका था । पर अब शिक्षक के रूप में देख रहा था । लड़के स्कूल में निरंतर अनुपस्थित रहते । उन्हें फसल की, घर की और बच्चों की देखभाल करनी होती । यह सब संभालते हुए पढाई करते । स्कूल में अनुपस्थित रहते । बच्चे देहात से ही होते । ठीक से लिख-पढ़कर भी न सकते थे । वैसे तो वे आठवीं- नवीं के होते, पर हालत ऐसी थी । शिक्षक क्या मेहनत करें ? दिमाग में काफी अच्छी कल्पनाएं होतीं । पर बाबाजी-माताजी और बच्चों के कुछ गुण-दोष होते, कुछ मेरे । पर एक बात लगती कि मैं यहां काफी दिन टिक नहीं पाऊंगा । संस्था के आर्थिक व्यवहार उसकी व्यवस्था के बारे में नहीं लिखूंगा क्योंकि वह अपने आप में एक पूरा विषय है, परंतु तानाशाही में ज्यादा समय जम पाएगा, ऐसा न लगता ।

वैसा ही हुआ । वार्षिक परीक्षा हुई । कक्षा के तीन छात्र पास, बाकी सब फेल । माताजी का पारा चढ़ गया । रिज़ल्ट अच्छा लगाइए । फिर पेपर जांचे गए । फिर किसी तरह आधे लड़के पास हुए । फिर माताजी का हुकूम...फिर बच्चों को बुला लिया गया । पेपर दिये, लिखवा लिया और सारे लड़के पास । कड़ुवा है पर यह सच था । स्कूल चलनी थी । शिक्षकों का घर-परिवार चलना था । शिक्षा का यह कारखाना निरंतर चलना आवश्यक था ।

परीक्षा का रिज़ल्ट लगते ही तीन-चार शिक्षकों को हटाने की नोटिस दे दी गई। उसमें मैं भी था। अब क्या करें ? कहाँ जाएँ ? घर जाना संभव नहीं था। सातारा में बेकार ही रहता। पर वहाँ सहारा था। डॉ. दाभोलकर को एक लंबा पत्र लिखा। उनका उत्तर आया...'तू फिर सातारा आ। कमरा ढूंढ कर रखूंगा और मेरे जीवित रहने तक तुझे सड़क पर नहीं रहना पड़ेगा, यह ठीक से जान ले। तुम्हें बहुत नहीं दे सकूँगा, पर तुम जैसे को संभालना हमारा कर्तव्य है।' आदि.....आदि। बहुत सहारा लगा। फिर सातारा लौट गया। पुरानी संस्था ने मुझे क्यों निकाला यह पता नहीं।

फिर सामान बांधा। माताजी-बाबाजी से विदा ली। फिर वह लड़का याद आया जो बता रहा था...यहाँ शिक्षक टिक नहीं पाते और टिकेंगे भी नहीं, हर दो-चार महीनों में यहाँ नया आदमी लगता है।

मैंने इसका अनुभव लिया था। सबसे विदा ली और फिर बस पकड़ ली। अब फिर एक अनिश्चित भविष्य की ओर यात्रा शुरू हुई।

जब लौटा तब तक कार्यकर्ताओं ने कमरा तयकर रखा था। स. यु. द. के सहयोग से मेरा साहस बढ़ गया था। उनकी मदद से फिर सातारा में स्थिर हो सका। अब मंगलवार पेठ में होलार लोगों की बस्ती का कमरा मिला था। नौकरी नहीं मिली थी। परंतु स. यु. द. का काम कर रहा था। घर की सारी व्यवस्था डॉ. दाभोलकर और स. यु. द. के कार्यकर्ताओं ने अपने घर के व्यक्ति-सी करके रखी थी। धनंजय कासकर नामक कार्यकर्ता अपने रिश्तेदार के राशनिंग के दुकान से अनाज लाकर देता।

पास-पड़ौस बहुत गरीब था। घर के सामने ही एक छोटा मैदान था। वहाँ दल छोटे बच्चों के लिए शाखा चलाता था। स्कूल जा रहा था। चंद्रकांत शेड़के नामक कार्यकर्ता दल शाखा का कामकाज देखता। बच्चों को गाने कहानियाँ और खेल सिखाता।

दिन बीत रहे थे। वर्ण-संघर्ष भूलकर सामूहिक रूप से कार्य करते। इधर शशि को दिन चढ़ गये थे। वैसे तो भीतर से खुशी हुई थी। झूम उठने जैसी कोई बात नहीं थी। स्थितियाँ वास्तविक आभास कर देती थीं। हम दोनों ने सोचा, यह बच्चा हमें नहीं पोसायेगा, गर्भपात करवा लेंगे। अपने साथ एक नये जीव को क्यों संकट में डालें। निर्णय पक्का हो गया। इधर पुणे जाने की तैयारी में था। यदुनाथ थत्ते आ गये। उन्हें सारा बताया...तय था। यदुनाथ गर्भपात का विरोध करते...ऐसा मत कीजिए, एक गंभीर स्थितियों से गुजर रहे हैं। पहला ही बच्चा है...यह सब बता गए। निश्चित ही शशि का इरादा बदल गया। मेरे लिए बदलने के अलावा कुछ नहीं बचा था। फिर बेटा हुआ, उसकी भी खुशी हुई। एक चंचल लड़का घर में खेलने लगा। और यदुनाथ थत्ते के आभार मानकर आनंद का उत्सव मनाया। परंतु उस समय वह लड़का परेशान ही कर रहा था, यही सच था।

नौकरी की तलाश चल रही थी। डॉ. पुरुषोत्तम खुटाले सेवा दल के परिवार से थे। सातारा में उनका थियेटर है। डॉ. दाभोलकर ने खुटाले से बात की और मुझे खुटाले के 'राजलक्ष्मी' पर कुछ दिन के लिए डोअर कीपर के रूप में साठ रुपये महीने की नौकरी लगी। सुबह 11 से रात 12 काम करना होता। सिनेमा शुरू रहते बीच में ही खाना खाता।



सिनेमा टाकीज के दूसरे साथी बेवड़ा से मटका तक की सारी बातें करते। टिकटों का कालाबाजार तो आम बात थी। मुझे तो पैसे चाहिए ही थे। दूसरे लोग ब्लैक में टिकट बेचते, मुझे लालच होता। परंतु मन तैयार न होता। सारा याद आता।

हाईस्कूल में पढ़ते समय जब निरगुड़ी के लड़कों के कमरे में रहता था, तब हमेशा सिनेमा देखने की इच्छा होती। मैं उनके साथ थिएटर पर जाकर पोस्टर्स देखता। सब जब पान-वान खाकर कमरे में लौटते तब मैं उनका हँसी मजाक सुना करता या तो स्टोरी सुनता। फिर इसमें से भी रास्ता निकल आया...सिनेमा में भीड़ होने पर टिकट न मिलता। मैं स्कूल छूटने पर लाईन में खड़ा रहता और कमरे के सारे लड़कों के लिए टिकट निकालकर देता। उन में से बच जाने पर ब्लैक से बेचता और मुझे सिनेमा मुफ्त में पड़ता। यह आदत मेरी जिंदगी में नारायण बोड़के नामक लड़का आने तक चलती रही। नारायण को यह सब पसंद नहीं था। वह बोलना बंद कर देता। फिर सिनेमा जाते समय मुझे अवश्य ले जाते। टिकट वही खरीदता। इसलिए उसका प्रभाव हमेशा रहता। परंतु जिन लडकों को मैं टिकट निकाल देता वे ही चारों ओर चिल्लाते फिरते, 'हमेशा सिनेमा देखता है, टिकट का कालाबाजार करता है। सिगरेट का धुआं उड़ाता आवारा गर्दी करता है। वो क्या पढ़ेगा ? यहाँ से उसने फलटण में 'रांड' रखी है, तक सारा छनता हुआ पिता के कानों तक पहुंचता।

आज सच है कि पैसों की आवश्यकता है। पर फिर टिकट बेचूँ, ऐसा कभी लगता था। इस साठ रुपल्डी के लिए 12 घंटे खटना पड़ता है। इसलिये एक दूसरा विचार किया। धंधा करना चाहिए।

फिर दाभोलकर से बात हुई। थिएटर की बात नहीं बन पा रही थी। और स. यु. द. के कार्यकर्ताओं से बात कर एक छोटा धंधा शुरू करने का तय हुआ। फिर दाभोलकर की पहचान से कपड़े की दुकान से थोक में ब्लाउज पीस खरीदे और साइकिल पर घूम-घूमकर सातारा से और आसपास के देहातों में बेचने लगा। पर यह धंधा पाव-बटर से फायदे का था। सातारा में मोती चौक में रास्ते के किनारे बैठकर ब्लाउज पीस बेचने लगा और सावधानी बरत रहा था कि अपने को कोई देख तो नहीं रहा है। दिन में पाँच-छह रुपये मिलते। सातारा की सारी गलियां इस ब्लाउजपीस बेचने के कारण परिचित हो गई। एक दिन ऐसे ही पीसेस लेकर साइकिल पर घूम रहा था। सातारा में कुछ लोग पहचानते थे। दाभोलकर के एक व्यापारी मित्र थे। काफी पैसे वाले थे। दरवाजे पर हाथी डोलते से दस ट्रक खड़े रहते। उनके घर के सामने से 'ब्लाउज पीसवाला' चिल्लाकर मैं आगे बढ़ रहा था। उस अमीर घर की एक गोरी चमड़ीवाली ने बुलाया। मैं उधर गया तो सारी-सारी औरतें 'देखें-देखें' कहकर गठरी से काफी पीसेस देखने लगीं। वैसे मैं दो-चार पीसेस दिखाता था। परंतु घर दाभोलकर के मित्र का है...पैसेवालों का है। ग्राहक बड़े हैं। झटके में पांच दस पीसेस बिक गये तो अच्छा होगा, इस हिसाब से सारी गठरी खोलकर दिखा रहा था। किसने कितने पीस खरीदे पता नहीं।

सारी लड़कियों ने घेर रखा था। मेरा ध्यान इस ओर था कि कितने पीस लेते हैं। और वे चुनने में मग्न थीं। बस, एक भी पीस उन्होंने नहीं खरीदा। सारे पीस वापस आए होंगे।

इसलिए चिढ़कर 'चमड़ी देंगे पर दमड़ी नहीं देंगे' कहकर उनकी ओछी जाति को गालियां देता आगे बढ़ा ।

शाम को घर आया और कितने पीस बिके और कितने पैसे मिले, उसका हिसाब करने लगा, तब पांच पीस कम थे । मेरी तो मति मारी गई थी । बीस रुपये का नुकसान हो गया था । शशि भी दुःखी हुई । गरीबी में आटा गीला, क्या करें । मन को समझाया किसी तरह। गूंगी की लुट गई इज्जत, न चीख न चिल्लाहट । उन्होंने मेरे पीस चुराये ऐसा कहने पर सब मुझे मूर्खों में गिनते । स्वयं को गालियाँ देते, हाथ मलते बैठा रहा ।

व्यापार में पैसे अच्छे मिलते । पर मिलते तो लॉटरी खुलने-सा, नहीं तो मुँह में झाक आने तक घूमना पड़ता । तब भी चाय-पानी भी जुगाड़ न होता । शशि घर में कागज के लिफाफे चिपकाते बैठती । कमरतोड़ मेहनत करने पर भी दिन में रुपया, डेढ़ रुपया बचता। उसके दुख देखे न जाते । गाड़ी-सा पेट लेकर काम करना रसोई बनाना । मन से तकलीफ होती । स्साला मेरे लिए इस लड़की ने इतने दुख क्यों झेलना । उसका बाप लखपति आदमी है । घर में चार चक्के की गाड़ियां । बहनें बड़े मजे से रह रही हैं । गद्दियों पर घूमती हैं और इसे क्यों भीख पर जीना पड़ता है । मैं ही अपना विचार करता और यह सिर्फ प्रेम की शक्ति है, यह मुझे आश्वस्त न करता । 'चार दिन की चांदनी' जैसी दुर्दशा तो नहीं होगी ? हमेशा एक अनदेखा डर होता । खूब मेहनत से काम करता । अब उसकी तबियत ठीक न रहती। डॉक्टर और दवाइयां मुफ्त के ही होते । दाभोलकर पति-पत्नी उसका बहुत ध्यान रखते । उसकी तबियत ठीक न होने पर मैं हम दोनों के कपड़े धोता । एक बार नल पर कपड़े धो रहा था । शशि की तबियत ठीक नहीं थी । कोई भी नहीं था । घर में कोई स्त्री नहीं थी। मैं उसकी साड़ी को साबुन लगाता बैठा था । और पास की औरतें आंखें फाड़कर देख रही थीं । उसी में से एक आयी और बोली, 'गुरुजी ये क्या कर रहे हैं ? यह पाप है । पत्नी को क्या कोढ़ हो गया है ? हड्डियाँ टूट गई हैं । उठिए उसके कपड़े मत धोइए ।'

मैं गर्दन झुका कर काम कर रहा था । 'अरी, मैं बीमार रहूँ न रहूँ वही सब कुछ करती है, अब उसकी जान संकट में है, ऐसे में मैंने कुछ किया तो क्या हो गया ?' मेरा सवाल था । वह बोली, 'गुरुजी जाति अपवित्र हो गई तो क्या रीति भी अपवित्र हो जाएगी ? पति पत्नी के कपड़े धोएगा तो यह पाप वह कैसे धोएगी ? क्या बाई, ये पढ़े- लिखे लोग नंदी बैल की तरह करते हैं । हमारे समय सिर्फ ऊपर से पानी मंगाया होता तब भी जान जाने तक मार पड़ती । नजर से नजर क्या मिल पाती ? जान जाने तक काम करना पड़ता । ना करने पर किसे बताते ? अपने करम पर आ गया तो क्या मरद वह काम करे ? बाई है या गधी।'

अब उसके सुर में सुर मिलाने वाली और दो-चार औरतें जमा हो गईं । और बड़बड़ाने लगी । 'स्त्री मुक्ति आंदोलन' पर इससे अधिक और क्या बोले । उस औरत ने हाथ का कपड़ा छीन लिया और कैसा ठंडा किया कि ठाठ में सारे कपड़े धो डाले ।

फिर कपड़े धोता रहा था, पर घर के भीतर ।

ऐसा हमारा व्यवहार था । उस कारण पास-पड़ौस में शशि की किसी से खास न बनती।



एक बार ऐसे ही 'वट सावित्री पूजा' पर पड़ोसन से शशि का विवाद हो गया । समय सुबह का था । मैं जल्दी नहा-धोकर ब्लाऊजपीस बेचने के लिए निकल गया । शशि भी अकेली थी । इतने में पांच-सात औरतें घर में घुसीं । इसलिये मैं गया । उनके हाथों में थालियाँ थीं । उनमें पकवान, कपास, आम, नैवेद्य और धागा, पान, सुपारी के साथ पूजा का काफी सामान था । सारे 'भाभी चलिए' कहती बैठी थीं । शशि बता रही थी । मैंने उपवास नहीं किया है । मुझे जमता नहीं । ऐसी बातों पर मेरा विश्वास नहीं । पुनर्जन्म पर मेरा विश्वास नहीं और ऐसे नाटक पर यही पति सात जन्म तक मिलेगा यह भी मुझे नहीं लगता ।

ज्यों बम पटक दिया हो...वैसी औरतें टूट पड़ी थीं, पति के सामने यह औरत इतना बोलती है और बैल सब सुन लेता है । यह कोई चुड़ैल होगी ।

एक अनुभवी औरत कहती क्या है ? 'अरे सावित्री ने सत्यवान के प्राण यम के घर से वापस लाए हैं, वह क्या गधी थी ? सती स्त्री किसे कहते हैं ? इससे वे अलग और होती है क्या ? मरने पर मत करो, पर जब तक जिंदा हो तब तक तो पालन करो । प्रथा क्यों बनी है ?'

मैं चुपचाप सुन रहा था । शशि को सारी औरतें नीचा दिखा रही थीं । शशि पक्की है, कहने पर ये भयंकर औरत सात जन्मों की फेरियां गिनाने लगीं । शशि रूआंसा हो गई । पल भर के लिए ही सही, पर लगा कि कहीं हम गलत तो नहीं ? सारे तूफानों को टक्कर देने के बाद टिक सकेंगे ऐसा कहते हुए मेरे कांधे पर सिर रखकर कितनी ही देर तक वह गुमसुम खड़ी थी । आंखों की बूंदें सात जन्म तो नहीं मांग रही थीं ।

फिर एक बार ऐसा ही हुआ । पड़ोस में सारी होलार बस्ती थी । आप इसे सातारा की झोपड़पट्टी कह सकते हैं । सुबह होते ही सारे पुरुष बाजार जाते । चप्पल सीते, बैंड बजाते जो भी काम मिलता, करते । घर में औरतें बर्तन मांजतीं, कपड़े धोतीं या जो भी काम मिलता करतीं । इमली फोड़तीं नहीं तो तमाकू की पुडियां चिपकातीं । शाम तक जो भी काम मिलता करतीं ।

मेरे घर के पीछे ऐसी ही एक औरत थी । आठ-नौ बच्चे छोटे-छोटे । गलियों में घूमा करते । मां सुबह से शाम तक खटती रहती ।

और शाम होते ही उसका पति झूमता हुआ आता । आते ही गालियां बकना शुरू हो जाता । इतनी गंदी गालियां देता की पूछिये मत । बीच में ही उसे, इसके बारे में शंका आती। और एक बार झड़प होती तो सारी रात, 'इसके नीचे सोयी थी और वह तुम पर चढ़ा था' ऐसी फालतू बातें शुरू होतीं ।

एक बार तो रात आठ-साढ़े आठ का शुरू हुआ झगड़ा सुबह होने तक चलता रहा । उनके पड़ोस में रहने की इच्छा न होती । बीच-बचाव करे तो पति-पत्नी का झगड़ा । कोई क्या करे मन बेचैन हो जाता ।

एक बार रात आठ नौ बजे वह औरत चिल्लाती हुई और अपने पति को गालियां देती हुई दौड़ी और मेरे घर में घुस गई...क्या हो गया, मैं सुन ही रहा था । झगड़ा उसके घर में होता फिर भी कोलाहल इतना होता कि सारे मुहल्ले को मालूम होता । उसके पीछे हाथ

में पत्थर उठाए उसका पति आया । क्या करूं ? यही सोच रहा था पर वह दरवाजे तक नहीं आया ।

गुरुजी, सरी को बाहर निकालिए, नहीं तो मां चोद डालूंगा । ऐसी ही गाली गलौच शुरू हुई । वह औरत बाहर न जाती । मेरे पूछने पर वह रोती हुई बोली, 'गुरुजी, सुबह से मेहनत करके आयी हूँ । मेरी मजदूरी से अनाज लाया है । खाने के साथ कुछ भी नहीं था तो चटनी से बच्चों का भोजन कराया । और यह कीड़ा मूत पीकर आया है और तीन रुपये मेरे ऊपर फेंक कर कहता है कि बकरे का गोश्त ला नहीं तो पीटूंगा । इतनी रात को बकरे का गोश्त क्या इसकी मां के गांड में मिलता है ? मैं ठहरी औरत जात । सिंदूर के लिए इसे जिंदा रखती हूँ, नहीं तो इसका अंडा फोड़कर उसकी जान ले लूंगी ।'

शशि उसे समझा रही थी । शांत कर रही थी । और भीतर-बाहर हो- हल्ला मचा था। मुझे भी न सूझता क्या करूँ ?

एक बार मन में आया कि पुलिस में शिकायत करूँ । पर यह औरत तैयार नहीं होगी। ये साफ इंकार कर देगी । मैं मुँह के बल गिर जाऊंगा इसलिये चुपचाप रहा । अरुण शेलार नामक दल का एक कार्यकर्ता रहता था । उसने मेरे घर के सामने भीड़ देखी और दौड़ता आया । क्या हुआ बताने पर वह उसके पति के पास गया । उसे समझाने की कोशिश की। परंतु सब बेकार बेटा शेर की तरह चिंघाड़ रहा था ।

इसी गुस्से में औरत घर से बाहर निकली, 'पास-पड़ौस के लोग भगवान जैसे हैं अरे मुए, मेरे लिए उन्हें गालियां बकता है क्या ?' कहती हुई जिधर वह खड़ा था उधर दौड़ी और कुछ समझ पाने के पहले ही उसने उसे नीचे गिरा दिया और उसके छाती पर बैठ गई । दोनों में गुत्थम-गुत्था शुरू हुई । उसके लिए आक्रमण अनपेक्षित था । वह चकरा गया, ऊपर से पिया हुआ । उसने गुस्सा शांत होने तक उसे अक्षरशः पीटा । सारी भीड़ अवाक् रह गई...'अरी रांड अपने पति को पीटती हैं' कहते हुए भीड़ के लोग उसे गालियां देने लगे । अब लगा कि लोग उसे पीटेंगे । उनमें से दो-चार तैयारी कर ही रहे थे । फिर मैं आगे बढ़कर चिल्लाकर बोला, 'पति-पत्नी का झगड़ा है, अपने को क्या करना है ? वे झगडेंगे फिर एक हो जायेंगे, हम क्यों बुराई लें ? हमेशा पत्नी ही मार खाती है । अब थोड़ा पति ने खाया तो कहां बिगड़ गया ?'

अंततः औरतों ने बचाव किया और उसे छुड़ाया । तब से वह पीता तो सही पर अपनी औरत की आवाज बढ़ने पर भाग खड़ा होता और आगे का सब कुछ टाल देता ।

फिर एक दिन मामा-बुआ घर आए । अभी भी जाति का बहिष्कार चल ही रहा था। घर से आना-जाना बंद था । पत्र तक न था । जिंदा है या मर गया, कोई खबर न लेता।

मैं भी न पूछता...न खबर लेता । फिर ये मेहमान अचानक क्यों आए । समझ न पड़ता...घर में कुछ नहीं था । कार्यकर्ताओं की मदद से निभा ले गया । मामा अत्यंत खुलकर बातें कर रहे थे । शशि के साथ बातें करते । बुआ कुछ अकड़ी बैठी थी । परंतु वह भी मुंह दिखायी बातें कर रही थी । शाम को इधर-उधर की बातें होती रहीं, फिर मामा बोले, हम तुम लोगों को ले जाने के लिए आए हैं, आप्पा की बेटी की परसों शादी हैं...तुम्हें आना होगा । जो



कुछ हुआ, उसे भूल जा तुझे घर के लोगों ने बुलावा भेजा है । मैं ले जाने आया हूँ ।...तूने शादी की किसी को बताया नहीं...हम नाराज थे । पर अब गुस्सा थूँककर तुम्हें आना चाहिए।

मेरी चचेरी बहन की शादी पर मुझे किसी ने पूछा नहीं, बुलाया नहीं...मेरा स्वाभिमान चिढ़ गया था, 'आप जाइए, आपको बुलाया है, मैं नहीं आऊंगा,' मैंने कहा । सारा दिमाग लगाकर उनसे तर्क कर रहा था ।

मामा कह रहे थे, 'शादी में बिरादरीवाले नहीं आयेंगे । तुम्हारे घर का बहिष्कार किया गया है । पंचायत बैठेगी, कोई पंगत में नहीं बैठेगा । तुम्हारे भाई-बहनों की शादियाँ नहीं होंगी । उनका विचार करों । तुझे लगता होगा कि तू अब मुक्त हो गया । लेकिन तेरे बच्चों के कहीं रिश्ते नहीं होंगे । पिता बूढ़े और इस बुढ़ापे में ही उनकी इज्जत खराब होगी । तू बिरादरी मांग ले । बिरादरी तुझे वापस जाति में ले लेगी । तेरे आने पर सब कुछ निर्भर करता है । तू यदि नहीं आयेगा तो मन भर दाल में मूतने जैसा होगा...आदि...

सारी रात छटपटाता रहा । मां-बाप और गरीबी से उनका रात-दिन संघर्ष और अब बुढापे में बिरादरी द्वारा उनकी बेइज्जती । मुझसे देखा न जाता । मन से तैयार हो गया । स्वाभिमान लपेट कर रख दिया और दूसरे दिन शादी के लिए निकला ।

अपनी शादी के बाद घर नहीं गया था । शशि ने घर-बार कुछ नहीं देखा था । पंचायत नहीं देखी थी, सिर्फ उसके बारे में सुन रखा था ।

बस स्टैंड पर उतरा । हाथ में बैग, शशि, बुआ, मामा, हमने सामंथली में प्रवेश किया। मैंने यदि बताया न होता तब भी मेरी शादी यह चर्चा का विषय होता । पांच-छह सौ घरों का गांव था । हम रास्ते से आगे बढ़े । आने-जानेवाले आँखें तरेरकर देखते । औरतें दरवाजे पर खड़ी होकर मुझे और अधिकतर शशि को इस तरह घूरतीं कि शर्म से आंखें झुक जातीं। घूरती नजरों से बचता-बचाता घर पहुंचा । वहां गांव के बच्चों का झुंड दरवाजे पर खड़ा था। बारात पहले ही आ चुकी थी । घर के चारों ओर लोग थे । और उनकी नजरें हमारी ओर तनी थीं । भाई-बहन पास से निकल जाते, पर कोई पास न आता । मां ने देखकर अनदेखा-सा किया । सिर्फ पिताजी ने पूछताछ की । शशि और बुआ भीतर गये । मैं आंगन में बैठा रहा । लोगों का देखना बंद हो चुका था । प्राण बचने जैसा लगा । लोग घूर्तता-सा व्यवहार करते । कुतूहल, प्रचंड कुतूहल और जाति-बिरादरी के कांधों पर खेलकर मैं इतना बड़ा हुआ, जिनकी थाली में खाना खाया, वे लोग अनजान राही की तरह व्यवहार कर रहे थे । बिल्कुल कटे-कटे से, अस्पृश्य से...यों मैं बहुत बड़ा अपराधी होऊं । मैं और मामा बैठे थे, वहां लोग आते । कब आया ? क्या करता है, इतनी पूछताछ करते और नौकरी नहीं है बताने पर बिच्छू डंसने-सा हाथ हिलाते । मुझे कम से कम भाषा समझती, बोल सकता था । शशि की हालत खराब थी, वह कुछ न समझ पाती, सिर्फ बैठी रही ।

शादी के एक दिन पहले पंचायत बैठी । मैं आरोपी था । घर के लोग जब मामला मिटा देंगे तब जाति बिरादरी मिटाएगी । बिरादरी में आज तक जीवन भर पिता कभी सिर झुका नहीं बैठे थे, आज वे अपराधी की तरह बैठे थे ।

पंचायत शुरू हुई । निश्चित ही सब हमारी भाषा में ही चल रहा था । गांव की मंडली

आई थी, परंतु उन्हें कुछ समझ न पड़ता । लेकिन वे मेरे साथ बातें करते । वे जानना चाहते थे कि क्या चल रहा है ।

मैंने अपना पक्ष रखा । सारी बुद्धि लगाकर अपना पक्ष रख रहा था । जैसे, मैं जाति नहीं मानता । परंतु जानकारी के लिए पत्नी मराठा है, यह बताता हूँ ।

पंच पूछता है, 'उसके समय सिरहाने पैताने बैठा था क्या ? वह मराठा की है, इसका क्या सबूत है ? और वह ब्राह्मणी भी होगी तो अपनी जाति में नहीं चलेगी । तेरे बाप दादाओं ने यह किया था क्या ? वह महारिन है या मांगिन, नहीं मालूम...तू उसे छोड़ दे । कम से कम यह कह दे कि शादी नहीं की है । आदमी ने औरत रख ली तो चलता है, शादी नहीं चलती, तू कह कि उसे रखा है तभी इस मामले पर विचार किया जाएगा ।' मैंने विस्तारपूर्वक उत्तर दिये । 'चार किताबें पढ़ गया तो क्या बहुत अक्ल पा ली ? हमें मत सिखा। सबका नाश होगा । पंगत और मय्यत को कुत्ता भी नहीं आएगा, उसका विचार कर । चलो रे उठो।'

बस, पंच उठ गए । अब क्या किया जाए ? पिता तो फूट-फूटकर रो रहे थे । धीरे से बोलता । हाथ-पैर जोड़कर फिर बैठक शुरू हुई । पंच मन में आता वह कहते, मैं सुन रहा था। समझाना-बुझाना चल रहा था । अंत में, आप्पा ने एक उपाय सुझाया । उसके पास कई सालों से पंचायत का अनुभव था । आप्पा बोला, जिनके मां-बाप का पता नहीं, ऐसे अनाथों को हमारी जाति में दत्तक लेने की प्रथा है और दत्तक के साथ शादी की जा सकती है, उसके लिए बिरादरी की अनुमति आवश्यक नहीं...और अपने इस मुद्दे के लिए उसने पंचायत के कई पुराने निर्णयों की याद दिलायी । दिए गए निर्णय और दंड बताए । यह आदमी स्कूल की दहलीज तक नहीं चढा था । पर अपना पक्ष कचहरी में किसी पक्षकार का वकील जिस प्रकार प्रभावी ढंग से रखता है, वैसा ही अपना पक्ष गंभीरता से उदाहरण, पहेलियों, मुहावरों को बोलते हुए, अपना सारा अनुभव दांव पर लगाकर लड़ा ।

पंच एक ओर गए । विचार-विमर्श किया और निर्णय घोषित किया, जब उसे रिश्तेदारी में कर लेंगे तो चलेगा । परंतु दत्तक किये बिना हम नहीं बैठेंगे ।

उधर मां, आप्पा, तात्या, काकी, नानी और मुख्यतः मेरे वृद्ध पिता ने चीख पुकार की और मेरे गले लिपटकर रोने लगे ।

'बेटा, बिरादरी से उठ जाता, अब बिरादरी में आ गया ।'

रोने का आवेग कम हुआ । लड़की को पंचायत में लाओ...कोलाहल मचा । अब तक शशि छप्पर के नीचे बैठी थी, अब बाहर आई । उसे बुआ लेकर आई । बुआ और मामा ने उसे दत्तक लिया । उसे दोनों ने गोद लिया । उसे मान-मर्यादा की साड़ी पहनाकर बैठाया था । सुहागनें उसे सिंदूर लगा रही थीं । उसे बिरादरी ने बिरादरी में स्वीकार कर लिया था। इसलिए मुँह मीठा करना होता । शाम को पूरी जात-बिरादरी को पिता ने तेल का बना भोजन दिया ।

मंडली अब सचमुच अस्पृश्य न मानती । भोजन के समय मुझे और शशि को पंगत के बीच में बिठाया ।

सबका भोजन हो गया । फिर रात को पंचों की झंझट नहीं होगी । इसलिए गुदड़ी लेकर



स्कूल में सोने चला गया । तभी पिता मुझे एक ओर ले गए और बोले, 'बच्ची के दिन चढ़ गए हैं क्या ?'

मेरे हां कहने पर पिता का चेहरा लटक गया ।

'अब क्या हो गया ।' मैंने पूछा ।

बाप बोला, 'लक्ष्या हमको मार डाल ।'

मेरी कुछ समझ में नहीं आया इसलिए पूछा ।

पिता बोले, 'अब पंच आकर बैठेंगे । तेरी शादी अब करनी है कि नहीं ? अब लेकिन मेरा दिमाग खराब हो गया था । ऐसा लगता कि यूं ही चला जाऊं पर क्या करता ? जो होगा वह देखने के अलावा कोई उपाय न था । खटिया वहीं डाल दी और तमाकू मसलता बैठा । बाप ने जल्दी-जल्दी आप्पा, तात्या, मां, नानी और मामा के साथ बातें कीं । सबने शशि से पूछा, उसे दो-तीन महीने चढ गए थे । अब क्या करें ? सब चिंतित थे ।

पंचायत फिर लगी । मंडली ने बाप को पछाड़ने का ही तय किया था । अब इसी शादी में ही शादी हो जानी चाहिए । मामा को वास्तविकता बता दी ।

'तो दत्तक लेने से पहले ही बच्चा है । वह बिरादरी में कैसे आएगा ? उसे मां-बाप हैं पर जाति कहां है ? शादी के पहले ही ठहर गया इसलिए भी जाति में नहीं लिया जा सकता।'

फिर समस्या खड़ी हो गई । मेरे सिर में तो कीड़े पड़ने की बारी आ गई । ऐसा लगता कि सबको खूब सुना दूँ, पर घर के सारे दबाव डालते । 'एक बार धूमधाम से शादी हो गई है । अब फिर शादी की जरूरत नहीं ।' मैंने इतना ही कहा, बस मंडली क्रोधित हो उठी, 'तुझे क्या, न जात न पात का, लाओ सगी महारिन का ।'

अब क्या बोलता ?

अब मेरी वकीली दत्तू कैकाड़ी ने की । वह बोला, सत्यनारायण की पूजा में बैठते समय पत्नी न होने पर कमर को सुपारी बांधकर कोई व्यक्ति बैठ सकता है और पूजा करते हैं। इसलिए ऐसा कीजिए लक्ष्या की कमर में सुपारी दें और शादी हो गई...ऐसा मानकर तालियाँ बजाइए..बस...इसके लिए इतना विवाद क्यों करते हैं । ...मिटाना है न विवाद ? या खोदकर निकालना है...बताइए ।

और मजे की बात यह है कि रात 1.30 से 2.00 बजे मुझे सुपारी देकर खड़ा किया और लोगों ने अक्षत डालकर तालियां बजायीं । अब मेरी शादी हो गई थी । जाति के सारे अधिकार मिल गए थे । मैं जाति का हो गया था । मेरा घर-संसार जाति का हो गया था।

दूसरे दिन सुबह फिर 'बकरा' काटा और सारी बिरादरी को भोजन दिया । सौभाग्य से सब बिरादरी के ही लोग थे । सारा कबीला नहीं था । अन्यथा रस्मो-रिवाज, लेना-देना, और जवाब देते, इस जगह का निर्णय नहीं जमा, इसलिए दूसरी ओर जाना आवश्यक हो जाता। दूसरे दिन शाम को आप्पा की लड़की - रतन को हल्दी लगी । अब बैंड बजाने की आदत पूरी तरह टूट चुकी थी । परंतु, लोगों ने बहुत आग्रह किया । फिर ढोल बजाया । गांव के मित्र-स्नेही मिल रहे थे । बातें चल रही थीं ।

शादी के दिन ऐसी ही एक घटना घटी । जंगल में दूर जाकर मुंडन करना होता । आप्पा

को सारी लड़कियां ही थीं । लड़का दो तीन महीने का ही था । घर में मैं ही बड़ा था । रतन तो दुल्हन बनी थी । उसे और मामा को लेकर दूर गया । गोटियां जमा की धोयी और कतार में लगाई । उस पर हल्दी, सिंदूर लगाया । मामा ने रतन के बालों का गोला निकाला और नैवेद्य पर रखा । अगरबत्ती जलायी । नारियल फोड़ा और 'मुंडन समर्पण' हो गया । हम लौट आए ।

शाम को शादी लगने से पहले कबीले ने मेरी शादी के बारे में बिरादरी से पूछा । बिरादरी ने सब कुछ बताया । सारा कुछ रीति- रिवाजों के अनुसार ही हुआ था और बिरादरी को कोई शिकायत न थी । बिरादरी ने मान्यता दी और मामला रफा-दफा हो गया ।

विवाह समारोह हुआ, फिर सातारा आ गया । मैं जो कह रहा था कि अब जाति का दाग पोंछ डालूंगा वह और गहरा हो गया था । मन से उदास हो गया था । शशि के लिए सब नया था । परंतु जानलेवा दुःख से उठकर खड़ा होते हैं, वैसा ही खड़ा हो रहा था ।

❀ ❀ ❀